हुआ तो है, परंतु इस कक्षा-संबंधी ऐसी सामग्री प्राप्त नहीं है कि जिसे लेकर वे कार्य-क्षेत्र में उतर पड़ें। इसी प्रश्न को हल करने तथा कुछ मित्रों के आग्रह करने पर मैंने यह पुस्तक लिखी है, जिसमें यथासंभव फल-संबंधी सभी ज्ञातव्य बातें सरल भाषा में लिखने का ध्यान रखा गया है, ताकि सर्वसाधारण लाभ उठा सकें। इसपर भी यदि कहीं कोई कठिनाई जान पड़े तो सूचना देने पर उसकी निवृत्ति कर दी जायगी।

पाठकों से विशेष निवेदन है कि जिस प्रकार उन्होंने 'साग-भाजी की खेती' को अपनाकर मेरा उत्साह बढ़ाया है, उसी भांति इसे भी अपनाकर लाभ उठावें और इसका आद्योपांत पठन तथा मनन कर जो भी त्रुटियां दिखाई दें, उनसे सूचित करें, ताकि द्वितीय संस्करण में वे दूर की जा सकें।

इसके प्रकाशन की आज्ञा प्रदान के लिए भारत-सरकार तथा कृषि अन्वेषणालय, पूसा के अध्यक्ष डा. एफ. जे. एफ. शॉ. डी. एस-सी. के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

इस पुस्तक की तैयारी, विशेषतः प्रूफ देखने में मुझे अपने परम मित्र रामरूपलालजी से बहुत सहायता मिली है, अतएव मैं उनका आभारी हूं।

७-६-१६३५

आठवां संस्करण

जैसाकि वैज्ञानिक पुस्तकों में समय-समय पर संशोधन और परि-वर्द्धन करना आवश्यक होता है, इस पुस्तक में भी पिछले संस्करणों में तथा इस आठवें संस्करण में संशोधन तथा परिवर्द्धन इस विषय के अनु-संधानों के आधार पर किया गया है ताकि पाठकों को प्रगति की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके।

दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और उड़ीसा के शिक्षा विभागों ने इस पुस्तक को उपयोगी समझकर शालाओं के लिए स्वीकार

किया, उसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूं। अनेक विद्यालयों, शालाओं तथा सार्वजनिक वाचनालयों ने मेरी अन्य पुस्तकों की भांति इसे स्थान दिया, उसके लिए इन संस्थाओं के अधिकारियों को धन्यवाद देते हुए आशा करता हूं कि जहां-जहां इस पुस्तक की पहुंच अभी तक नहीं हुई है, वहां होगी।

चैत्र शुक्ल १५, संवत् २०२२ —नारायण दुलीचन्द व्यास
५ अप्रैल, १९६५

विषय-सूची

फलों की खेती और व्यवसाय

: १ :

फल और स्थान का चुनाव तथा क्षेत्रफल, पूंजी और अन्य आवश्यकताएं

इस विषय के आरंभ में पाठकों को यह बतला देना अनुचित नहीं होगा कि फलों की खेती की कला इतनी सरल नहीं है जितनी कि लोग समझते हैं। जिन व्यक्तियों का स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा हो, जिनकी प्रवल धारणा इस कार्य को अपनाने की हो, जो संतोषी, साहसी और दीर्घदर्शी हों, वे ही इसमें हाथ डालें। जो महाशय सिर्फ अपने नौकरों के भरोसे ही इस कार्य से लाभ की आशा कर अपना समय आमोद-प्रमोद में विताना चाहें, उन्हें चाहिए कि वे अपने विचारों को तत्काल छोड़ दें। सफलता प्राप्त करने की आशा वे ही रखें, जिनकी भुजाओं में अपने हाथ से वहुत-से काम करने की शक्ति हो, जिन्हें प्रारंभ में थोड़े लाभ से संतोष हो, जो तत्कालीन हानि-लाभ से विचलित न हो जायं और जो भविष्य में इस व्यवसाय की उन्नति का अनुमान कर सकें। तरकारी तथा अन्न की खेतीवाले बहुत जल्दी संतोषजनक लाभ प्राप्त कर सकते हैं; परंतु फलों की खेतीवालों को जवतक पेड़ फल देने योग्य नहीं होते; संतोषजनक लाभ उन्हें नहीं मिल सकता।

अनानास, पपीता, केला अथवा खीरा, खरबूजा आदि फलों को छोड़कर अधिकांश ऐसे हैं, जो लगाने के समय से चार-पांच साल में फलना शुरू होकर सात-आठ साल की आयु के होने पर अच्छे फल देते हैं, तब ही यथेष्ट लाभ प्राप्त हो सकता है। कार्य के प्रारंभ में बहुत परिश्रम उठाना पड़ता है तब पांच-सात साल बाद साधारण परिश्रम से अच्छा लाभ होता रहता है।

फलों की खेती करनेवालों को फलों की बिक्री से लाभ उठाने के साथ-साथ पौधों की बिक्री भी करनी पड़ती है। इसके लिए पौधे तैयार करने की युक्तियों की पूर्ण जानकारी होना बहुत जरूरी है। अवकाश निकालकर अपने ही हाथ से कलमें तैयार करनी चाहिए।

पौधों की बिक्री के सिवा पहले पांच-सात साल तक और बाद में थोड़ी-बहुत जमीन, जो पेड़ों के बीच बेकार पड़ी रहती है, उसमें कुछ तरकारियां उपजाना पड़ती हैं, इसलिए तरकारी की खेती का भी उन्हें ज्ञान होना बहुत जरूरी है।

फलों की खेतीवालों को, कहां किस प्रकार की तरक्की हो रही है, इसकी भी जानकारी रखनी पड़ती है। भविष्य में फलों की मांग कैसी होगी, कितने नये-नये बगीचे बनते जा रहे हैं, कौन-सी नई जातियां तैयार हो रही हैं जो बाजार को पकड़नेवाली हैं, इत्यादि विषयों की सूचना रख अपने बागीचों में समयानुसार उन्हें स्थान देने की ओर ध्यान रखना बहुत जरूरी है।

जिन कृषकों में उपर्युक्त गुण हों, वे अपने बाहुबल तथा ईश्वर पर भरोसा करके इस पुस्तक का आद्योपांत मनन कर कार्यारम्भ करें।

फलों का चुनाव—यह जमीन, जलवायु, फलों की मांग और उनका मूल्य, स्थानांतर करने का सुभीता तथा कृषक की योग्यता पर निर्भर करता है।

जमीन और जलवायु—जमीन और जलवायु जिन फलों को मान्य हो, उन्हीं की खेती करना विशेष लाभदायक होता है और उन्हें ही चुनना चाहिए। अमान्य जमीन या जलवायु में या तो पौधे लगेंगे ही नहीं और यदि लगे तो फलने में संदेह रहेगा, और यदि कुछ फले भी तो फलों के आकार और स्वाद में तो अवश्य अंतर पड़ जायगा। उदाहरण के लिए संतरा और सेब

लीजिए। सिलहट या नागपुर के आसपास की भूमि में उपजनेवाले संतरे मीठे होते हैं; परंतु जब उन्हें दूसरे स्थानों में लगाते हैं तो वे उतने मीठे होते ही नहीं। इसी भांति सेब के लिए बहुत ठंडा वातावरण चाहिए। इसीसे वे पहाड़ पर अच्छे होते हैं। इन्हें यदि मैदान में लगाया जाय तो कभी फलेंगे ही नहीं। इसीलिए फलों के चुनाव में भूमि और जलवायु का विचार रखना बहुत जरूरी है।

फलों की मांग—इनके सिवा फलों की मांग और उनसे होनेवाली आय का भी विचार रखना पड़ता है। मान लिया जाय कि आपके पास ऐसी जमीन है जिसमें कई तरह के फल हो सकते हैं, तो ऐसी स्थिति में उन्हीं फलों के वृक्षों को लगाना चाहिए जिनकी मांग अधिक हो। जैसे उत्तर विहार में आम और लीची दोनों हो सकते हैं; परंतु आम की जितनी मांग होती है अथवा उससे जितना लाभ हो सकता है, लीची से नहीं हो सकता। इसलिए लीची की अपेक्षा आम के वृक्ष ही अधिक लगाने चाहिए। इसी भांति सेव और नासपाती लीजिए। दोनों पहाड़ों पर अच्छी तरह पैदा किये जा सकते हैं; परंतु नासपाती की अपेक्षा सेव की मांग अधिक होती है और उससे द्रव्य भी अधिक प्राप्त होता है, इसलिए सेव के वृक्ष ही लगाना उत्तम होगा।

स्थानांतर का सुभीता—स्थानांतर करने के सुभीते का भी फलों के चुनाव में बड़ा महत्व है। आप अच्छे कोमल फल तैयार भी कर सकें; परंतु यदि स्थानांतर करने का सुभीता न हुआ और माल कम खर्च से बाजार तक नहीं पहुंचा सके तो आपको यथेष्ट लाभ नहीं हो सकता। ऐसे स्थान के लिए आपको वही फल चुनने होंगे जो कुछ कठोर और टिकाऊ हों। उदाहरण के लिए—मान लीजिये, आपकी जमीन रेलवे स्टेशन या सड़क से बहुत दूर है और आप उस जमीन में नारियल और केला दोनों ही लगा सकते हैं। ऐसी स्थिति में आपके लिए नारियल-जैसे कठोर फल का चुनाव ही उत्तम होगा।

कृषकों की योग्यता—फलों के चुनाव में कृषक की योग्यता का भी पूरा

असर पड़ता है। बहुत-से कृषक ऐसे होते हैं, जिन्हें खास-खास फलों की खेती का ज्ञान अच्छा होता है और इन्हींकी खेती उन्हें रुचती भी है, अथवा उनका स्वास्थ्य ऐसा है कि वे किसी खास मौसम में होनेवाली फसल को भलीभांति देख सकते हैं, तो उन्हें उन्हीं फलों की खेती करनी चाहिए।

फलों की खेती करनेवाले चार प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक वे, जो धनवान हैं, जिनके बागीचों में सिर्फ निजी उपयोग के लिए फलों के पेड़ लगाये जाते हैं। वहां आय-व्यय का विचार नहीं रहता। वहां तो उत्तमोत्तम, सुंदर, स्वादिष्ट तथा भांति-भांति के फल लगाये जाते हैं। निजी उपयोग से अधिक होने पर फलों का मुफ्त वितरण हो जाता है। ऐसे मनुष्य अपने यहां पौधों की कलमें भी तैयार नहीं करते, जहां-कहीं कितने ही मूल्य पर मिलें, वहां से पौधे मंगवा लेते हैं।

दूसरे वे साधारण स्थिति के मनुष्य हैं, जो एक नहीं अनेक धंधों में हाथ डाले रहते हैं। वे खेती भी करते हैं, साग-भाजी भी उपजाते हैं, और कुछ ऐसे फलों के वृक्ष भी लगा देते हैं, जिनकी विशेष देखभाल नहीं करनी पड़ती और निज के उपयोगार्थ फल मिल जाते हैं। यदि फल अधिक हुए तो निकटवर्ती बाजार में बेच दिये जाते हैं। ऐसे मनुष्य बीज लगाकर पौधे तैयार कर लेते हैं या निकटवर्ती पौधा-विक्रेता से कुछ पौधे खरीद लेते हैं।

तीसरी श्रेणी में उनकी गणना है, जो इस कला को अपने जीवन-निर्वाह के लिए अपनाते हैं और कम-से-कम व्यय से अच्छे-से-अच्छे फल उपजाने का प्रयत्न करते रहते हैं। ऐसे मनुष्य कुछ साग-भाजी भी उपजाते हैं और कलमी पौधे भी तैयार करते हैं।

चौथी श्रेणी में वे गिने जा सकते हैं, जो कुछ शिक्षित हैं और फलों की खेती और व्यवसाय दोनों अपने हाथों में रखते हैं। ऐसे व्यक्तियों को खेती की कला तथा व्यवसाय की रीतियों का पूरा अध्ययन करना पड़ता है। वे अपने बागीचे से ही उपयोगकर्ता के घरों तक फल पहुंचाने का भार अपने ऊपर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति साग-भाजी भी उपजाते हैं और पौधे तैयार कर उनकी भी बिक्री करते हैं। यथार्थ में देखा जाय तो चौथी श्रेणी के

व्यक्ति ही अपने परिश्रम का पूर्ण लाभ उठाते हैं।

फलों की खेती में एक प्रकार के वृक्ष लगाये जायं या कई तरह के लगाये जायं, यह स्थानीय स्थिति पर निर्भर है। यदि आपकी जमीन ऐसी जगह है, जहाँ एक ही फल अच्छी तरह से उपजा सकते हैं, जैसे नागपुर के पास संतरा अथवा कुल्लू में सेव, तो आपके लिए एक ही प्रकार के फल की खेती उत्तम होगी। आप अपना संपूर्ण ध्यान उसीमें लगाकर अच्छा फायदा उठा सकेंगे और यदि आपकी जमीन सब तरह के फलों के वृक्षों के योग्य है तो वहां चुन करके जो अधिक उपयोगी हों, ऐसे दो-चार प्रकार के फलों के वृक्ष अधिक लगाकर, दूसरे थोड़े लगा देने चाहिए।

भारतवर्ष में एक ही प्रकार के फलों की खेती करने योग्य स्थान बहुत थोड़े हैं। मिश्रित फलों की खेती के योग्य ही स्थान अधिक हैं, इसलिए अधिकांश मनुष्यों को मिश्रित फलों की खेती विशेष लाभप्रद होगी। उन्हें उपयोगितानुसार जितने प्रकार के फलों की खेती की देख-भाल वे अच्छी तरह से कर सकें, उतने प्रकार के फल लगाने चाहिए।

मैदान में बसनेवालों को आम, संतरे, मौसम्बी, अमरूद, शरीफा, लीची, केला, सपाटू, पपीता आदि फल अधिक लगाकर आलूबुखारा, जामुन, खिरनी आदि के फल कम लगाने चाहिए।

पहाड़ों पर जहां की ऊंचाई समुद्र के धरातल से ३००० फुट से अधिक हो, वहां सेव, नासपाती, स्ट्राबेरी, जरदालू, अखरोट आदि लगाना चाहिए।

स्थान का चुनाव—फलों की बिक्री विशेषतः शहरों में होती है, इसलिए जहांतक हो शहरों से कुछ ही दूरी पर स्थान चुनना चाहिए। साग-भाजी की खेती के लिए जैसा स्थान शहरों के बहुत निकट होना चाहिए ऐसा स्थान फलों के लिए मिल सके तो अच्छा ही है। नहीं तो कुछ दूरी पर ही ठीक होता है। फल, साग-भाजी की अपेक्षा अधिक टिकाऊ होते हैं इसलिए थोड़ी दूरी तक आसानी से भेजे जा सकते हैं। शहरों के निकट जमीन महंगी मिलती है और मजदूरी की दर भी बड़ी कड़ी होती है, इस-लिए पांच-सात या आठ-दस मील की दूरी पर ही फलों का बगीचा लगाना

चाहिए। इतना अवश्य देखना चाहिए कि वह स्थान सड़क के किनारे हो अथवा रेलवे स्टेशन के पास हो ताकि निकटवर्ती शहर में गाड़ियों से और दूर के स्थानों में रेल या ट्रकों से माल आसानी से और जल्दी पहुंचाया जा सके।

स्थान के चुनाव में यह भी देखना चाहिए कि जहांतक हो सके नहर द्वारा सिंचाई का जल प्राप्त हो। नहर के अभाव में कुओं से काम चल सकता है, सो ऐसा स्थान चुनना चाहिए जहां पानी की सतह बहुत नीची न हो, लेकिन वह इतनी ऊपर भी न हो कि भूमि की सतह से पांच-छः फुट पर ही पानी निकल आवे। फलों की उत्तम बाढ़ के लिए भूगर्भ जल की सतह जमीन की सतह से आठ-दस फुट गहरी होनी चाहिए।

क्षेत्रफल—जो सज्जन अपने जीवन-निर्वाह के लिए इस धंधे को अपनाना चाहें, उन्हें अपनी आवश्यकताओं का अनुमान कर लेना चाहिए कि साधारण रीति से जीवन-निर्वाह के लिए उनकी सालाना आमदनी कितनी होनी चाहिए। अढ़ाई सौ रुपये की मासिक आय के लिए दस एकड़ जमीन काफी होगी, जिसमें से आधा एकड़ जमीन नर्सरी और मकानों के लिए और उतनी ही सड़कों के लिए छोड़ी जा सकती है। शेष जमीन में से दो-तिहाई, अर्थात् छः एकड़ फलों के वृक्षों के लिए और एक-तिहाई, अर्थात् तीन एकड़ छोटे फल—स्ट्रावेरी, अनानास आदि के लिए अथवा खरबूजा आदि वार्षिक फलों के लिए छोड़नी चाहिए। जब पपीता, केला आदि कम आयुवाले पेड़ों का हेर-फेर करना होता है, तो वे इस जमीन में लगा दिये जाते हैं और उनकी जगह ये चले जाते हैं। आवश्यकता होने से किसी नई जाति के वृक्ष लगाना हो तो वे भी इस तीन एकड़ में लगाये जा सकते हैं। यहांपर यह कह देना अनुचित नहीं होगा कि उपर्युक्त आय का अनुमान कम-से-कम रखा गया है। अन्य प्रकार की खेती में ठीक-ठीक अनुमान किया जाना संभव है। परन्तु फलों की खेती में जहां समय-कुसमय के जरा से जलवायु के हेर-फेर से भारी हानि-लाभ हो सकता है, ठीक से अनुमान नहीं किया जा सकता। इसलिए कम-से-कम अनुमान ऊपर दिया गया है।

पूंजी—स्थानीय स्थितियों के आधार पर इसका अनुमान किया जा सकता है। जमीन की कीमत या वार्षिक कर, मजदूरी की दर और पशु तथा कृषि के औजारों का मूल्य पृथक्-पृथक् स्थानों पर पृथक्-पृथक् होता है, इसलिए यहां पर अनुमान नहीं किया जा सकता। पाठक स्वयं स्थानीय दर के अनुसार गणना कर सकते हैं। यहांपर आवश्यकीय मकान, कृषि के औजार, पशु, स्थायी मजदूर या नौकर तथा अन्य वस्तुओं की सूची ही दी जाती है, जिससे गणना आसानी से की जा सके।

मकान—प्रत्येक फल के बगीचे में दो मकान अवश्य होने चाहिए। एक मकान ऐसा हो, जिसमें दो जोड़ी पशु, उनका दाना और खेती कें औजार तथा सजीव अथवा निर्जीव खाद रखे जा सकें। दूसरा मकान ऐसा होना चाहिए, जिसके एक भाग में चौकीदार या मिस्त्री मय पैंकिंग के सामान के रह सके और दूसरे में फल रखे जा सकें या पकाये जा सकें। पहला मिट्टी की दीवार का खपरेल या फूसवाला भी हो सकता है, परन्तु दूसरा ऊंची कुर्सीवाला कच्ची-पक्की इंट की दीवार का बनाया जाय तो ठीक होगा। जहां स्थायी माली और स्थायी मजदूर निकटवर्ती ग्रामों के रहने-वाले न हों, वहां उनके रहने के लिए भी कच्चे-पक्के मकान बनवाने होंगे।

कुआं—जहां नहर से पानी मिल सके वहां पीने के जल के लिए एक छोटा-सा कुआं या नलकूप (ट्यूब वेल) हो तो काम चल जायगा। नहर के अभाव में एक बड़ा कुआं बनवाना चाहिए, जिससे सिंचाई भी हो सके और पीने का पानी भी मिल सके। दस एकड़ की सिंचाई के लिए ऐसा कुआं होना चाहिए जिसमें गर्मी के दिनों में दिन भर दो मोट चलते रहने पर भी संध्या तक पानी न टूटे और रात भर में खर्च किया हुआ पानी फिर से आ जाय।

पशु—जहां नहर से सिंचाई हो वहां बगीचे की जुताई तथा फलों को बाजार तक पहुँचाने के लिए बैल की एक जोड़ी काफी होगी। परंतु यदि मोट द्वारा कुएं से पानी उठाना पड़े तो उसके लिए एक बड़ी जोड़ी और अन्य काम के लिए एक हल्की जोड़ी रख लेनी चाहिए।

स्थायी मजदूर या नौकर—एक योग्य माली और तीन स्थायी मजदूरों से दस एकड़ का फलों का बगीचा अच्छी तरह से चलाया जा सकता है। छोटे-मोटे काम के लिए आवश्यकतानुसार अस्थायी मजदूर रखे जा सकते हैं। माली को सब प्रकार की कलमें बांधने तथा कांट-छांट का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए। मधुर बोलचाल तथा उत्साह बढ़ाकर मजदूरों से काम लेने की योग्यता भी उसमें होनी चाहिए। मालिक को चाहिए कि वह भी नौकरों का काम स्वयं देखता रहे और कोई सराहनीय या पुरस्कार-योग्य काम पाने पर उन्हें अधिक लाभ भी पहुंचाये, ताकि उनका उत्साह अधिकाधिक बढ़ता रहे।

औजार और अन्य वस्तुएं—

मोट रस्सियों सहित (यदि कुएं से पानी उठाना हो)	२
गाड़ी	१
सादे हल	२
बखर (जिससे हलके हल और पठार या पाटे का काम साथ-साथ होता है)	२
हाथ से चलानेवाला हो (Hoe) एक पहिएवाला	१
हाथ-गाड़ी	१
पम्प (औषधियां छिड़कने के लिए)	१
कांटा बड़ा	१
हजारे या झांझ	२
कांटे	२
सब्बल	१
गैंती	३
कुदाल (फावड़ा)	३
खुर्पी	४
हसुआ	२
कुल्हाड़ी	१

आरी (करवत)	१
वसूला	१
रुखानी	१
चलनी (मिट्टी, खाद आदि चालने के लिए)	१
चाकू (ग्राफ्टिंग या सादा चाकू)	१
,, (प्रूनिंग—मोटे दस्ते और टेढ़ी नोकवाला)	१
,, (वडिंग—सादा चाकू लेकिन पतले दस्ते वाला)	१
पेड़ छांटने की कैंची	१
छोटी टहनियाँ काटने की कैंची	१
जरीब	१
सींकी (फल तोड़ने के लिए)	१
लोहे की तगारियां (तसले, घमेले)	६
तख्तेवाली डवल सीढ़ी (निसैनी) जिस पर चढ़कर फल तोड़े जा सकें या पेड़ों की कांट-छांट हो सके	१
टोकरियां और देवदारु के वक्स इत्यादि	

उपर्युक्त औजार जब काम में लाये जायें तो उपयोग के पश्चात् उन्हें धो कर रखना चाहिए। न धोने से उनमें जंग लग जाता है और वे जल्दी विगड़ जाते हैं। खास कर वे औजार, जिनसे पोधे काटे जायं, जो मिट्टी खोदने के काम में लाये जायं, जिनसे औषधियाँ छिड़की जायं, उन्हें तो अवश्य धोना चाहिए। छुरी, कैंची इत्यादि छोटे-मोटे लोहे के औजारों को बरसात में तेल या वैसलीन लगाकर रखना चाहिए।

: २ :

भूमि और खेत-निर्माण

पौधों की बाढ़ जमीन और जलवायु पर अवलंबित है और जलवायु प्रकृति के अधीन है। उसमें विशेष परिवर्तन करना मनुष्याधीन नहीं। परन्तु जमीन की स्थिति में बहुत-कुछ परिवर्तन किया जा सकता है।

जमीन की उपज-शक्ति, अर्थात् भूमि का उर्वरापन, उसकी भौतिक और रासायनिक स्थिति तथा उसमें बसनेवाले जीवाणुओं की क्रिया पर निर्भर है। जुताई, सिंचाई तथा खाद से तीनों में आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन किया जा सकता है।

भूमि की उपर्युक्त तीनों स्थितियों में से साधारण कृषक पहली को कुछ अंश तक जान सकते हैं। दूसरी और तीसरी विशेषज्ञों द्वारा ही जानी जा सकती हैं। इसलिए यहांपर पहली के ही विभाग बताये जाते हैं। ये भाग भूमि में बालू की मात्रा पर निर्भर हैं।

साधारण कृषक अधिक बालूवाली को बलुआ, कम बालूवाली को मटियार और बीचवाली को दुमट कहते हैं। कुछ लोग बलुआ और दुमट के बीचवाली को बलुआ-दुमट और दुमट और मटियार के बीचवाली को मटियार-दुमट कहते हैं। भौतिक विज्ञान-वेत्ता बालू की मात्रा की जांचकर के निम्नलिखित पांच भाग मानते हैं। जिस मिट्टी में बीस शतांश से कम बालू हो उसे मटियार-दुमट कहते हैं। दुमट में यह मात्रा चालीस से साठ शतांश तक होती है और जब साठ से अस्सी तक पहुँच जाती है तो उसे बलुआ-दुमट कहते हैं। बलुआ में बालू का भाग अस्सी शतांश से अधिक ही रहता है।

भूमि का चुनाव—फलों की कुछ फसलें प्रायः सब प्रकार की मिट्टी में पैदा हो जाती हैं। कुछ फल तो ऐसी भूमि, जिनमें अनाज या दूसरी फसलें

अच्छी नहीं होतीं उसमें भी हो जाते हैं क्योंकि इनकी जड़ें बहुत गहरी जाती हैं। अधिकांश वृक्ष बलुआ-दुमट और दुमट में अच्छे होते हैं। मटियार मिट्टी, जिसमें बरसाती पानी लगता हो, उसमें कुछ फलों के वृक्ष नहीं हो सकते। यदि यह पानी कुछ-कुछ दूरी पर खुली हुई नालियां बनाकर उसके निकास का प्रबन्ध किया जाय तो भूमि की स्थिति कुछ अंश तक सुधर सकती है। जिस भूमि में पानी छः-सात फुट की गहराई के ऊपर ही निकल आवे और बहुत दिनों तक इसी गहराई पर बना रहे तो वह भूमि बहु-वार्षिक फलों के लिए अच्छी नहीं होती, क्योंकि जड़ें उस भाग में जाकर सड़ने लग जाती हैं। फलों के लिए भूमि चुनते समय आस-पास के कुओं में जल की सतह की गहराई देख लेने से पता चल जायगा कि भूगर्भ में जल की सतह कितनी गहरी होगी। यदि ऐसी सतह आठ-दस फुट या इससे अधिक गहरी हो तो फलों के वृक्षों के लिए वह भूमि उत्तम होगी। बलुआ जमीन में फलों के वृक्ष लगाये जायं तो खाद और पानी दोनों ही अधिक देने पड़ते हैं, इसलिए जहांतक हो ऐसी जगह चुननी चाहिए, जहां की मिट्टी दुमट या बलुआ-दुमट हो। जमीन चुनते समय उसकी सतह का भी ध्यान रखना चाहिए। जहांतक हो समतल, नहीं तो जिसमें एक ओर हलका ढाल हो ऐसी चुननी चाहिए, जिसमें पानी आसानी से दिया जा सके।

गहराई के विचार से देखा जाय तो वह भूमि उत्तम होगी, जिसमें सात-आठ फुट तक कंकर-पत्थर न हों और वह एक-सी हो।

रासायनिक स्थिति की जांच कराई जा सके तो और भी उत्तम होगा। जिस भूमि में गहराई तक फोसफोरस और पोटाश की मात्रा एक-एक शतांश हों, वह भूमि उत्तम होगी।

जिस भूमि का पी. एच. ८·५ से अधिक हो और जिसमें निम्नलिखित लवण हों, तो वह भूमि अच्छी नहीं होगी :

सोडियम कार्बोनेट	०·१	शतांश से अधिक
सोडियम क्लोराइड	०·२	,, ,, ,,
या कुल लवणों की मात्रा	०·५	,, ,, ,,

जमीन की तैयारी--जमीन के चुनाव के पश्चात् उसमें जितने भी बड़े-छोटे वेकार वृक्ष हों उन्हें काटकर उनकी जड़ें उखड़वा देनी चाहिए और फिर वरावर कर खूब अच्छी जुताई और खाद देने के पश्चात् पौधे लगाये जा सकते हैं। पौधों के लिए गढ़े तैयार करने की रीति आगे वतलाई गई है। पौधे लगाने के वाद से जवतक वगीचा बना रहे तवतक वृक्षों के बीच की भूमि की जुताई आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए ताकि घास-पात जमने न पावें। जहाँ घास-पात बढ़ने दिया जाता है, वहां के पेड़ अच्छे नहीं फलते।

खेत-निर्माण—दस एकड़ जमीन को घेरे से घेरने के पश्चात् उसमें जिस ओर आम सड़क हो, उस तरफ प्रवेश-द्वार रखना चाहिए। इस द्वार से लेकर दूसरी ओर तक वगीचे के बीचों-बीच १५ फुट चौड़ी सड़क बनवा-कर उसके किनारों से चार-पांच फुट की दूरी पर दोनों ओर आड़ू, आलू-बुखारा, संतरा आदि कम ऊंचाईवाले पेड़, जिनकी छाया से अथवा जड़ों से पास-वाली जमीन के पेड़ों को हानि न पहुंचे, लगा देने चाहिए ताकि वगीचे की सुन्दरता वढ़ जाय और फल भी प्राप्त हों। प्रवेश-द्वार के पास दोनों ओर लगभग पाव-पाव एकड़ के दो खेत बनाने चाहिए। एक ओर के खेत में मकान और दूसरी ओर नर्सरी बनाना ठीक होगा। नर्सरी में बीजू-पौधे तैयार किये जा सकते हैं और बिक्री के कलमी पौधे रखे जा सकते हैं, ताकि ग्राहकों को आसानी से दिखलाये जा सकें। जिस तरफ मकान हों उस तरफ घेरे के पास आम, लीची, जामुन, बेल आदि के पेड़ लगाना ठीक होगा क्योंकि ऐसा करने से छाया और फल दोनों मिल जायंगे। इन दो खेतों के निर्माण के पश्चात् डेढ़-डेढ़ एकड़ क्षेत्रफल वाले तीन-तीन खेत सड़क के दोनों ओर बनवाने चाहिए और प्रत्येक दो खेतों के बीच में मुख्य सड़क से मिलती हुई आठ-नौ फुट चौड़ी सड़कें बनवा कर उनके किनारों पर केला, पपीता आदि के पेड़ लगाना ठीक होगा। इन सड़कों के होने से पशु हल-वखर सहित आसानी के प्रत्येक खेत में पहुंच सकेंगे। ये खेत डेढ़ ही एकड़ के हों, ऐसा कोई नियम नहीं है। कृषक की सुविधानुसार छोटे-वड़े वनाये जा सकते हैं। उपर्युक्त छः खेतों में से चार

खेतों में अधिक आयुवाले पेड़ और दो खेतों में कम आयुवाले या साग-भाजी लगा सकते हैं। ऐसा करने से जैसाकि पहले पृष्ठ १६ में बतलाया जा चुका है, छः एकड़ में अधिक आयुवाले, तीन एकड़ में एक वर्षीय या कम आयुवाले पेड़ होंगे और शेष एक एकड़ सड़कों, नर्सरी और मकानों में लग जायगा।

यदि जमीन बिल्कुल समतल हो तो कुआं बीचवाले खेत में से किसी एक सड़क के किनारे बनवाना चाहिए, और यदि ढालू हो तो ऊपर की ओर बनवाना ठीक होगा।

नक्शा

डेढ़ एकड़
डेढ़ एकड़ का खेत
सड़क—पंद्रह फुट चौड़ी
डेढ़ एकड़
डेढ़ एकड़
O पक्का कुआं
८-३ फुट चौड़ी सड़क
डेढ़ एकड़
डेढ़ एकड़
मकान—पाव एकड़
प्रवेश-द्वार
नर्सरी—पाव एकड़
आम रास्ता

: ३ :

घेरा और वृक्षों का स्थान-निर्माण

फल के प्रत्येक बगीचे के चारों ओर घेरा होना चाहिए, जिसमें पशु से ही नहीं, वरन् चोरों से भी रक्षा हो सके। ऐसे घेरे चार प्रकार के हो सकते हैं :

१. मिट्टी, ईंट या पत्थर की ऊंची दीवार—ईंट या पत्थर की चुनाई मिट्टी या चूने में की जा सकती है। जहां जिस प्रकार के पदार्थ का मेल सस्ते मूल्य में हो, वहां उनका घेरा बनाया जा सकता है। सब घेरों में ऐसा घेरा ही उत्तम होता है। दीवार के ऊपर कुछ शीशे के टुकड़े लगवा देने चाहिए ताकि आसानी से कोई ऊपर न चढ़ सके। इस घेरे से हवा की रुकावट भी होती है। सीमाप्रांत की तरफ अंगूर, अनार, आलूबुखारा, नासपाती आदि के बगीचे मिट्टी की दीवार के घेरे से ही घेरे जाते हैं।

२. तार का घेरा—ऐसे घेरे तीन प्रकार के होते हैं। एक सादे तार के, दूसरे कांटेदार तार के और तीसरे जालीदार तार के। तार की पकड़ के लिए लकड़ी या लोहे के खम्भे लगाये जाते हैं। बगीचोंवालों के लिए जालीदार तार का घेरा ठीक होता है। ऐसे घेरे के ऊपर एक तार कांटेदार तार का लगाना चाहिए ताकि ऊपर चढ़कर कोई अंदर न कूद सके। जाली जमीन में करीब तीन इंच गहरी गाड़ देनी चाहिए ताकि गीदड़, सूअर आदि अंदर न घुसने पावें। जालीदार तार के घेरे में लकड़ी के खम्भे लगाना ठीक होता है। ये पन्द्रह-बीस फुट की दूरी पर लगाये जाते हैं। प्रत्येक खम्भा पांच-छः फुट ऊंचा और पांच-छः इंच व्यास का होना चाहिए। खम्भे दो फुट की गहराई तक जमीन में गाड़ने चाहिए और जो भाग जमीन में रहे उसे दीमक से बचाने के लिए अलकतरे में रंगना बहुत

जरूरी है। कोनों के खम्भे जरा अधिक गहरे गाड़े जाने चाहिए और वे कुछ अधिक मोटे भी होने चाहिए। इनकी मजबूती के लिए दो-दो टेढ़े बल्ले, जिनका एक मुंह जमीन में और दूसरा खम्भे में लगा हो, तार के खिचाव की ओर लगाने पड़ते हैं।

३. तीसरे प्रकार का घेरा जीवित पौधों का होता है। ऐसे घेरे सुंदरता के विचार से अच्छे होते हैं और बहुधा कांटेदार वनस्पति के लगाये जाते हैं, जिससे कोई पशु या आदमी अंदर न घुसने पावे। हरे घेरे में सबसे बड़ी भारी कठिनाई यह है कि इसकी देखभाल बहुत रखनी पड़ती है। जहां कहीं पौधे के मर जाने से जगह खाली हो जाती है वहां पर तुरंत दूसरा पौधा लगाना पड़ता है। बहुत-सी जगह हरे घेरों को गरमी में पानी भी देना पड़ता है, नहीं तो वे सूख जाते हैं। पौधे चौड़ाई या ऊंचाई में आवश्यकता से अधिक न बढ़ जायं, इसलिए बार-बार उनकी काट-छांट भी करनी पड़ती है। कहीं-कहीं चूहे ऐसे घेरों में बिल बनाकर रहते हैं और फसल को हानि पहुंचाते हैं। चूहों से छुटकारा पाने के लिए लेखक को एक बार ड्यूरेंटा का हरा घेरा कटवाना ही पड़ा था।

हरे घेरे के लिए कई जाति के पौधे लगाये जाते हैं। दक्षिण की तरफ रामबाण या थूहर[1] (Cactus) काम में लाई जाती है। रामबाण के पौधे पौंच[2] से पहले नर्सरी में तैयार किये जाते हैं और कुछ बढ़ने पर जमीन की जुताई कर जहां घेरा लगाना हो, वहां लगा देते हैं। थूहर के लिए उसकी डाली के टुकड़े ही लगा दिये जाते हैं।

---

१. कुछ वर्षों से थूहर में एक ऐसा कीड़ा लग गया है जिसने कई स्थानों में थूहर का बिल्कुल सफाया कर दिया है। इसलिए इसका घेरा वहीं लगा सकते हैं, जहां कीड़ा नहीं पहुँचा हो।

२. पेड़ के बीच में से एक लंबा धड़ निकलता है। उसके ऊपर छोटे-छोटे पौधे के आकार के कोंपल निकलते हैं। उन्हें पौंच कहते हैं।

यदि लगाया जाय तो घेरा करौंदे का भी बड़ा मजबूत होता है और बिना सिंचाई के बना रहता है। इसे बीज लगाकर तैयार कर सकते हैं।

जो सुंदरता के विचार से हरा घेरा लगाना चाहें उन्हें बालछड़ी (*Duranta plumieri*), मेंहदी (*Lawsonia-alba*), या हेमेटाक्सीलान (*Haematoxylon campeachianum*) वगैरह का लगाना चाहिए। इन सबमें बालछड़ी एक ऐसी चीज है जिसकी बाढ़ अच्छी होती है, घेरा सुंदर दिखलाई देता है और कछार, तरीवाली भूमि और तरीवाले वातावरण में बिना सिंचाई के हो जाती है। इसका घेरा लगाने के लिए गर्मी के अंत में डेढ़ फुट चौड़ी और आठ-दस इंच गहरी मिट्टी जुतवाकर जब बरसात आ जाय तो इसकी कलमें लगाई जा सकती हैं। कलमें दो कतारों में लगानी चाहिए, जो एक-दूसरी से आठ इंच की दूरी पर हों। पंक्तियों में कलमों का अंतर छः-छः इंच का होना चाहिए। अच्छी उपजाऊ मिट्टी में एक साल में बालछड़ी का घेरा डेढ़-दो फुट की ऊंचाई तक, और दूसरे साल में तीन फुट की ऊंचाई तक का तैयार हो जाता है।

मेंहदी तथा हेमेटाक्सीलान भी उपर्युक्त रीति से तैयार की हुई जमीन में लगाये जा सकते हैं।

आवश्यकता होने पर हरा घेरा बबूल का भी लगाया जा सकता है। बबूल के बीज बोये जाते हैं। बीज बोने के पहले उनके कठोर छिलके को गंधक के अम्ल से गला दिया जाय तो वे जल्दी जम जाते हैं।

उपर्युक्त प्रकार के ड्यूरेंटा, मेंहदी, बबूल आदि के घेरों की काट-छांट प्रारंभ में जल्दी-जल्दी करनी चाहिए ताकि वे ऊंचाई में ही न बढ़कर चौड़ाई में भी अच्छे जम जायं और नीचे तक जगह खाली न रहे।

४. चौथा घेरा सूखे कांटों का होता है। बबूल, बेर वगैरह की कांटेदार टहनियां गाड़ दी जाती हैं और जहां टूट-फूट होती है वहां नये कांटे गाड़ते रहते हैं।

वृक्षों का स्थान-निर्माण—फलों के वृक्ष साधारणतः तीन भागों में

विभाजित किये जा सकते हैं। एक वे, जो पच्चीस-तीस फुट से लेकर चालीस-पचास फुट या उससे भी अधिक ऊंचे होते हैं और जिनकी शाखाएं बढ़कर चार-पांच फुट की ऊंचाई से फूटती हैं। ऐसे दरख्तों के नीचे पशु विना कुछ हानि पहुंचाये घूम सकते हैं, अथवा उनकी छाया में विश्राम कर सकते हैं। इस प्रकार के दरख्तों के नीचे पशुओं का विश्राम करना एक तरह से अच्छा भी होता है। उनका मल-मूत्र, जो पेड़ों के नीचे गिरता है, वह मिट्टी में मिलता जाय, इसलिए वहां की मिट्टी गोड़कर रखनी चाहिए। ऐसा करने से वृक्षों को काफी खाद पहुंच जाता है। ऐसे वृक्षों को पूर्ण बाढ़ पाने पर पानी दिया जा सके तो अच्छा ही है, और नहीं तो बिना पानी दिये बरसात के पानी के आधार पर वे नियमानुसार फलते रहते हैं। आम, जामुन, इमली आदि वृक्षों की गणना इस श्रेणी में हो सकती है।

दूसरी जाति के वे वृक्ष होते हैं, जिनकी ऊंचाई पंद्रह-बीस फुट की होती है और जिनकी शाखाएं जमीन से थोड़ी ही ऊंचाई पर फूट जाती हैं। ऐसे वृक्षों के नीचे गाय, भैंस-जैसे बड़े पशु तो नहीं, परंतु भेड़-जैसे छोटे पशु बिना हानि पहुंचाये विश्राम कर सकते हैं और उनके मल-मूत्र से वहाँ की भूमि का उर्वरापन वढ़ जाता है। ऐसे दरख्तों को जाड़े और गरमी दोनों मौसम में नहीं, तो गरमी में पानी अवश्य देना पड़ता है। इस वर्ग में आड़ू, आलूबुखारा, संतरा, शरीफा, अमरूद आदि को स्थान दे सकते हैं। ऐसे वृक्ष सड़कों के किनारे भी लगाये जा सकते हैं।

तीसरे विभाग में वे वृक्ष गिने जा सकते हैं, जो बहुत छोटे होते हैं और जिन्हें वृक्ष न कहकर पौधे कह सकते हैं। जैसे अनन्नास, स्ट्राबेरी या जिन्हें लताओं के नाम से संबोधित कर सकते हैं, जैसे खरबूजा, ककड़ी, दिलपसंद आदि। चूंकि ये बहुत निकट-निकट लगाये जाते हैं, इनमें पशु नहीं छोड़े जा सकते बल्कि उनसे और जंगली जानवरों से इनकी रक्षा करने के लिए घेरा लगाना पड़ता है। इन्हें खाद भी काफी देना पड़ता है, और पानी तो देना ही पड़ता है।

इस वर्ग निर्माणानुसार तीसरी जाति के फल वहां लगाने चाहिए

जो सिंचाई के जलाशय के निकट हों, और जहां देख-भाल अच्छी हो सके। उनसे दूर दूसरे वर्ग के, और उनसे भी अधिक दूरी पर पहली श्रेणी के वृक्ष लगाना ठीक होगा।

पहली श्रेणी के वृक्ष बगीचे के चारों ओर लगाये जा सकते हैं। इनसे हवा की रुकावट हो जाती है। जहां हवा किसी निर्धारित दिशा से बहती हो, जैसाकि भारतवर्ष के कई स्थानों में होता है, तो वहां ऐसे दरख्तों को उसी ओर लगाना चाहिए, जिस ओर से हवा बहती हो। इनमें भी वृक्षों की कोमलता और होनेवाली आय का विचार करके लगाना चाहिए। इमली, जामुन आदि, जिनसे बहुत कम आय की संभावना है, उन्हें अंत में लगाना चाहिए। उनकी आड़ में सपाट्र-जैसे तथा सपाट्र की आड़ में आम जैसे वृक्ष लगाने चाहिए।

सभी जाति के वृक्षों को धूप की आवश्यकता होती है। जाड़े में सूर्य दक्षिणायन रहता है, इसलिए जहांतक हो बड़े वृक्ष दक्षिण की ओर न लगाए जायं और यदि लगाए जायं तो इतनी दूरी पर हों कि उनकी छाया अन्य वृक्षों के लिए अहितकर न हो। जिन वृक्षों के फलों को अधिक धूप से हानि पहुंचती है जैसे पपीता, सन्तरा आदि तो ऐसे फलों के पौधों को बड़े वृक्षों की आड़ में लगाना अच्छा होगा।

बहुत-से मनुष्य कई जाति के वृक्ष मिलाकर लगा देते हैं। परंतु ऐसा न करके एक स्थान पर एक ही जाति के वृक्ष लगाना उत्तम होता है। ऐसा करने से पेड़ की बाढ़ अच्छी होती है और उनकी देख-भाल और सिंचाई आदि क्रियाएं भी अच्छी तरह से हो सकती हैं। जब वृक्ष फलते हैं तो उन्हें पक्षी हानि पहुंचाये विना नहीं रहते। ऐसी स्थिति में यदि एक ही स्थान पर एक ही जाति के वृक्ष हुए तो पक्षियों से उनकी रक्षा हो सकती है। हां, इतना अवश्य हो सकता है कि अधिक आयुवाले पेड़ के बीच में प्रारंभ में कम आयुवाले पेड़ लगाये जा सकते हैं, जैसे आम के बीच में पपीते के पेड़ लगाना। जबतक आम के पेड़ फल देने की आयु तक पहुंचते हैं, पपीते की आयु समाप्त हो जाती है। यदि पपीते-जैसा फल नहीं लिया जाय तो

स्ट्राबेरी, खीरा आदि फल भी लिये जा सकते हैं।

वृक्ष लगाने की रीतियां—खेतों में फलों के वृक्ष कई रीतियों से लगाये जा सकते हैं, परतु निम्नलिखित युक्तियां विशेष उपयोगी रहती हैं :

(१) वर्गाकार—

(२) त्रिभुजाकार या षट्कोणाकार।

(३) पंचवृक्षी (वर्गाकार लेकिन प्रत्येक वर्ग के बीच में भी एक पेड़ लगाना। इसे पहली और दूसरी का मेल समझना चाहिए)।

(४) कानटूर—पहाड़ी भूमि में।

उपर्युक्त चार में से पहली रीति बहुत काम में लाई जाती है, परंतु ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती जाती है, चार-चार पेड़ के बीच की जमीन बहुत छूट
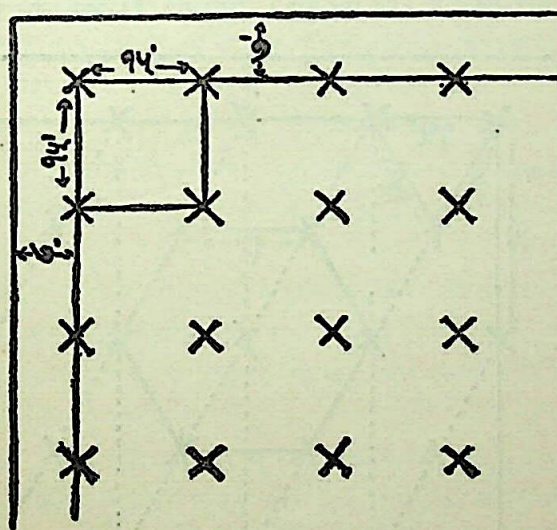
चित्र नं० १

पेड़ लगाने की वर्गाकार रीति

जाती हैं, इसलिए जैसे-जैसे अंतर बढ़ता जाय दूसरी और तीसरी युक्ति काम में लानी चाहिए, ताकि भूमि का उपयोग भी पूरा हो और संख्या पेड़ प्रति एकड़ भी विशेष हो। दस फुट के अंतर तक पहली, दस से बीस तक के लिए दूसरी और बीस से अधिक अंतर हो तो तीसरी रीति काम में लानी चाहिए और पहाड़ों की ढालू या ऊंची-नीची भूमि में चौथी रीति काम में लानी चाहिए। मान लिया जाय कि आपका एक एकड़ का खेत वर्गाकार रूप में है तो प्रत्येक भुजा २०८.७१ फुट, यानी २०९ फुट हुई। अब यदि हमें १५ फुट की दूरी पर पेड़ लगाना है, तो सबसे पहले उस वर्ग के चारों तरफ़ दूरी का आधा यानी सात-साढ़े सात फुट जमीन छोड़ देनी चाहिए। ऐसा करने से हमारे वर्ग की भुजाओं की लंबाई (२०९-१४) १९५ फुट हुई। इस भुजा पर १५ फुट की दूरी पर पेड़ लगाने से १४ पेड़ होते हैं और एकड़ में १९६ पेड़ हुए। (चित्र नं० १) इसमें जिस तरफ से
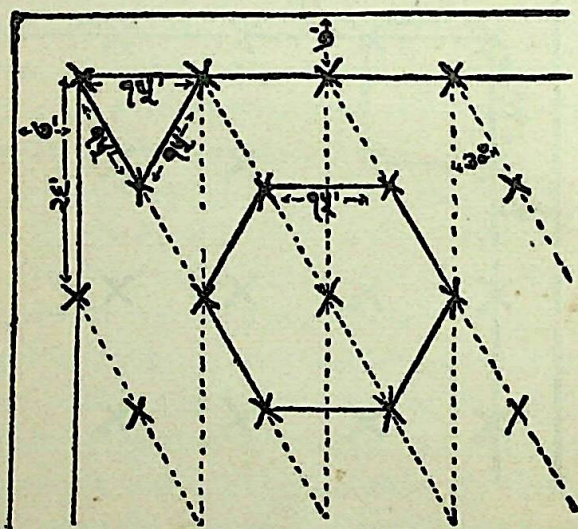
चित्र नं० २—पेड़ लगाने की त्रिभुजाकार या षट्कोणाकार रीति

देखा जायगा १४ पंक्तियां दीखेंगी।

अब यदि हम त्रिभुजाकार रूप में लगावें जैसाकि चित्र नं० २ में दिखलाया गया है तो ८ पक्तियां चौदह-चौदह पेड़ की और ८ तेरह-तेरह पेड़ की होंगी और कुल २१६ पेड़ होंगे अर्थात् पेड़ों को चारों तरफ बराबर जगह मिलने पर भी २० पेड़ अधिक होंगे।

त्रिभुजाकार रीति में यदि हम समत्रिबाहु त्रिभुज बनाते हैं तो पेड़ों का स्थान षट्कोणाकार भी हो जाता है।

तीसरी रीति में चार-चार पेड़ों के बीच एक-एक पेड़ दूसरी जाति का कम फैलनेवाला लगा दिया जाता है, ताकि बीच की भूमि से भी लाभ उठाया जाय। यह रीति उस वक्त काम में लाई जाती है जबकि मुख्य जाति के पेड़ अधिक आयु के होने पर फलते हैं या जब पेड़ों का अंतर बीस फुट से अधिक होता है।

उपर्युक्त गणना एक एकड़ का ठीक वर्गाकार खेत मानकर की गई है। परंतु खेत बहुधा ठीक ऐसे ही नाप के नहीं होते, इसलिए पाठकों को अपने खेत के आकारानुसार पेड़ों का स्थान-निर्माण कर लेना चाहिए। उत्तम रीति तो यह होगी कि कागज पर खेत का नक्शा बनाकर उसपर स्थान-निर्माण कर लेना चाहिए। ऐसा कर लेने से खेत में गढ़े बनवाने में बड़ी सुविधा होगी।

पहली और तीसरी रीति से पेड़ लगाने के लिए सबसे प्रथम खेत की एक भुजा पर निर्धारित स्थान की दूरी पर खूंटियां गाड़ देनी चाहिए और बाद में प्रत्येक खूंटी पर लंब डालकर उस लंब पर दूसरे पेड़ों के स्थान पर खूंटियां लगानी चाहिए।

दूसरी रीति में एक भुजा पर खूंटियां गाड़कर, यदि कोण नापने का यंत्र हो तो प्रत्येक खूंटी पर लंब के साथ ३०° (अंश) का कोण बनाकर कोण बनानेवाली रेखा पर निर्मित दूरी पर खूंटियां गड़वानी चाहिए। यदि ऐसा यंत्र न हो तो एक ओर की सब पंक्तियों का स्थान निर्माण कर दूसरी ओर की एक-एक पंक्ति छोड़कर, अर्थात् पहली, तीसरी, पांचवीं,

इत्यादि पंक्तियों का स्थान-निर्माण कर उनपर खूंटियां गाड़ दी जायं और बाद में प्रत्येक चार-चार खूंटियों के बीच में एक खूंटी गाड़ दी जाय तो पौधों का स्थान-निर्माण आसानी से हो जायगा।

कॉनटूर (Contour)—पहाड़ी ढलान पर या ऊंची-नीची भूमि में जब पेड़ लगाना हो तो उन्हें समान ऊंचाई के स्थान पर लगाना चाहिए। ऐसा करने से सिंचाई की सुविधा रहती है।

फलों के वृक्षों की दूरी—यह फलों की जाति और भूमि पर निर्भर है। अधिक फैलनेवाले पेड़ों को अधिक दूरी पर लगाना होता है। उसी भांति जहां पेड़ों के योग्य भूमि मिल जाय तो वहां बाढ़ अच्छी होगी, इसलिए भी दूरी बढ़ा देनी चाहिए।

पौधों की संख्या प्रति एकड़

दूरी फुट में	वर्गाकार पद्धति	षट् भुजाकार पद्धति
१०	४३५	५००
१५	१९३	२२२
२०	१०९	१२५
२५	६९	७९
३०	४८	५५
३५	३५	४०
४०	२७	३१

: ४ :

खाद्

वनस्पति-पोषक-तत्व भूमि और वातावरण में पाये जाते हैं। वातावरण से प्राप्त होनेवाले तत्वों का भंडार अपार है। जमीन से प्राप्त होनेवाले तत्वों में न्यूनाधिकता हो जाती है। जो तत्व जमीन से प्राप्त होते हैं, उनमें तीन तत्व नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटाश मुख्य हैं। खाद द्वारा इन्हीं की न्यूनता पूरी की जाती है। जहाँ की मिट्टी अम्लदार होती है, वहां अम्ल की शांति के जिए चूना डालना पड़ता है। पौधे या पेड़ इन तत्वों का उपयोग लवण के रूप में करते हैं। प्रत्येक तत्व का कर्त्तव्य जुदा-जुदा होता है। नाइट्रोजन से धड़, शाखाएं और पत्तों की पुष्टि होती है। पत्ते स्वस्थ और गहरे हरे रंग के होते हैं। फासफोरस से जड़ों की पुष्टि होती है और फल अधिक प्राप्त होते हैं। पोटाश से पौधों का कर्त्तव्य सम्पादन अच्छा होता है, पेड़ स्वस्थ बने रहते हैं और फलों का रूप, रंग, स्वाद और आकार अच्छा होता है।

अस्वस्थ और पीले पत्ते तथा कमजोर शाखाएं और अधिक, लेकिन अपूर्ण वाढ़वाले फल पाये जायं तो समझना चाहिए कि नाइट्रोजन की कमी है। मजबूत शाखाएं, गहरे हरे पत्ते किनारों पर सूखे हुए और फलों का अभाव या कमी फासफोरस की कमी दर्शाते हैं। जब पौधे या पेड़ों की अवस्था; फलों के रूप, रंग, आकार और स्वाद की हीनता हो तो पोटाश की कमी समझनी चाहिए। ऐसी स्थिति में जिस तत्व की कमी दिखलाई दे, खाद डालते समय उस तत्व की पूर्ति का ध्यान रखना चाहिए।

ये तत्व कार्बनिक अथवा अकार्बनिक खाद के रूप में डाले जा

सकते हैं। हमारे देश में अकार्बनिक की अपेक्षा कार्बनिक का मेल बहुत ज्यादा है। इसलिए जहांतक हो, कार्बनिक खाद का उपयोग करना ही उत्तम है। जहां कार्बनिक की कमी हो वहां दोनों का मिश्रण काम में लाना चाहिए। नीचे कार्बनिक और अकार्बनिक दोनों प्रकार के खाद की सूची और संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है ताकि जहां जिस प्रकार के खाद का मेल हो उसका उपयोग किया जा सके।

कार्बनिक खादों में प्रायः तीनों तत्व न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं। ऐसे खाद निम्नलिखित हैं—

नाइट्रोजन-प्रधान—इनमें फासफोरस और पोटाश से नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है।

(१) गोबर का खाद (पशुओं का मल-मूत्र और पशुशालाओं के घास-पात का मिश्रण)।

(२) मनुष्यों का मल-मूत्र।

(३) पक्षियों की विष्ठा।

(४) खलियों की खाद।

(५) हरा खाद।

(६) सूखे तथा हरे पत्ते का खाद।

(७) काम्पोस्ट।

(८) शहर के कूड़े-कर्कट का खाद।

(९) शहरों की मोरियों का पानी।

फासफोरस-प्रधान—इसमें नाइट्रोजन और पोटाश की अपेक्षा फासफोरस अधिक होता है।

(१) हड्डियों का खाद।

(२) मछलियों का खाद।

(३) पक्षियों की विष्ठा।

पोटाश-प्रधान—जिनसे फासफोरस और नाइट्रोजन की अपेक्षा पोटाश की पूर्ति अधिक हो।

(१) जल के पोधे, सेवार आदि ।

अकार्बनिक खाद

नाइट्रोजन-पूर्ता—

(१) सोडियम नाइट्रेट	१५ शतांश नाइट्रोजन
(२) एमोनियम सलफेट	२० ,, ,,
(३) एमोनियम क्लोराइड	२५ ,, ,,
(४) सायनामाइड	२० ,, ,,
(५) केलशियम नाइट्रेट	१३ से १६ ,,

फासफोरस-पूर्ता—

(१) सुपर फॉस्फेट	२० से ४० शतांश फा० पे०[१]
(२) वेसिक स्लैग	१६ से १८ ,, ,,

पोटाश-पूर्ता—

(१) पोटेशियम सलफेट	लगभग ४८ शतांश पो० आ[२]
(२) पोटेशियम क्लोराइड	५० ,, ,,

नाइट्रोजन और फासफोरस-मिश्रित—

	शतांश ना०	शतांश फा० पे०
(१) डाइमॉन फ़ॉस	२१	५४
(२) एमो फॉस	१३	४८
(३) ल्यूकोना फॉस	२०	२०
(४) नीसी फॉस	१४	५५
	१८	१८

नाइट्रोजन और पोटाश-मिश्रित—

	शतांश ना०	शतांश पो० आ०
(१) पोटेशियम नाइट्रेट	१४	४८

---

१. फासफोरस की मात्राएं फासफोरस पेंटा आक्साईड P_2O_5 के रूप में और २. पोटाश की पोटेशियम आक्साईड K_2O के रूप में दी जाती है।

फासफोरस और पोटाश-मिश्रित—

	शतांश ना०	शतांश पो० आ०
(१) राख	२	४ से ६

नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटाश-मिश्रित—

	शतांश ना०	शतांश फा० पे०	शतांश पो० आ०
(१) नाइट्रोफोस्का	१५	१५	२०

(२) फासफोरस वाली खदानी मिट्टी।

(३) तालाब कुएं आदि की मिट्टी।

नाइट्रोजन-प्रधान कार्बनिक खाद

(१) **गोबर का खाद**—इस खाद से हमारा अभिप्राय सिर्फ गोबर से नहीं है बल्कि उस मिश्रण से है जिसमें पशुओं का मल-मूत्र और पशुशालाओं का घास-पात मिला हुआ हो, क्योंकि ये सब पदार्थ एक साथ ही रखे जाते हैं। इस खाद का उपयोग कृषक बहुत दिनों से करते आ रहे हैं। यथार्थ में देखा जाय तो अच्छा सड़ा हुआ गोबर का खाद सर्वोत्तम खाद है। इससे पौधों को खाद्य-तत्व मिलने के सिवाय भूमि की दशा सुधरती है और उसमें बसने वाले सूक्ष्म जंतुओं की वृद्धि होती है, जो पौधों के लिए भोज्य-पदार्थ तैयार करते हैं।

गोबर के खाद का न्यूनाधिक गुण पशुओं की जाति और उनके भोजन[1] पर निर्भर है। गाय-बैल की अपेक्षा भेड़-बकरी का खाद विशेष लाभदायक होता है। घोड़े की लीद मटियार जमीन के लिए बहुत अच्छी होती है। निरा भूसा खानेवाले पशुओं के खाद से जिन पशुओं को दाना भी दिया जाता है, उनका खाद अधिक अच्छा होता है। इसके सिवा खाद में घास-पात के मिश्रण का तथा उसके रखे जाने की रीति का

१. Study of the losses of fertilising constituents from cattle-dung during storage and a method for their control by N.D. Vyas, Agri. and Livestock in India, Vol. I Part I, January 1931.

भी उपज-शक्ति पर असर पड़ता है। जिस खाद में कम घास-पात होता है और जो सूर्य की तेजी और वर्षा के जल से बचाया हुआ होता है, वह विशेष उपयोगी होता है। इसलिए जब खाद खरीदा जाय तो उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर खरीदना चाहिए। निज के पशुओं का जो खाद रखा जाय उसे भी अन्य प्रकार से न हो तो फूस (घास का छप्पर) की छाया में रखना चाहिए और रखने का गढ़ा पक्का न हो तो उसकी फर्श को मोरम से पिटवा देना चाहिए ताकि नीचे की मिट्टी खाद के घुलनशील पदार्थों को सोख न जाय। दो जोड़ी बैल के खाद के लिए ८×८×४ फीट का गढ़ा काफ़ी होता है। बहुधा यह देखा जाता है कि गोबर तो खाद की ढेरी तक पहुँच जाता है परंतु मूत्र का बहुत सा भाग नष्ट हो जाता है। गोबर की अपेक्षा मूत्र अधिक उपयोगी है, इसलिए पशुशालाओं की फर्श पर मिट्टी या घास-पात बिछाकर उसमें मूत्र सोखा दिया जाय तो ठीक होगा। बरसात में मिट्टी डालने से वह गीली हो जाती है और पशुओं को कष्ट होता है, इसलिए उन दिनों में घास-पात बिछाना ठीक होगा ताकि मूत्र उसमें सोख जाय।

फलों के वृक्षों के लिए गोबर की खाद की मात्रा—प्रारंभ में जब पौधे उगाये जाते हैं और तरकारियाँ भी ली जाती है, उस समय ढाईसौ से तीनसौ मन खाद प्रति एकड़ देना चाहिए। बाद में जबतक तरकारियाँ ली जायं, दोसौ से ढाईसौ मन प्रति वर्ष देना ठीक होगा। यदि फलीदार तरकारियां ली जायं तो उनके लिए कम खाद देना चाहिए। जिन गढ़ों में पौधे लगाये जायं उनकी मिट्टी में भी गोबर की खाद देना पड़ता है सो गढ़ों में आकार तथा पौधों की जाति के अनुसार बीस सेर से एक मन प्रति गढ़ा देना चाहिए।

बाद में काट-छांट के वक्त प्रतिवर्ष भी खाद दिया जाता है, सो उस वक्त पौधों की उपयोगिता तथा आकारानुसार दिया जाना चाहिए। इस प्रकरण के अन्त में दी हुई रीति से जमीन का अनुमान करके उसपर लग-भग एक इंच मोटी तह हो जाय, इतना खाद देना चाहिए। आगे जहां

जहाँ काट-छांट के बाद खाद देने का वर्णन होगा, वहां मात्रा नही दी जायगी। उपर्युक्त रीति से गणना करके डालना चाहिए।

(२) **मनुष्यों का मल-मूत्र**—इस खाद का उपयोग तरकारी और अन्य फसलों के लिए किया जाता है, फलों के लिए नहीं किया जाता परंतु यदि राख या मिट्टी के साथ मिलाकर सुखा करके जो पदार्थ पुडरेट के नाम से बिकता है, मिलता हो तो डाला जा सकता है। गोबर के खाद की मात्रा से इसकी मात्रा आधी होनी चाहिए।

(३) **पक्षियों की विष्ठा का खाद**—कुछ लोग पक्षी पालते हैं परंतु उनकी विष्ठा का खाद के लिए उपयोग करनेवाले बहुत कम है। सूखी हुई विष्ठा में लगभग ४ शतांश ना० २·३ शतांश फा० पे० और १·२ शतांश पो० आ० रहता है। इसलिए यह खाद पशुओं की खाद से अधिक अच्छा होता है। विष्ठा वैसे ही सूखने दी जाय तो उसमें से खाद के तत्व की कुछ मात्रा उड़ जाती है, इसलिए उसके साथ राख या मिट्टी मिला कर रखनी चाहिए। ऐसा खाद बहुत कम मिलता है परंतु यदि मिल सके तो गोबर के खाद के साथ डाला जा सकता है।

इसी तरह से चमगादड़ की विष्ठा, जिसमें करीब ८ शतांश ना०, ३·८ शतांश फ० पे० और १·३ पो० आ० रहता है, वह भी काम में लाई जा सकती है।

(४) **खलियों का खाद**—खलियां दो प्रकार की होती हैं। एक वे जो पशुओं को खिलाई जाती है और दूसरी वे जो जहरीली होने के कारण नहीं खिलाई जातीं। भारतवर्ष में निम्नलिखित खलियां मिलती है, जिनका उपयोग किया जा सकता है। साधारण खलियों में खाद के तत्त्व निम्नलिखित परिमाण में पाये जाते हैं।

नाम खली	शतांश ना०	शतांश फा०पे०	शतांश पो० आ०
मूंगफली	७·६	२·३	२·२
कुसुम	५·८	१·३	१·२
अलसी	५·०	१·६	१·६

सरसों	५·६	१·९	१·४
तिल	५·०	१·१	१·०
रामतिल्ली	४·५	२·०	१·९
नारियल	३·७	१·९	१·८
विनौला (छिलकासहित)	२·६	१·२	१·१

उपर्युक्त खलियां पशुओं को खिलाई जा सकती है।

निम्नलिखित खलियां पशुओं को नहीं खिलाई जाती—

नाम खली	शतांश ना०	शतांश फ० पे०	शतांश पो० श्रा०
एरंडी	५·०	१·८	१·६
नीम	४·४	१·०	१·४
करज	३·५	०·७	१·३
महुआ	२·६	०·८	२·८

खलियों में नाइट्रोजन के सिवा कुछ फा०पे० और पो०आ० भी रहते हैं परंतु अधिकतर इनका उपयोग नाइट्रोजन की पूर्ति के विचार से ही किया जाता है।

जो खलियां पशुओं को खिलाई जाती है उनमें का बहुत-सा भाग तो रूप-परिवर्तनोपरांत, अर्थात् मलमूत्र के रूप में खाद के काम में आ ही जाता है, इसलिए दूसरी खलियों का उपयोग खाद के लिए करना चाहिए।

फलों के पेड़ों के लिए खलियां वैसे भी दी जा सकती है, परंतु छोटे पौधों के लिए यदि सड़ाकर दी जायं तो और भी अच्छा होगा। जब तरकारियां ली जायं तो उनके लिए भी सड़ी हुई खली का खाद विशेष उपयोगी होगा।

खली सड़ाने की रीति[1]—सौ भाग खली, पांच भाग कोयला, पच्चीस भाग मिट्टी और साठ-सत्तर भाग जल का मिश्रण बनाकर तीन मास तक छाया में सड़ाकर डालना चाहिए। इस ढेरी पर मिट्टी की एक तह

१. Pusa Bulletin No. 176 by N.D. Vyas.

भी दे देनी चाहिए ताकि पानी उड़ने न पाये। मिश्रण को गीला रखने के लिए दस-पन्द्रह दिन के अंतर पर उसपर पानी भी छिड़कते रहना चाहिए।

यथार्थ में देखा जाय तो कार्बनिक खाद में, मेल और उपयोगिता के विचार से, गोबर के बाद खलियों को ही स्थान देना चाहिए। जहां तक हो सके इनका उपयोग बहुत करना चाहिए। जिन बागीचों से तरकारियां ली जायं वहां तो खलियां बहुत लाभदायक होंगी।

मात्रा—चूंकि विभिन्न खलियों में नाइट्रोजन की मात्रा न्यूनाधिक होती है, इसलिए मात्रा का अनुमान नाइट्रोजन की गणना पर ही करना चाहिए। प्रति एकड़ पेड़ों की उपयोगितानुसार वीस सेर नाइट्रोजन पहुँचे, इतना खाद देना चाहिए। नाइट्रोजन की मात्रा से खली का अनुमान करके उसमें संख्या पेड़ प्रति एकड़ का भाग दे दिया जाय तो प्रति पेड़ कितनी खली देनी चाहिए मालूम हो जायगा।

(५) हरा खाद—खेतों में किसी फसल को उपजाकर हरी गाड़ देने को हरा खाद कहते हैं। इनके लिए फलीदार फसलें ही अधिकतर काम में लाई जाती है। उनमें भी ज्यादे पत्ते, कोमल डण्डी और जल्दी बढ़नेवाली फसलें अधिक उपयोगी होती हैं। उपर्युक्त गुण सन, ढेंचा और ग्वार में पाया जाता है। जहाँ खाद का बहुत अभाव हो और वर्षा तीस-चालीस इंच होती हो, वहां सन का खाद अच्छा होगा। इससे बहुत अधिक वर्षा वाली जगह में ढेंचा और कमवाली में ग्वार की फसल ठीक होगी पेड़ों के बीच की जमीन में अथवा प्रारंभ में समूचे खेत में ये फसलें उगाई जा सकती हैं। जब छोटे पौधों के साथ उगाई जायं तो यह देखना चाहिए कि उन पौधों के आस-पास लगभग तीन फुट की दूरी तक पौधे न हों। नजदीक होने से फलवाला पौधा पीला और निर्बल हो जाता है, क्योंकि उसे ठीक से हवा और रोशनी नहीं मिलती।

मात्रा—बरसात के प्रारंभ में लगाकर जब तीन-चौथाई बरसात का मौसम बीत जाय तो जितनी फसल पैदा हो गाड़ देनी चाहिए।

(६) **हरे या सूखे पत्तों की खाद**—फलों के बागीचों में बहुत-से पेड़ ऐसे होते हैं, जिनके पत्ते शरद् ऋतु में वसंत के पहले झड़ते ही हैं और प्रायः सभी पेड़ों के कुछ-न-कुछ पत्ते झड़ते ही रहते हैं, जिन्हें लोग जला देते हैं इन पत्तों को न जलाकर यदि इनका खाद बनाया जाय तो बड़ा उपयोगी होगा। सब पत्तों को एक गढ़े में डलवाते रहना चाहिए और उन पर कुछ मिट्टी और पानी डलवाते रहने से सड़ने पर बहुत ही उत्तम खाद बन जाता है। ऐसा खाद गोबर के खाद से भी जल्दी लाभ पहुँचानेवाला होता है। इसलिए जहांतक हो, झड़े हुए अथवा काट-छांट द्वारा प्राप्त किए हुए पत्तों को सड़ाकर जरूर काम में लाना चाहिए।

मात्रा—मिट्टी-मिश्रित सड़े हुए पत्तों के खाद की मात्रा गोबर के खाद की मात्रा के बराबर होनी चाहिए।

(७) **काम्पोस्ट**—निंदाई के समय खेतों से निकाले हुए घास-पात, फसलों की खूटियां, भूसा, हरे-सूखे पत्ते और काट-छांट द्वारा प्राप्त की हुई कोमल टहनियों इत्यादि को एक खास रीति से सड़ाकर जो खाद तैयार किया जाता है, उसे 'काम्पोस्ट' कहते है। चूंकि बागीचों में वृक्षों के पत्ते काफी मात्रा में झड़ते रहते हैं और काट-छांट द्वारा कोमल टहनियां तथा निंदाई से निकाला हुआ घास-पात काफी मात्रा में मिलता रहता है, इसलिए इन सबका काम्पोस्ट बना लिया जाय तो अच्छा खाद बन जाता है।

काम्पोस्ट बनाने की रीति—बागीचों में जिन वस्तुओं से काम्पोस्ट बन सकता है, वे प्रायः दो प्रकार की होती है, एक वे जो जल्दी सड़ जायं, जैसे हरे-सूखे पत्ते, खेतों का घास-पात अथवा साग-भाजी के पत्ते इत्यादि। दूसरे वे, जो हरे लेकिन कठोर हों और देरी से सड़ें, जैसे काट-छांट द्वारा प्राप्त की हुई टहनियां। काम्पोस्ट बनाने के समय जहांतक हो, दोनों प्रकार की वस्तुओं को बराबर भाग में मिलाकर काम में लानी चाहिए, ऐसे मिश्रण को बरसात में समतल भूमि पर ढेरी के रूप में बनाकर सड़ा सकते हैं; परंतु गर्मी के दिनों में गढ़ों में रखना चाहिए ताकि सड़ाने के

लिए पानी कम देना पड़े।

सड़ते हुए खाद में एक तो वैसे ही गर्मी पैदा हो जाती है, जिसकी वजह से भी पानी उड़ता रहता है, दूसरे यदि गर्मी के दिनों में समतल भूमि पर रखा जाय तो बाहर की गर्मी और हवा से बहुत जल्दी-जल्दी पानी उड़ जाता है और खाद ठीक से सड़ने नही पाता।

काम्पोस्ट समतल भूमि पर या गढ़े में बनाया जा सकता है। उसका आकार सात-आठ फुट चौड़ा और ढाई तीन फुट ऊंचा होना चाहिए।

बनाते समय मिश्रण के वज़न के प्रमाण से करीब ५ शतांश गोबर और १० शतांश मिट्टी पानी में घोलकर खाद में मिलानी चाहिए और आवश्यकतानुसार पानी छिड़कते रहना चाहिए। गोबर और मिट्टी मिलाने से खाद जल्दी सड़ता है। सड़ते हुए कम्पोस्ट को प्रति मास एक बार उलट-फेर कर देना चाहिए। इस रीति से सड़ाया हुआ काम्पोस्ट तीन-चार महीने में अच्छा खाद बन जाता है।

(८) शहर के कूड़ा-कर्कट का खाद—अन्य खाद के अभाव में इस खाद का भी उपयोग किया जा सकता है। इसमें घरों का कूड़ा और राख, बर्तनों के टुकड़े, सड़कों पर का गोबर और लीद, साग-भाजी के अनुपयोगी पत्ते और फटे पुराने कपड़े इत्यादि कई वस्तुएं रहती हैं। प्रारंभ में इसे वैसे ही खेतों में बरसात के पहले पचास-साठ गाड़ी प्रति एकड़ के हिसाब से डाल सकते हैं, परंतु बाद में डालना पड़े तो अच्छी तरह से सड़ाकर डालना चाहिए।

(९) शहर की मोरियों का पानी—फलों के वृक्षों की सिंचाई इस पानी से की जा सके तो अच्छा ही होगा। इसमें भी खाद के तत्व पाये जाते हैं।

फासफोरस-प्रधान कार्बनिक खाद

(१) हड्डियां—फलों के वृक्षों के लिए हड्डी का खाद बहुत उपयोगी होता है, क्योंकि इससे फासफोरस की पूर्ति होती है जिससे जड़ें पुष्ट होती हैं और फल अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं। जो पेड़ फल न देते हों

अथवा कम देते हों, उनमें सड़ाई हुई हड्डी का मिश्रण दिया जाय तो फल आने आरंभ हो जाते हैं।[1] हड्डी को सड़ाने की क्रिया बहुत सरल है हड्डी का चूर्ण, गन्धक, बालू और कोयले के मिश्रण को पानी से भिगोकर सड़ाया जाता है। छः भाग हड्डी का चूर्ण, छः भाग बालू, डेढ़ भाग गंधक और एक भाग लकड़ी के कोयले का चूर्ण मिलाकर पानी से गीला रख कर छः महीने तक सड़ाना चाहिए। सड़ता हुआ मिश्रण सूखने न पाये, इसलिए पानी देते रहना चाहिए।

मात्रा—पौधे लगाते समय प्रत्येक पौधे के गढ़े में दो-ढाई सेर तक हड्डी का चूर्ण[2] पहुँचे इतना पौधों की उपयोगितानुसार देना चाहिए और बाद में प्रति वर्ष जब गोबर का खाद दिया जाय, उस वक्त भी इसका खाद देना चाहिए। गोबर यदि सौ भाग हों तो उसमें एक भाग हड्डी का चूर्ण मिला देना चाहिए। आगे जहां-कहीं हड्डी-मिश्रित खाद का वर्णन हो वहां इसी मिश्रण को समझना चाहिए। जहां सिर्फ हड्डी ही देने का प्रश्न हो वहां तीन मन से छः मन तक हड्डी का चूर्ण प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिए।

(२) मछलियों की खाद—जहां मछलियों का व्यवसाय बहुत होता है वहां सड़ी-गली मछलियां फेंक दी जाती हैं। वहां से अथवा उन कारखानों से, जहां मछली का तेल निकाला जाता है, ऐसा खाद मिल जाता है। हड्डी के खाद की भांति इसका भी उपयोग किया जा सकता है।

---

१. एक मित्र के बागीचे में दो नीबू के पेड़ काफी बाढ़ आने पर भी नहीं फलते थे और वह उन्हें हटा देने का निश्चय कर चुके थे। मेरे आग्रह से उन्होंने सड़ाई हुई हड्डी के खाद का प्रयोग किया तो दोनों पेड़ उसी साल से फलने लग गये।

Pussa Bulletin No 204 by N. D. Vyas.

२. महीन चूर्ण के अभाव में छोटे-छोटे टेकड़े भी डाल सकते हैं। ऐसी स्थिति में मात्रा बढ़ा देनी होगी।

(३) पक्षियों की निष्ठा—समुद्र के पक्षी जिस स्थान पर बैठा करते है वहाँ उनकी विष्ठा गिरती है। ऐसी विष्ठा में खाद के तत्व काफी मात्रा में पाये जाते हैं। यदि स्थान ऐसा हुआ कि जहां पानी गिरता हो तो उसमें नाइट्रोजन और फासफोरस बराबर मात्रा में होते हैं। ऐसी विष्ठा में चार-पांच शतांश नाइट्रोजन और उतना ही फासफोरस रहता है। जहां पानी गिरता है वहां नाइट्रोजन वाले पदार्थ घुलकर बह जाते हैं। इससे फासफोरस सात-आठ शतांश तक हो जाता है। व्यवसायी लोग ऐसी विष्ठा वहाँ से खोदकर ले आते हैं और बेच देते हैं। इसके सब जगह मिलने की संभावना नहीं है। जहां मिल सके काम में लाई जा सकती है :

पोटाश-प्रधान कार्बनिक खाद

समुद्र के किनारों के निकट पानी में होनेवाले पौधों में लगभग १·५ शतांश पो० आ० रहता है। मिलने से इनका उपयोग किया जा सकता है। कम गहरी नदियों और तालाबों में जो पानी के पौधे जम जाते हैं और जिन्हें सेवार कहते हैं, उनका भी उपयोग लाभप्रद होता है। मुलायम पत्ते वाला सेवार अच्छा होता है। सूखे सेवार में लगभग १ शतांश ना० ०·४ शतांश फा० पे० और २ शतांश पो० आ० रहता है।

अकार्बनिक खाद

इन खादों का उपयोग कार्बनिक की कमी को पूरा करने अथवा उनके साथ-साथ डालना ठीक होगा। अभी भारतवर्ष में ऐसे प्रयोग बहुत नहीं हुए हैं जिनके आधार पर फलों के वृक्षों के लिए अकार्बनिक खाद की उपयोगिता सिद्ध की जा सके अथवा उनकी मात्रा का अनुमान ठीक से लगाया जा सके। ऐसी स्थिति में भारतीय तथा विदेशी अनुसंधानों के आधार पर विचार किया जाय तो निम्नलिखित मात्राएं ठीक होंगी। काट-छांट के बाद जब गोबर का खाद दिया जाय तब इन्हें देना चाहिए।

अकार्बनिक खाद में नाइट्रोजन की पूर्ति के लिए अधिकतर उपयोग सोडियम नाइट्रेट और एमोनियम सलफेट का किया जाता है। सुपरफासफेट से फासफोरस की पूर्ति होती है। नीसीफास नाम के खाद से नाइट्रोजन और फासफोरस दोनों की पूर्ति होती है। पोटेशियम सलफेट के रूप में पोटाश दिया जा सकता है। इससे फलों का स्वाद और आकार अच्छा बनता है। पोटाश की पूर्ति राख द्वारा भी की जा सकती है। आजकल बाजार में खाद-विक्रेता ऐसे मिश्रण भी बेचते हैं जिनसे तीनों तत्वों की पूर्ति हो जाती है और जहांपर खाद की मात्रा उसके तत्व के रूप में दी जाती है पृष्ठ ३४-३५ में खाद के तत्वों की मात्रा दी गई है, जिससे पाठक गणना करके डाल सकते हैं।

अंगूर, आम, नासपाती, माल्टा, सपाट्ट, सेब, संतरा आदि ऐसे फल हैं जिनसे अच्छी आमदनी होती है। इनके लिए खाद पर कुछ अधिक व्यय किया जा सकता है। ऐसे फलों के लिए बीस सेर से पच्चीस सेर नाइ-ट्रोजन और तीस सेर से पैंतीस सेर तक फासफोरस प्रति एकड़ पहुँचे, इतना खाद देना चाहिए। अमरूद, आड़ू, आलूबुखारा, अंजीर, केला, पपीता आदि के लिए पन्द्रह सेर से बीस सेर नाइट्रोजन और पच्चीस सेर से तीस सेर फासफोरस प्रति एकड़ ठीक होगा। पोटाश की मात्रा नाइट्रोजन से दूनी और केले-जैसी फसल के लिए ढाई गुनी भी ठीक होगी।

राख देना हो तो प्रति पौधा या पेड़ दो सेर से लेकर पाँच सेर तक दी जा सकती है।

अम्लदार मिट्टी में कितना चूना देना चाहिए यह कृषि रसायनज्ञ की सम्मति से देना चाहिए। यदि ऐसा न हो सके तो दस-पन्द्रह मन बुझा हुआ चूना प्रति एकड़ डालकर देखना चाहिए। यदि इससे भी लाभ न हो तो कुछ और डाल सकते हैं।

फलों के पेड़ों में खाद देने की रीति—प्रारंभ में कार्बनिक खाद पौधे रोपने के कुछ महीने पूर्व देना चाहिए। गर्मी के दिनों में गढ़े खोदकर

कुछ दिनों तक मिट्टी खुली रखी जाय और बरसात के पहले खाद मिलाकर गढ़े भर दिये जायं ताकि बरसात में खाद ठीक से सड़ जाय और बाद में जब पोधे लगाने का समय हो, लगाये जायं।

लगे हुए पेड़ों में खाद देने की रीति—जितनी दूर तक पेड़ की शाखाओं का फैलाव होता है, उससे दो तीन फुट अधिक दूरी तक अधिकांश जड़ों का फैलाव होता है, इसलिए धड़ से उतनी दूरी तक की जमीन आठ-दस इंच गहरी खोदकर उसमें खाद देना चाहिए। धड़ के पास की दो-तीन फुट जमीन छोड़कर शेष जमीन पर खाद डालकर उसे मिट्टी में भली-भांति मिला देना चाहिए। कृत्रिम खाद पोधों के फूलने के कुछ समय पूर्व देना चाहिए।

संकेत—फलों के बागीचों में प्रारंभ में कुछ फसलें की जाती हैं ताकि बीच की भूमि से लाभ उठाया जा सके। ऐसी फसलों को खाद अवश्य देना चाहिए ताकि भूमि की उर्वरा शक्ति कम न हो।

: ५ :

वनस्पति-संवर्धन अर्थात् पौधे तैयार करने की विधियां

फलों के पौधे या तो बीज से तैयार किये जाते हैं या कलम बांधकर। बीज से तैयार किये हुए पौधों को बीजू और दूसरों को कलमी पौधे कहते हैं। बीजू पौधे आकार में बड़े मजबूत, अधिक आयु के और
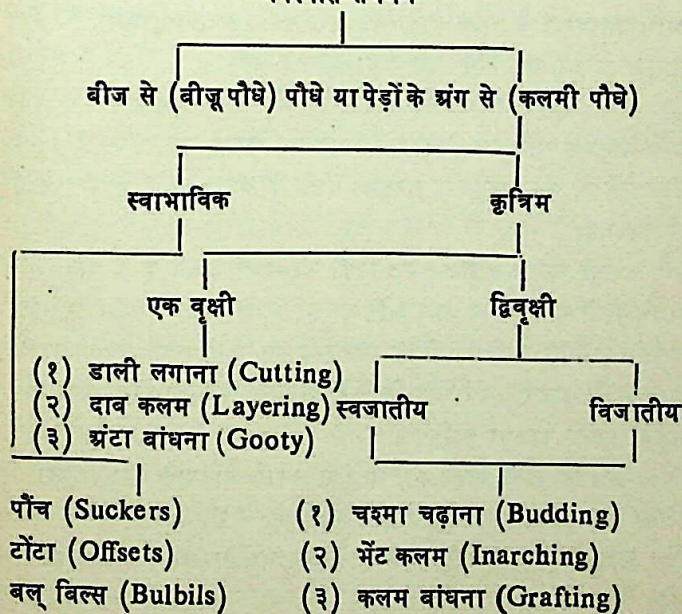
अधिक फल देने वाले होते हैं परन्तु फलते कुछ देरी से हैं और ऊंचे होने से बन्दर और पक्षियों से फलों को बचाने में कठिनाइयां आती हैं। फलों के गुणों में भी अन्तर आ जाता है। जिस पेड़ के बढ़िया फलों के बीज बोये जायं नये पेड़ों के फलों में कुछ गुण परिवर्तन हो जाता है। कभी-कभी अधिक अच्छे गुण भी आ जाते हैं परन्तु बहुधा वर्तमान गुण (आकार और स्वाद) हीनता ही आ जाती है। पौधे तैयार करने की साधारण विधियां उपर्युक्त है :—

बीजू पौधे तैयार करना

बीज से पौधा तैयार करने की साधारण युक्ति प्रायः सब कृषक जानते हैं। इसमें सिर्फ यही ध्यान रखना है कि अन्न अथवा तरकारी के बीजों की भांति फलों के बीजों की उत्पादन-शक्ति अधिक दिनों तक नहीं रहती, इसलिए जहांतक हो ताजे बीज बोने चाहिए। समशीतोष्ण वाले वातावरण में होने वाले फल जैसे सेब, नासपाती आदि के बीज ताजे न बोकर कुछ दिन बाद बोना होता है।

प्रायः सभी पौधे पहले नर्सरी में तैयार किये जा सकते हैं और बाद में समय आने पर निर्धारित स्थान पर लगाये जा सकते हैं। कुछ बीज ऐसे हैं, जैसे खरबूजा, तरबूजा आदि के बीज, जो सीधे खेत में ही लगाये जाते हैं।

नर्सरी हमेशा बलुआ-दुमट मिट्टी की अच्छी होती है। यदि ऐसी न मिले तो मटियार में बालू और बलुआ में मटियार मिट्टी मिलाकर वैसी बना लेनी चाहिए। गोबर और सड़े हुए पत्तों का खाद बराबर भाग में मिलाकर नर्सरी की मिट्टी में प्रतिवर्ग गज दो-तीन सेर खाद पहुँचे, इतना डालना चाहिए।

फलों की खेती वालों को खेतों में लगाये जानेवाले बीजू पौधों के सिवा जिन पौधों पर कलम चढ़ाई जाती है, वे भी तैयार करने पड़ते हैं। अतः उन्हें भी नर्सरी में तैयार करना चाहिए ताकि उत्तम स्वस्थ पौधे मिल सकें।

कलमी पौधे तैयार करना—कलमी पौधे क्यों तैयार किये जाते हैं? ज़गन्नियंता के नियमानुसार उच्चकोटि के प्राणी या पौधों की उत्पत्ति नर-नारी के मेल से होती है। वनस्पति-शास्त्र के विशेषज्ञों ने वनस्पतियों में भी नर-नारी फूल की खोज करके वनस्पति संसार में हलचल मचा दी है। पृथक्-पृथक् गुण वाले पौधों के नर-मादीन फूलों के तत्वों को मिलाकर कई उत्तमोत्तम अनाज और फल-फूल तैयार कर दिये हैं और ऐसे गुणवाले पौधों के गुण स्थिर रखने के लिए नई युक्तियां भी निकाल दी हैं। यदि ऐसी युक्तियां नहीं निकलतीं यो फलों में गुण स्थिर रखना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता। बीज से पौधे तैयार करने में गुण-परिवर्तन का भय रहता है। इसके सिवा बीजू पौधों की अपेक्षा कलमी पौधे बहुत जल्दी फल देना आरंभ करते हैं, इसलिए गुण स्थिर रखने तथा फल जल्दी प्राप्त करने के लिए वे कलम किये जाते हैं। विजातीय पौधों के मेल से पौधों की ऊँचाई कम-ज्यादा हो सकती है। कहीं-कहीं व्याधियों से बचाने के लिए भी ऐसा किया जाता है। कबीट के पौधे पर संतरे की कलम चढ़ाई जाय तो पेड़ छोटे और फल मीठे होते हैं। उसी भांति जमेरी नीबू पर संतरे की कलम चढ़ाई जाय तो पेड़ खड़े यानी कम फैलनेवाले होते हैं।

कलमी पौधे दो प्रकार के होते हैं—एक वे जो स्वाभाविक रीति से तैयार होते हैं और दूसरे वे जो कृत्रिम रीति से तैयार किये जाते हैं। पहले प्रकार के पौधे पेड़ स्वयं तैयार कर देते हैं। जैसे केले के पींच (Suckers) स्ट्रोबेरी का टोंटा (Offsets), अनन्नास के सकर्स रामबाण के पींच। इनको स्थानांतर कर देने से ही पौधे या पेड़ दूसरी जगह तैयार हो जाते हैं।

कृत्रिम रीति से पौधे तैयार करने में मनुष्यों को कुछ परिश्रम करना पड़ता है। ये युक्तियां कई प्रकार की हैं, परन्तु इन्हें मुख्यतः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—एकवृक्षी, अर्थात् जिसमें एक ही वृक्ष का कोई अंग काम आता है और दूसरी द्विवृक्षी, अर्थात् जिसमें दो स्वजातीय

या विजातीय पौधों को संलग्न किया जाता है। आम के पौधे पर आम की अथवा आड़ू (Peach) के पौधे पर आड़ू की कलम चढ़ाना स्व-जातीय पौधों के मेल के उदाहरण हैं और महुआ या खिरनी के पौधे पर सपाटू की, आड़ू के पौधे पर आलूबुखारे की कलम चढ़ाना विजातीय पौधों के संलग्न हैं।

कलम की सफलता मुख्यतः चार बातों पर निर्भर है : (१) पौधों के स्वास्थ्य पर, (२) तैयार करने के समय पर, (३) युक्ति की जानकारी पर और (४) बाद की देखभाल पर।

(१) **पौधे का स्वास्थ्य**—स्मरण रहे कि टहनी या फल-फूल-कर्त्ता, जो भाग पौधों के हैं, वे पत्ते और शाख के मेल की जगह पर पत्ते और शाख के बीच में से निकलते हैं, जिन्हें हिंदी में आंख, चश्मा या कली कहते हैं और अंग्रेजी में टहनी देनेवाली को वुड बड (Wood bud) और फूल फलवाली को फ्लावर और फ्रूट बुड (Flower and Fruit bud) कहते हैं। पौधों की बाढ़ के लिए वुड बड स्वस्थ होनी चाहिए, इसलिए जो टहनी कलम तैयार करने के लिए चुनी जाय वह अखंड पत्ते वाली चुनकर यह देख लेना चाहिए कि वुड बड (चश्में) अखंड हों, कीटादि शत्रुओं से हानि पहुंचाई हुई न हों। इसी भांति जिस पौधे पर कलम चढ़ाई जाय, जिसको आगे बीजू के नाम से संबोधित किया जायगा, वह स्वस्थ हो, उसके धड़ में किसी प्रकार की व्याधि या कीट न हो।

(२) **कलम बांधने का समय**—जब पौधों की बाढ़ होती है उस समय उनमें रस का संचालन बड़ी तेजी से होता है, इसलिए यदि बाढ़ के प्रारंभिक काल में कलमें तैयार की जायं तो अच्छी लग जाती हैं। यह समय पौधे की जाति-अनुसार वर्षा ऋतु के प्रारंभ से वसंत ऋतु के अंत तक रहता है। किसी-किसी जाति में गर्मी में भी ऐसा होता है, इसलिए पौधों की बाढ़ के प्रारंभिक काल में ही कलमें तैयार करनी चाहिए।

(३) **युक्ति की जानकारी**—बिना क्रियात्मक अनुभव के सभी प्रकार

की कलमें तैयार नहीं की जा सकतीं और कौन-सी रीति से किस जाति के पेड़ की कलम अच्छी तैयार होगी, यह भी भली-भांति जानना चाहिए। साधारणतः एकवृक्षी कलम करना तो कुछ सरल है, परंतु जहां दो वृक्षों का संलग्न करना होता है, वह क्रिया जरा कठिन है। इसके सिवा यह जानना भी आवश्यक है कि कौनसे फल के वृक्ष की कलम किस ऋतु में कौन कौन-सी क्रिया से जल्दी तैयार हो सकती है—विजातीय जातियों के संलग्न में किस जाति के पेड़ों का मेल हो सकता है।

स्मरण रहे कि प्रत्येक पौधे में छाल के नीचे एक प्रकार के वृद्धि-कोष (Cambium cells) रहते हैं। पौधों की बाढ़ इन्हीं कोषों द्वारा होती है। संयोग में मुख्य कर्त्तव्य इन्हीं का होता है, इसलिए जब दो पौधों के अंग मिलाये जायं तो इसी रीति से मिलाना चाहिए कि वृद्धि-कोष बरावर मिल जायं। उदाहरण के लिए, भेंट-कलम लीजिए। जब यह कलम बांधी जाय, तो पौधों के अंगों को इस प्रकार छीलना चाहिए कि छीले हुए भाग बरावर मिल जायं। कटाव कम-ज्यादा होने से उनका ठीक मेल नहीं होता तो पौधे और डाली चिपकेंगे ही नहीं और यदि थोड़ा-बहुत मेल होकर चिपक जायंगे तो नया पौधा स्वस्थ नहीं होगा, इसलिए कलम तैयार करने की युक्तियों का निजी अनुभव होना ही चाहिए।

(४) **बाद की देखभाल**—कलमों को रोग अथवा कीट या हवा से हानि नहीं पहुंचे, आवश्यकतानुसार उन्हें पानी मिलता रहे और जाड़े में ठंड से बचाने की क्रियाओं की ओर ध्यान रखना बहुत जरूरी है।

कलम बांधने के औजार और अन्य वस्तुएं

(१) **कलम काटने की छुरी**—(A pruning knife)—यह एक मोटे दस्तेवाला तेज चाकू होता है। किसी भी मजबूत तेज चाकू से काम चल सकता है।

(२) **चश्मा चढ़ाने की छुरी**—(A budding knife)—यह एक

छोटा-सा तेज चाकू होता है जिसके दस्ते की नोक चपटी और पतली होती है। इस नोक से बीजू पौधे की छाल चश्मा विठलाने के लिए सहूलियत से ऊपर उठाई जा सकती है।

(३) मोम-रंजित कपड़े की धज्जियां, फीता या मोटी सुतली, जिससे कलमें बांधी जायं और पौधे कटने न पावें।

जहां काम विशेष होता है वहां मलमल की नौ-दस इंच चौड़ी फाड़ी हुई पट्टी को पतली लकड़ी पर लपेटकर उसका रोल ऐसा बना लेते हैं कि लकड़ी पर डेढ़-दो इंच मोटी तहें कपड़े की हो जायं। इस रोल को फिर एक भाग राल और एक भाग मोम के गरम मिश्रण में डुबो देते हैं। मोम अंदर तक प्रवेश कर कपड़ा तैयार हो जाता है। ठंडा होने पर कपड़ा रोल पर चिपका रहता है। आवश्यकतानुसार फाड़कर काम में ला सकते हैं।

थोड़े काम के लिए किसी मजबूत कपड़े पर गरम मोम लगा देने से ठंडा होने पर वह कपड़े में रंज जाता है। फिर इस कपड़े की आधे इंच से एक इंच चौड़ी धज्जियां फाड़कर काम में लाई जा सकती हैं। सुतली की अपेक्षा कपड़ा उत्तम होता है, इससे पकड़ भी अच्छी हो जाती है और पौधे की छाल कटने नहीं पाती।

(४) **कलमी मिट्टी और मोम**—जब कलमें बांधी या लगाई जाती हैं तो जहांपर वे काटी या छीली जाती हैं वहां पौधों पर घाव हो जाते हैं। ऐसे घाव यदि वैसे ही छोड़ दिये जायं तो उनपर पानी लगने से व्याधियां आक्रमण कर बैठती हैं, या कीट ही अपनी करतूत कर बैठते हैं और कुछ समय में पौधे मर जाते हैं। ऐसे शत्रुओं से बचाने के लिए घाव पर मिट्टी या मोम लगाना पड़ता है। मिट्टी बिना मूल्य के तैयार हो सकती है और मोम में कुछ व्यय करना पड़ता है, परंतु मोम एक बार तैयार करने से बहुत दिनों तक चल जाता है। मिट्टी बार-बार तैयार करनी पड़ती है।

कलमी मिट्टी—दो भाग मिट्टी में एक भाग गोबर, कुछ महीन भूसा

और आवश्यकतानुसार जल मिलाकर उसे ऐसा बना लेना चाहिए कि जिससे वह पौधों पर चिपक सके। भूसा और गोवर इसलिए मिलाते हैं कि जिसमें धूप से मिट्टी फटने न पावे। कहीं भूसा न मिलाकर पुरानी रुई भी मिला देते हैं और मिश्रण को सड़ाकर काम में लाते हैं।

कलमी मोम—यह राल और मोम के मिश्रण से बनाया जाता है। चार भाग राल और एक भाग मोम और एक भाग अलसी के तेल का मिश्रण अच्छा होता है। इन तीनों को गरम कर लेने से मोम तैयार हो जाता है। चूंकि राल के आग पकड़ने का भय रहता है, इसलिए एक चौड़े बर्तन में पानी रखकर उसे उबालना चाहिए और उबलते हुए पानी में उपर्युक्त मिश्रण का वर्तन रखकर गरम करना चाहिए। जब मिश्रण अच्छा बन जाय तो इसे ठंडा करके रख सकते हैं।

कलमें तैयार करने की साधारण युक्तियां

एकवृक्षी कलमें—डाली या कलम लगाना—(Cutting)—कलमी पौधे तैयार करने की सबसे सरल युक्ति यही है। कहीं से अच्छे पेड़ की एक साल की आयु की डाली काटकर जहां चाहें वहां खेत में या नर्सरी में लगा दी जाती है। ऐसी कलमें बहुधा बरसात में लगाई जाती हैं और वे जल्दी लग भी जाती हैं। इन्हें बहुधा दीमक (White-ants) हानि पहुंचाती हैं। इसलिए जहां दीमक का भय हो, वहां कलम लगाने की जगह की मिट्टी में नीम की खली मिला देनी चाहिए। यदि खली न मिले तो कलमों को गमलों में या बक्सों में लगाकर उन्हें मचान पर रखेंगे तो उत्तम होगा। गमलों में लगाने से दूसरा लाभ यह होगा कि आवश्यकता पड़ने पर गमले ठंडे या गर्म स्थान में हटाये जा सकेंगे। जो पौधे कलम से तैयार हो सकते हैं, उन्हें स्थानांतर करने में विशेष व्यय नहीं पड़ता, क्योंकि कलमें ही आसानी से भेजी जा सकती हैं। पौधे तैयार करके भेजने की आवश्यकता नहीं होती।

कलम की लंबाई इतनी होनी चाहिए कि जिसमें चार-पांच आंखें

या चश्में (Buds) हों (जहां डाली से पत्तों का मेल होता है वहां आंखें होती हैं), अर्थात् करीब पांच पत्ते होने चाहिए। बहुधा एक बीते की लंबाई काफी होती है। कलम के दोनों मुंह तिरछे कटे होने चाहिए। नीचे का कटाव पत्ते के मेल की जगह से कुछ नीचे होना चाहिए। कलम लगाते समय सीधी न लगाकर टेढ़ी लगाई जाय तो अच्छी जमती है। कलम की दो आंखें जमीन में और तीन ऊपर होनी चाहिए और ऊपर वाली तीनों आंखें ऊपर नीचे, अर्थात जमीन और आसमान की तरफ न रहकर बाजू में रहनी चाहिए। इस प्रकार से लगाई हुई कलम को यदि पानी मिलता रहे तो वह पंद्रह-बीस दिन में जड़ों के अंकुर फेंक देती हैं। नासपाती, अंजीर आदि की कलमें इस प्रकार से लगाई जाती हैं।

दाब कलम—(Layering)—इसमें लगभग एक साल की आयु की टहनी को झुकाकर उसके बीच के भाग को मिट्टी में दबा देते हैं। टहनी जमीन की सतह के पास हुई तो जमीन में और नहीं तो मचान पर गमले रखकर उनमें दबा दी जाती है। पंद्रह-बीस दिन से अढ़ाई महीने
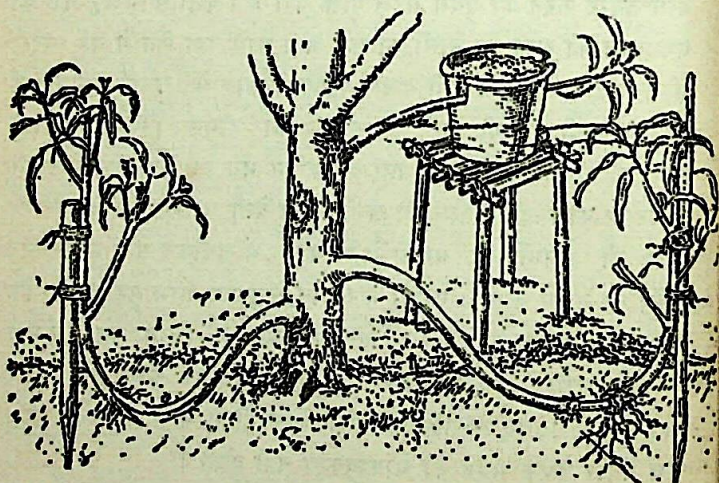
चित्र नं० ३—दाब-कलम

में पौधों की जाति-अनुसार ऐसी कलम तैयार हो जाती है। यदि टहनी सख्त हो तो दवाते समय उसपर की करीब एक इंच जगह की छाल चाकू से छुड़ा ली जाती है अथवा टहनी में एक इंच लंवा चीरा देकर नीचे के भाग को वीचों-वीच से काट देते हैं और फिर डाली झुकाकर दवा दी जाती है। डाली हिलने-डुलने अथवा ऊपर उठने न पावे, इसलिए एक खूंटा गाड़कर उसमें वांध दी जाती है। जव लग जाती है तो मुख्य पौधे अथवा पेड़ से पृथक् कर दूसरी जगह लगा देते हैं। अंगूर, अंजीर आदि की कलमें इस प्रकार से लगाई जा सकती हैं। दाव-कलम गमले में भी लगाई जा सकती हैं। इसके लिए सरल रीति यह होगी कि एक गमले में आमने-सामने की वाजू में दो कटाव ऐसे वनाये जायं कि उनमें डाली ठीक से जम जाय। कटाव तीन-चार इंच गहरे होने चाहिए। जव छीली हुई डाली गमले में जमा दी जाय तो चिकनी मिट्टी से कटाव वंद कर देना चाहिए। गमले में मिट्टी, वालू और पत्तों का मिश्रण भरना चाहिए। पानी देने के लिए एक महीन छेद वाला वर्तन गमले पर रख दिया जाय और उसमें नित्य पानी भर दिया जाय तो कलम को आवश्यकतानुसार पानी मिलता रहेगा।

अंटा बांधना (Gooty)—इसे भी एक प्रकार की दाव-कलम ही मानना चाहिए, क्योंकि दोनों में जड़ें फिकवाने की रीति एक ही है। दाब-कलम में टहनी मिट्टी में दवाई जाती है और इसमें मिट्टी टहनी पर लगाई जाती है। इसमें एक साल की आयु की आधा इंच मोटी टहनी पर एक दूसरे से एक इंच की दूरी पर दो गोल कटाव इतने गहरे लगाये जाते हैं कि चारों ओर से सिर्फ छाल ही कटे। फिर उस छाल पर एक लंवा चीरा लगाकर उसे हाथ से या चाकू से निकाल देना चाहिए ताकि एक इंच जगह की छाल चारों ओर से छूट जाय। इस खुली हुई जगह पर मिट्टी बांध देने से वह डाली नई जड़ें फंक देती है। मिट्टी बांधने की सरल रीति यह है कि एक आठ-दस इंच लंवे-चौड़े चट्टी के टुकड़े का एक कोना कटाव से दो इंच की दूरी पर धड़ की तरफ इस तरह से बांध दो कि फैलाने से चट्टी कुप्पाकार (Funnel shaped) हो जाय। फिर उसमें मिट्टी भर-

कर चट्टी को लपेट करके दूसरा मुंह दूसरी ओर बांध दो। मिट्टी इतनी भरनी चाहिए कि कटाव के चारों ओर करीब डेढ़-दो इंच हो जाय। मिट्टी बहुत गीली नहीं होनी चाहिए। वह सिर्फ इतनी गीली हो कि जोर से दबाने से बंध जाय और छोड़ने पर जरा-से दबाव से फिर बिखर जाय।
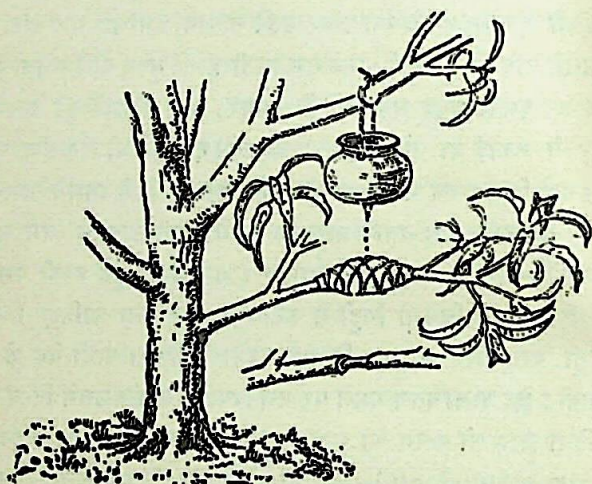
चित्र नं० ४—गूंटा (Gooty)

अधिक गीली मिट्टी की अपेक्षा ऐसी मिट्टी काम में लाई जाय तो जो जड़ें फेंकी जाती हैं, वे स्वस्थ और मोटी होती हैं। मिट्टी को बांधने के पश्चात् उसके ऊपर की शाख में अथवा एक बांस गाड़कर उसमें एक मिट्टी का बर्तन,[1] जिसके पेंदे में एक छेद हो, बांध देना चाहिए। छेद में एक कपड़े का टुकड़ा

१. मिट्टी के बर्तन के अभाव में मोटे बांस की नली भी काम में लाई जा सकती है। बांस की नली को इस प्रकार काटना चाहिए कि उसमें एक तरफ की गठान बनी रहे और दूसरी तरफ की कट जाय। जिधर गठान रहे उधर छेद करके उसमें कपड़े की बत्ती लगा देनी चाहिए। ऐसा करने से न तो बर्तन के फूटने का डर है और न विशेष व्यय का ही विचार है।

लगा देना चाहिए, जिसमें पानी धीरे-धीरे गिरता रहे। नित्य प्रति इस वर्तन में पानी भर दिया जाय तो गूटी की सिंचाई आवश्यकतानुसार होती रहेगी और मिट्टी के गीली रहने से टहनी जड़ें फेंक देगी। जब जड़ें चट्टी से वाहर निकलती हुई दिखाई दें तो उसके दो सप्ताह वाद पेड़ से टहनी को पृथक् करके नर्सरी में लगा देना चाहिए। ऐसी कलमें दो-ढाई महीने में तैयार हो जाती हैं। नींबू, लीची, लोकाट आदि की कलमें इस रीति से अच्छी लग जाती हैं।

द्विवृक्षी कलमें—इसमें स्वजातीय या विजातीय पौधों का संयोग किया जाता है। जिस पौधे के साथ कली (Budding) टहनी (Grafting)या तने (Inarching) का मेल किया जाता है वह जमीन से खाद्य पदार्थ लेकर ऊपरवाले कलमी भाग को देता है और कलमी भाग भोजन तैयार करके अपना तथा मातृ-तुल्य जड़वाले पौधे का पोषण करता है। इस प्रकार के संयोग से कई प्रकार के लाभ होते हैं।

इसमें इच्छानुसार पेड़ छोटा-वड़ा किया जा सकता है, जैसे नाशपाती की कलम वीही (Quince) पर लगाई जाय तो पेड़ छोटे हो जाते हैं। पौधों की मिट्टी तथा जलवायु अपनाने की योग्यता बढ़ जाती है। वहुधा ऐसा देखा गया है कि वहुत अच्छे स्वस्थ पौधे भी स्थानांतर करने से नई भूमि या जलवायु में मर जाते हैं। ऐसी स्थिति में वीजू पौधा, जहाँ नया पौधा लगाना हो, उस स्थान से लाकर कलम वांधी जाय और कलम लग जाने पर वहां वापस भेज दिया जाय तो वह अच्छा पनपेगा। इस रीति से जब एकाध पेड़ तैयार हो जाय तो फिर कलम वांधकर उस स्थान पर दूसरे पेड़ आसानी से तैयार किये जा सकते हैं।

पौधों के रूप, रंग और स्वाद में भी परिवर्तन किया जा सकता है। जैसे संतरे का चश्मा जमेरी पर वांधा जाय तो ढीले छिलकेवाले, कुछ वड़े लेकिन जरा खट्टे फल होते हैं। पैदावार भी अधिक होती है और फलों का रंग लाली लिये होता है। इसके विपरीत जव मीठे नीवू पर चश्मा चढ़ाया जाय तो फल मीठे, पीले रंग के और चिपके हुए छिलकेवाले होते
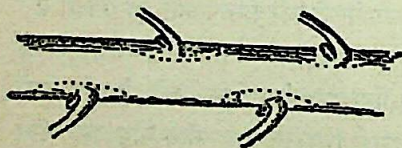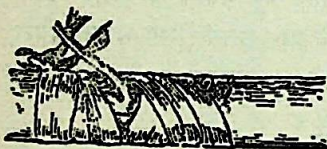
चित्र नं० ५—चश्मा लगाना

१. चश्मा निकालने की डाली।
२. बीजू पौधे का घर।
३. चश्मा
४. चश्मा लगाया हुआ पौधा
५. बांधा हुआ तैयार चश्मा।
६. डाली जिसपर से ट्यूब्यूलर और रिंग चश्मे निकाले गये हैं।
७. ऊपरी ट्यूब्यूलर और नीचे रिंग चश्मा।
८. बीजू पौधा जिस पर चश्मा चढ़ाया गया है।

हैं। पैदावार कुछ कम होती है।

चश्मा चढ़ाना—(Budding) इस रीति में यह प्रयत्न किया जाता है कि किसी उत्तम पेड़ की टहनी की आंख (चश्मा) लेकर उसी जाति के अथवा दूसरी जाति के छोटे पौधे पर लगा दी जाती है। आंख नई वढ़ती हुई स्वस्थ टहनी से लेनी चाहिए। एक अच्छी टहनी काटकर बीजू पौधे के पास लेजाकर वहां उसकी आंख निकालते हैं।

बीजू पौधे के धड़ पर जमीन से दो-तीन इंच ऊंचा, करीव डेढ़ इंच लंवा, सिर्फ छाल कटे, इतना गहरा एक चीरा लगाया जाता है और पेड़ झुकाकर चाकू (Budding knife) के पतले दस्ते से छाल और उसके नीचे के काष्ठ का संबंध छुड़ा दिया जाता है। इस खुली हुई जगह में टहनी की आंख विठला दी जाती है, जिससे बीच के काष्ठ के साथ उसका संबंध हो जाय। फिर पौधे को सीधा करके कपड़े की धज्जी से मजवूत बांध देना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि आंख खुली रहे, पट्टी के नीचे दव न जाय। वांधने के पश्चात् कलमी मिट्टी या मोम लगा देना चाहिए।

आंख निकालना—लायी हुई स्वस्थ टहनी पर तेज चाकू इस तरह चलाओ कि पत्ते के जोड़ की जगह से आधा इंच ऊपर से चलकर नीचे के काष्ठ का कुछ भाग लेता हुआ पत्त से पौन इंच नीचे निकल आवे। फिर कटे हुए काष्ठ को छुड़ाकर छाल ऐसी बना लेनी चाहिए कि वह जिस पौधे पर जहां विठलाना हो, उसपर ठीक से बैठ जाय। पत्ते को आधा काटकर नीचे का भाग लगा रहने देना चाहिए। जब यह पत्ता चार-पांच रोज में अपने-आप गिर जाय तो समझ लो कि चश्मा लग गया। यदि सूखकर वहीं चिपका रहे तो सफलता संदेहजनक होगी। चश्मा, जहां तक हो, उत्तर की ओर चढ़ाना चाहिए और चढ़ाने के वाद पौधे पर कुछ छाया का भी प्रवन्ध करना चाहिए। इस प्रकार से चढ़ाया हुआ चश्मा दो-तीन सप्ताह में जब नया कोपल फेंक दे तो वांध को काट देना चाहिए और बीजू पौधे का ऊपरी भाग चश्मे की जगह से पांच-छः इंच की ऊंचाई से काट दिया जावे तो ठीक होगा। इस पांच-छः इंच के

ठूंठ के साथ नया कोंपल बांध दिया जाय तो वह सीधा हो जायगा और जब वह सीधा हो जाय तो यह ठूंठ भी काट दिया जा सकता है । इस प्रकार से संतरे की कलमें लगाई जाती हैं।

उपर्युक्त रीति में चीरा सीधा लगाया था परंतु सरलता के लिए, जिसमें छाल आसानी से छूट जाय और चश्मा सरलता से विठलाया जा सके, यह चीरा अंग्रेजी अक्षर 'टी' (T) के आकार का या उल्टी (⊥) के आकार का अथवा धन या गुणा के आकार (+ ×) का लगाया जा सकता है, परंतु इन सबसे लंबा चीरा ही उत्तम है। क्योंकि उसमें पौधा स्वयं अपनी छाल से दबाकर चश्मे को पकड़ लेता है। इस प्रकार के चश्मे को अंग्रेजी में शील्ड बडिंग (Shield budding) कहते हैं।

इसके सिवा दो लंबे और एक आड़ा चीरा लगाकर छाल को उलट करके भी चश्मा विठलाया जाता है और फिर छाल को सीधा करके बांध सकते हैं। इसे अंग्रेजी में प्लेट बडिंग (Plate budding) कहते हैं। जब चीरा अंग्रेजी अक्षर एच (H) के आकार का लगाया जाता है और छाल ऊपर-नीचे दोनों ओर लौटाई जाती है, तो उसे एच-बडिंग कहते हैं। जब छाल सरलता से नहीं निकलती है तो चाकू से वर्गाकार रूप में छीलकर उसे निकालते हैं और छीले हुए भाग भर चश्मा बांधना पड़ता है। तब उसे फ्लूट बडिंग (Flute budding) और जब चारों ओर की छाल छुड़ाकर चश्मेवाली छाल इस तरह काटकर बिठलाई जाय कि सब जगह ढक ले तो उसे रिंग बडिंग (Ring budding) कहते हैं। जब चश्मे की छाल इस प्रकार निकाली जाती है कि वह काष्ठ छोड़कर नली के रूप में ऊपर निकल आवे और पौधे की टहनी पर वैसे ही उतारकर बिठला दी जाय तो उसे ट्यूब्यूलर बडिंग (Tubular budding) कहते हैं। रिंग या ट्यूब्यूलर बडिंग द्वारा आड़ू, आलूबुखारा आदि की कलमें लगाई जाती हैं। चैत्र मास में जब आड़ू की नई टहनियां निकलती हैं उस समय जो चश्मा लेना हो, उसके ऊपर नीचे दो गोल चीरे इस प्रकार लगा दिए जायं कि ऊपर का भाग कट जाय और नीचे का कटाव

सिर्फ छाल की गहराई तक ही कटे। फिर बाएं हाथ से टहनी को पकड़ कर दाहिने हाथ के अंगूठे और पहली अंगुली से चश्मा खींचा जाय तो वह जल्दी से नली के रूप में निकल आता है। इसी तरह से बीजू पौधे का चश्मा छुड़ाकर उस जगह पर नया चश्मा उतार देना चाहिए। दो-तीन सप्ताह में ऐसा चश्मा लग जाता है।

भेंट-कलम (Inarching)—इसमें अच्छे गुणवाले पेड़ की टहनी साधारणतः स्वजातीय और कभी-कभी विजातीय पौधे के साथ बांध दी जाती है। आम के पौधे के साथ आम की टिहनी का मेल स्वजातीय
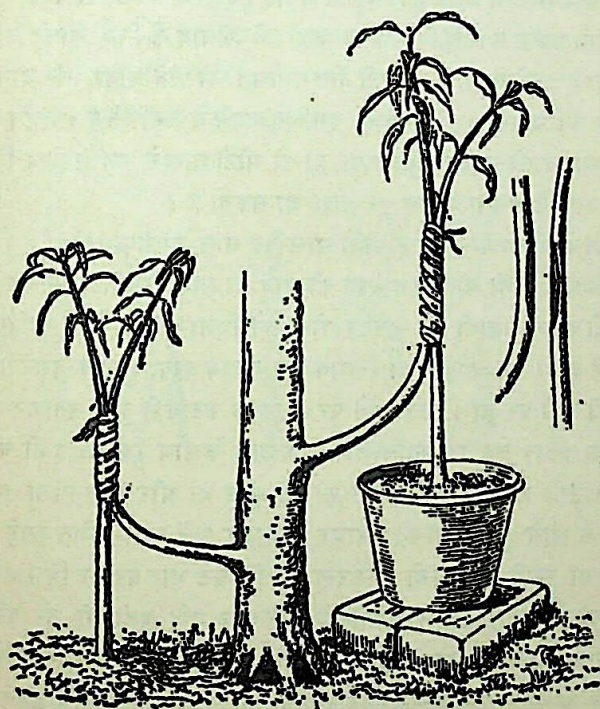
चित्र नं० ६—भेट कलम

मेल का उदाहरण है। सफाट्टू की टहनी का महुआ या खिरनी के पौधे के साथ बांधना विजातीय पौधों का मेल कहा जा सकता है। बीजू पौधा या तो गमले में तैयार किया जाता है या जिस पेड़ से कलम बांधनी होती है, उसके नीचे मिट्टी की छोटी ढेरी लगाकर उसमें पौधे को लगा देते हैं। जब टहनी ऊंची हो अथवा कलमी पौधा दूर भेजना हो तो गमले में लगाना चाहिए अन्यथा पेड़ के नीचे लगाना ही उत्तम होता है। इस प्रकार की कलमें दो-तीन महीने में तैयार होती हैं, इसलिए यदि गमले में बीजू पौधा लगाया जाय तो उसे बराबर पानी देना पड़ता है और कभी-कभी खाद भी देना पड़ता है। मिट्टी में लगाए हुए पौधों को इतना जल्दी पानी नहीं देना पड़ता और चूंकि उसकी जड़ों के फैलाव के लिए काफी स्थान मिलता है इसलिए खाद भी नहीं देना पड़ता। जो पौधे बाहर भेजे जाते हैं, उनकी जड़ें ज्यादा फैलने न पावें, इसलिए गमले में लगा देते हैं। जब कलम बांधी जानेवाली टहनी बहुत ऊपर हो तो मोटी शाख से गमला बांध दिया जा सकता है अथवा मचान पर रखा जा सकता है।

बांध की क्रिया—बीजू पौधा साल-डेढ़ साल का अच्छा होता है। ऐसे पौधे के धड़ इतनी मोटी एक साल की आयु की स्वस्थ टहनी (उस पेड़ की जिसकी कलम चढ़ानी है) चुनकर दोनों को मिलाकर देख लेना चाहिए। बाद में दोनों पर चाकू से दो निशान ऐसे लगाये जायं, जो एक-दूसरे से दो इंच की दूरी पर हों। फिर पौधे पर ऊपर के कटाव से चाकू लगाकर उसे नीचे के कटाव तक इस भांति लाओ कि छाल के साथ कुछ काष्ठ भी चला आवे। उसी भांति कलमी टहनी को भी छील दो और फिर पौधा और टहनी के छीले हुए भागों को बराबर मिलाकर इन्हें मोम-रंजित कपड़े की धज्जी या रस्सी से बांध दो। स्मरण रहे कि कटे भाग बराबर मिल जायं, न मिलने से या तो टहनी जुड़ेगी ही नहीं और यदि जुड़ी भी तो पौधा मजबूत नहीं होगा। जोर की हवा लगने से टूट जायगा, बराबर मिल जाने से छाल के नीचे के बाढ़-कोष (Cambium cells) मिल जाते हैं और संयोग जल्दी हो जाता है। बांधने के पश्चात् कलमी मोम या कलमी

मिट्टी लगा देनी चाहिए। जहां हवा वहुत चलती हो वहां पेड़ की टहनी को भी वांस गाड़कर वांध देना चाहिए, ताकि पौधे और पेड़ की टहनी में खींचातानी न हो। इस रीति से वांधी हुई कलमें महीने-डेढ़-महीने में तैयार हो जाती हैं, परंतु दो-तीन महीने वाद पेड़ से अलग करना अच्छा होता है। जब मेल ठीक हो जाय तो वांध के ऊपर से वीजू पौधे के सिर को और कलमवाली टहनी को नीचे से काटकर पौधों को नर्सरी में हटा देना चाहिए। जब पौधा नर्सरी में लगाया जाय उस वक्त पुराने वांध को काटकर नया वांध लगाना चाहिए ताकि वढ़ते हुए पौधे की छाल पुराने वांध से कट न जाय। जब अच्छी तरह से संवंध हो जाय तो रस्सी काटने के बाद चाकू से छीलकर निशान मिटा देना चाहिए। उपर्युक्त रीति से आम और सपाट्ट की कलमें वांधी जाती हैं।

कलम बिठाना या पैबंद बांधना—(Grafting)—इस क्रिया में
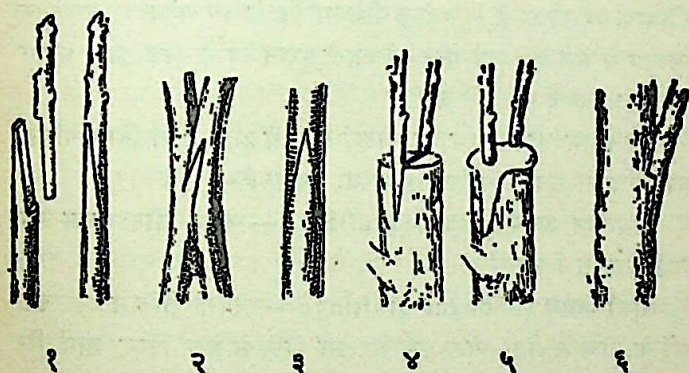
चित्र नं० ७

कलम बिठाना

१. साधारण कलम
२. जीभी कलम
३. काठी कलम
४. धड़ चीरकर बिठलाई हुई कलमें
५. कलमी मोम डाला गया है
६. बाजू से बिठलाई हुई कलम

बीजू पौधे का सिर काट दिया जाता है और उस पर किसी चुने हुए पेड़ की टहनी लगा दी जाती है। जिस प्रकार चश्मा चढ़ाने की कई युक्तियां हैं उसी भांति कलम बिठाने की भी कई युक्तियां हैं जिनमें कि मुख्य-मुख्य युक्तियां नीचे दी जाती हैं—

(१) जड़ पर कलम बिठाना (Root grafting)

(२) जड़ और धड़ के मेल की जगह बिठाना (Crown grafting)

(३) धड़ पर बिठाना (Stem grafting)

(४) शाखाओं पर बिठाना (Top working)

इनमें से पहली दो युक्तियां बहुत कम काम में लाई जाती हैं। दूसरी दो से कभी-कभी लाभ उठाया जाता है। पुराने संतरे के पेड़ में नई टहनियां तीसरी रीति से और पुराने अथवा वंध्या आम से फल प्राप्त करने के लिए चौथी युक्ति काम में लाई जाती है। इन सबमे मुख्य अभिप्राय यह रहता है कि बीजू पौधे या पेड़ के बाढ़-कोष का कलम के बाढ़कोष से मेल हो जाय और नई टहनी पुराने पेड़ के धड़ द्वारा अपना पोषण कर अच्छे फल देने लगे।

जब कलम और स्तम्भ की मोटाई एक-सी होती है तो निम्नलिखित क्रियाओं द्वारा संबंध स्थापित किया जा सकता है—

साधारण कलम (Splice grafting)—स्तम्भ और कलम को तिरछे काट से मिलाना।

जीभी कलम (Tongue grafting)—उपर्युक्त रीति से काटकर दोनों के बीच में लंबा चीरा लगाकर इस रीति से मेल किया जाय कि जिसमें तीन सतह हो जायं अथवा स्तम्भ में नाली का आकार बनाकर उसमें बैठने-जैसी कलम को छीलकर लगाना, यानी उलटी काठी कलम लगाना।

काठी कलम (Saddle grafting)—स्तम्भ के दोनों बाजू से छुरा चलाकर बीच में पैनी धार-सी बनाना और उसपर बैठने-जैसा कटाव कलम में लगाकर बिठलाना।

जब धड़ मोटा होता है तो उसे चीरकर उसमें एक या दो कलमें बाजू पर लगा दी जाती हैं (Cleft grafting) अथवा ऊपर से चाकू लगाकर छाल छुड़ाकर उसमें कलम बिठला दी जाती है (Rind or side grafting) ।

पुराने पेड़ की टहनियों में नई कलमें जब क्लेफ्ट ग्राफ्टिंग या रिंड ग्राफ्टिंग द्वारा बांधी जाती हैं तो उस क्रिया को (Top working) टॉपवर्किंग कहते हैं ।

उपर्युक्त रीति में से किसी भी क्रिया द्वारा जब कलम बिठला दी जाती है तो फिर मोमरंजित धज्जी या रस्सी से बांध दी जाती है और घाव पर कलमी मोम या मिट्टी लगा दी जाती है ।

टॉपवर्किंग—भारतवर्ष में यह क्रिया पुराने आम के वृक्षों में नई टहनियां बिठाने के लिए कहीं-कहीं ठीक सिद्ध हुई है । इसके लिए पुराने पेड़ की काट-छांट इस प्रकार की जाती है जिसमें नई टहनियां जमाने पर पेड़ का आकार ठीक बना रहे । जिन टहनियों में कलमें बांधी जाती हैं, वे करीब आधा इंच मोटी होनी चाहिए । कलमें बांधनेवाला पहले आवश्यकतानुसार कलमें तैयार कर उन्हें पानी में भिगोकर गीले कपड़े में रख लेता है । फिर वे कलमें, एक तेज चाकू, रस्सी या कपड़े की धज्जियां और एक हाथ लंबा सोटा एक टोकरी में रखकर अपने साथ पेड़ पर ले जाता है । जिस टहनी पर कलम बिठानी होती है, उसपर चाकू रखकर सोटे से ठोकता है । टहनी फट जाती है, जिसमें कलम बिठलाकर चाकू खींच लेता है और बांध देता है । बांधने के बाद कलमी मोम लगा देता है ।

पौधे लगाने का समय—जहां तक हो पौधे उसी दिन लगा देने चाहिए, जिस दिन वे नर्सरी से हटाये जायं । यह क्रिया वहीं संभव है जहां पौधों का जन्मस्थान और स्थायी स्थान एक दूसरे के निकट हों । यदि पौधे बाहर भेजने हों अथवा अन्य किसी कारण से उस दिन न लगाये जा सकें तो उनके संरक्षण का पूर्ण प्रबंध होना चाहिए, ताकि उनमें ऐसी निर्बलता न आ जाय कि वे सम्हल ही न सकें । प्रत्येक पौधे की जड़ के साथ कुछ

मिट्टी रहना बहुत जरूरी है और मिट्टी सूखकर बिखर न जाय, इसलिए घास, चट्टी या केले की छाल में बांधकर रखना चाहिए और थोड़ा पानी भी देते रहना चाहिए जिससे मिट्टी में तरी बनी रहे। बाहर से आये हुए पौधों को जल्दी लगाने का अवकाश न हो अथवा स्थायी भूमि तैयार करने में विलंब हो या वे कमजोर दीखें तो उन पौधों को तुरंत खोलकर नर्सरी में लगा देना चाहिए। फिर जब लगाने का समय आ जाय अथवा भूमि तैयार हो जाय, तो नर्सरी से उठाकर निर्धारित स्थान पर लगा सकते हैं।

पौधे लगाने का साधारणतः उत्तम समय बरसात और शीतकाल का प्रारंभिक या अंतिम समय ठीक होता है। मध्य जाड़े में लगाने से अधिक सर्दी या पाला पड़ने से पौधों के मर जाने का भय रहता है। गर्मी में सिंचाई का पूर्ण प्रबंध हो तो जाड़े के अंत में और नहीं तो बरसात में ही लगाना चाहिए। आड़ू, आलूबुखारा आदि जो पेड़ जाड़े में अपने पत्ते गिरा देते हैं उन्हें जाड़े में ही लगाना ठीक है।

पौधे लगाने की रीति—पौधों की जड़ के फैलाव के आकारानुसार दो-तीन फुट व्यास के और उतने ही गहरे गढ़े निर्धारित स्थान की दूरी पर गर्मी में अथवा लगाने के कुछ समय पूर्व तैयार करा लेने चाहिए। खोदी हुई मिट्टी को दो-तीन सप्ताह तक धूप और हवा खिलाने के पश्चात नीचे की दो-तिहाई मिट्टी में खाद मिलाकर उसे गढ़े में डाल करके ऊपर से दूसरी एक-तिहाई मिट्टी भरवा देनी चाहिए। प्रत्येक गढ़े की मिट्टी में, जैसा कि खाद के वर्णन में दिया गया है, पेड़ की उपयोगितानुसार बीस सेर से एक मन तक सड़ा हुआ गोबर का खाद और दो-ढाई सेर हड्डी का चूर्ण मिलाना चाहिए। फलों के लिए हड्डी का खाद बड़ा अच्छा होता है। करीब-करीब सभी प्रकार के फलों को उपर्युक्त मिश्रण से लाभ पहुंचता है।

खाद मिला देने के पश्चात् गढ़ों को भरवा देना चाहिए और जब दो-एक बारिश के बाद मिट्टी जम जाय, तब पौधों की जड़ों की जमावट

इतनी मिट्टी खोदकर पौधे लगाने चाहिए। पौधे लगाते समय यह देखना चाहिए कि जड़ें मुड़ने न पावें और थोड़ी-थोड़ी मिट्टी डालकर वे दवा दी जाय, ताकि मिट्टी के साथ जड़ों की पकड़ अच्छी हो जाय और कोई जगह खाली न रहे। जड़ के निकट खाली जगह रह जाने से वह सूख जाती है। इस रीति से जब गढ़ा भर जाय और मिट्टी दवा दी जाय तो पानी देकर बाद में दो-तीन इंच मोटी तह ढीली मिट्टी के ऊपर दे देना चाहिए। इस तह से एक तो धूप से पानी उड़ने नहीं पायेगा और दूसरे यदि कहीं मिट्टी दवी तो इस मिट्टी से वह जगह भर जायगी और सब मिट्टी जमीन की सतह के बराबर हो जायगी।

द्विवृक्षी कलमें लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिस स्थान पर बीजू पौधे के साथ कलम बांधी हो, वह स्थान जमीन से ऊपर रहे ताकि बीजू पौधे के भाग से यदि कोई कोंपल निकल जाय तो वह तोड़ दी जाय।

सहारा (Staking)—पौधे लगाने के पश्चात् वे सीधे खड़े रहें और हवा से टेढ़े न हो जायं अथवा गिर न पड़ें, इसलिए सहारे की आवश्यकता होती है। इसके लिए पौधे के धड़ से दस-बारह इंच की दूरी पर दोनों ओर मजबूत बांस या लकड़ियां गाड़नी चाहिए और उनके ऊपरी मुंह एक दूसरी लकड़ी से जोड़ देने चाहिए। इस लकड़ी से बीचोंबीच यदि पौधा बांध दिया जाय तो वह सीधा बना रहेगा। यह कार्य एक लकड़ी से भी हो सकता है, परंतु दो लगाना ठीक होता है। यदि एक ही लगाना हो तो जिस ओर से हवा का रुख हो, पौधे के उसी ओर गाड़कर पौधे को ढीली रस्सी से बांध देना चाहिए। यदि दूसरी ओर गाड़ना हो तो लकड़ी को जमीन में तिरछी गाड़कर उसके दूसरे मुंह पर पौधे को बांध देना चाहिए। इस प्रकार सहारे का प्रबंध हो जाने पर जिस रस्सी से पौधे का धड़ बांधा जाय उसे कभी-कभी खोलकर ढीला करते रहना चाहिए, नहीं तो पौधे में निशान पड़ जायंगे और यदि अधिक दिनों तक बिना देखे छोड़ दिया जायगा, तो पौधों में कटाव लग जायगा और जोर की

हवा आने से उस स्थान पर से पौधा टूट भी सकता है।

फलों के पेड़ के बीच की भूमि से लाभ उठाना

प्रारंभ में जब फलों के पौधे लगाये जाते हैं तो उनके बीच में बहुत-सी भूमि ऐसी छूट जाती है जिसमें कुछ फसलें उपजाई जा सकती हैं। ऐसी भूमि से कौन-सी फसलें लेनी चाहिए, इसके लिए अमेरिका में कुछ प्रयोग[१] किये गए हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनाज की फसलें न लेकर छोटे-छोटे पौधे वाली मटर या अन्य साग-भाजी उपजाना उत्तम होगा। अनाज की फसलों से फल के पौधों को हानि पहुंचती है।

---

१ Gardener. V.R., Bradford, F-C. and Hooker. H.D. 1939. The Fundamentals of Fruit Production, p.46.

: ६ :

पौधों का क्रय-विक्रय और चालान

बगीचे के लिए जो पौधे खरीदे जायं, बड़ी सावधानी से खरीदने चाहिए। इनकी ऐसी फसल नहीं होती कि एक साल ठीक न हुई तो दूसरे साल बीज बदल दिया। लगातार पांच-छः साल के परिश्रम के बाद पौधे फल देना प्रारंभ करते हैं और यदि उस समय पौधे संतोषजनक सिद्ध न हुए तो तुरंत बदले नहीं जा सकते। इसलिए जब पौधे खरीदे जायं तो बहुत ही भरोसेवाले व्यवसायी से खरीदने चाहिए। जहांतक हो स्वयं जाकर पौधों की स्थिति जांचनी चाहिए। प्रारंभ में पांच-सात रुपये अधिक खर्च कर देना भविष्य के लिए कई गुना लाभप्रद होता है।

पौधे चुनते समय यह देखना चाहिए कि वे मजबूत और स्वस्थ हों, पत्तों का रंग हरा चमकीला हो, कलम भली-भांति लगी हुई या जुड़ी हुई हो और पौधों की बाढ़ साधारण हो। यदि कलम भली-भांति जुड़ी हुई नहीं होगी तो गर्मी में ऊपरी भाग सूख जायगा और वह बीजू पौधे से छूट-कर गिर जायगा। चश्मा चढ़ाई हुई कलम लेना हो तो यह देखना चाहिए कि चश्मा बीजू पौधे के धड़ पर जमीन से एक फुट ऊंचाई के अंदर ही चढ़ाई हुई हो। कुछ लोग कृत्रिम खाद देकर पौधों की बाढ़ की स्वाभाविक शक्ति को उत्तेजित कर देते हैं जिससे पौधे उस स्थान पर तो अच्छे होते हैं, परंतु जब नये स्थान पर लगाये जाते हैं तो बिगड़ जाते हैं। इसलिए पौधा चुनते समय साधारण बाढ़ वाला चुनना चाहिए।

बहुत से लोग समझते हैं कि अधिक आयुवाले कलमी पौधे मंगवाये जायं तो फल जल्दी प्राप्त होंगे, परंतु ऐसा करना ठीक नहीं है। ऐसे पौधों की जड़ें स्वाभाविक रीति से बढ़ने नहीं दी जातीं; क्योंकि यदि स्वाभाविक

रीति से वढ़ने दी जायं तो भेजते समय उनके साथ वहुत मिट्टी भेजनी पड़ेगी और खोदने में भी असुविधा होगी । ऐसे पौधों की जड़ें अधिक दूरी तक फैलने न पायं इसलिए व्यवसायी लोग उन्हें वार-वार खोदकर नये स्थान में लगाते रहते हैं और कुछ जड़ें भी काटते जाते हैं । ऐसा करने से पौधा जीवित तो रहता है, परंतु उसके पोषण के मुख्य अंग अर्थात् जड़ें कमजोर हो जाती हैं और जव स्थानांतर किया जाता है तो पहले तो उसके लगने में ही संदेह है, और यदि लग जाय तो जैसा चाहिए वैसा पौधा होना तो असंभव ही समझना चाहिए ।

ऐसी स्थिति में जो कलमी पौधे खरीदे जायं उनकी आयु लगभग दो वर्ष की होनी चाहिए । जहांतक हो एक वर्ष से कम आयु का पौधा नहीं खरीदना चाहिए । यदि पौधे को अपनी आयु का प्रथम वर्ष जन्मभूमि में ही विताने का अवसर दिया जाय तो वह सालभर के तीनों मौसम पार करके स्वस्थ हो जाता है और नये स्थान के वातावरण को अपनाने की शक्ति भी प्राप्त कर लेता है ।

इसी प्रकार पौधों के विक्रेताओं को भी ध्यान रखना चाहिए कि अपनी प्रतिष्ठा वनाये रखने के लिए उनका माल भी वहुत भरोसे का हो । विक्रेताओं को चाहिए कि पौधों के चालान के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता हो—जैसे टोकरियां, लकड़ी के वक्स, लेवल इत्यादि—अपने वगीचे में तैयार रखें ।

सरकारी कृषि-विभाग को चाहिए कि अच्छे भरोसेवाले विक्रेताओं को सनदें दिया करे और प्रति वर्ष एक सूची ऐसी निकाला करे जिसमें नामी विक्रेताओं के नाम तथा उनके माल का वर्णन हो । ऐसा करने से साधारण कृषक आसानी से उत्तम पौधे प्राप्त कर सकेंगे ।

पौधे उठाना—चुनाव के पश्चात् पौधे उठाने में यह देखना वहुत जरूरी है कि खोदते समय जड़ों को जितना कम हानि पहुंचे उतना ही अच्छा है; विल्कुल हानि नहीं पहुंचे, यह तो असंभव है । जड़ों के आसपास की मिट्टी टूटने या विखरने न पाय । पौधे के आसपास की मिट्टी वृत्ताकार

रूप में खोदकर बाद में नीचे की मिट्टी धीरे से काटनी चाहिए। फिर धीरे से उठाकर केले की छाल, घास या चट्टी में बांधकर वहां से उठाया जाय तो पौधे की मिट्टी बंधी रहेगी और जड़ों को हानि नहीं पहुंचेगी। यदि पौधे के नीचे की मिट्टी विशेष सूखी हुई हो (गो ऐसा नहीं होना चाहिए, क्योंकि पौधों को नियमानुसार पानी मिलता रहना चाहिए) तो उसे एक दिन पहले कुछ पानी देकर गीला कर लेना चाहिए।

पौधों का चालान—उपर्युक्त रीति से उठाए हुए पौधे वैसे ही बंधे हुए गमले, टोकरी, मिट्टी के तेल के कटे हुए टीन या देवदारु के बक्सों में बाहर भेजे जा सकते हैं। जब नजदीक भेजना हो तो प्रथम दो रीतियों से मजदूरों द्वारा या गाड़ियों में सरलता से भेज सकते हैं। दूरी के लिए टोकरी, टीन या बक्स काम में लाने चाहिए। जो पौधे संतरा, अमरूद, केला जैसे कठोर हैं, उन्हें टोकरी में भेज सकते हैं। आम, सपाटू, लोकाट-जैसे पौधों को देवदारु के बक्स या टीन में भेजना ठीक होता है। विशेष सावधानी के लिए बक्सों पर क्रेट बनवा देना चाहिए ताकि पौधों को धक्का न लगने पावे। जब बक्सों में पौधे जमा दिये जायं तो बीच में खुली जगह में घास या पुआल भर देना चाहिए। रवानगी के पहले पानी देकर पुरानी चट्टी से मिट्टी ढक देनी चाहिए ताकि पानी उड़ने न पावे। प्रत्येक बक्स के दोनों ओर दो छेद करके रस्सी के टुकड़े बांध देने चाहिए ताकि कुली आसानी से उठा सकें और पौधों के साथ निर्दयता का वर्ताव न करें। बक्स का आकार और वजन भी ऐसा होना चाहिए कि उठाने में सहूलियत हो। दो फुट लंबे, एक फुट चौड़े तथा दस-बारह इंच ऊंचे बक्स अधिकांश पौधों के लिए उत्तम होंगे। ऐसे बक्स में दो साल की आयु के छः आम के पौधे अच्छी तरह से जा सकते हैं।

प्रत्येक पार्सल पर पक्की काली रोशनाई से पाने वाले का नाम और स्टेशन तथा रेलवे का नाम साफ अक्षरों में लिखना चाहिए। बहुत-से लोग कागज का लेबल लगा देते हैं, जो गल जाता है, फट जाता है या उसके अक्षर मिट जाते हैं और पार्सल भटक जाता है। जबतक फिर लौटकर

निर्धारित स्थान पर आता है तबतक पौधे सूख जाते हैं। जब पाने वाला स्टेशन से दूर हो और डाक द्वारा रेलवे रसीद के जल्दी पहुंचने की संभावना न हो, तो ग्राहक को पांच सात रोज पहले पौधे भेजे जाने की सूचना दे देनी चाहिए ताकि वह यथासमय पार्सल छुड़ाने का प्रबन्ध कर ले।

: ७ :

सोहनी और सिंचाई

खेतों में से घास-पात निकालने और मिट्टी की पपड़ी तोड़ने की क्रिया को सोहनी कहते हैं। घास-पात जमीन से खुराक लेने के सिवाय कीटों को भी शरण देते हैं, जो फलों के छोटे वृक्षों को हानि पहुंचाते हैं। इतना ही नहीं, वे जमीन में से बहुत-सा पानी भी अपने अंगों द्वारा उड़ा देते हैं। इसलिए इनको कभी भी नहीं बढ़ने देना चाहिए। पपड़ी तोड़ने से मिट्टी में हवा का आवागमन अच्छा होता है, जिससे जड़ों को लाभ पहुंचता है। सूर्य की गर्मी से पानी जमीन से उड़ता रहता है। तोड़ी हुई पपड़ी उसका बहुत कुछ अंश रोक लेती है, इससे सिंचाई कुछ कम करनी पड़ती है। इन कारणों से सोहनी बराबर करते रहना चाहिए। जब पेड़ों के बीच की भूमि से तरकारियां ली जायं तो उनमें भी सोहनी करना बहुत जरूरी है। सोहनी के साथ-साथ घने पौधों की छटनी, असाध्य व्याधि-ग्रस्त पौधों का नाश, जिन पौधों को सहारे की आवश्यकता हो, उनके लिए सहारे का प्रबंध और जिन पर मिट्टी चढ़ाना हो उनपर मिट्टी चढ़ानी चाहिए।

खुर्पी और हाथवाले हो (Hoe) से सोहनी अच्छी होती है। बड़े पेड़ों के बगीचों में बखर से भी यह काम अच्छा होता है। बखर के अभाव में देशी हल भी काम में लाये जा सकते हैं।

सिंचाई

भारतवर्ष में बहुत कम स्थान ऐसे हैं, जहां बिना सिंचाई के सब प्रकार के फलों के वृक्ष हो सकें। अधिकांश भाग ऐसे हैं, जहां जाड़े के अंत में और गर्मी में सिंचाई करनी ही पड़ती है। कुछ स्थान तो ऐसे हैं, जहां जाड़े और गर्मी की तो कौन कहे, कम वर्षा होने के कारण बरसात में भी सिंचाई

करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में फलों की खेतीवालों के लिए सिंचाई का प्रबंध करना एक अनिवार्य कार्य है।

सिंचाई दो प्रकार की होती है—एक प्राकृतिक, जो वर्षा से होती है और दूसरी कृत्रिम, जिसमें नदी, नाले, प्राकृतिक झरने, तालाव, कुएं या शहर की मोरियों से पानी प्राप्त किया जाता है।

प्राकृतिक सिंचाई मनुष्याधीन नहीं है, लेकिन कुछ उपचार द्वारा उससे लाभ उठाया जा सकता है। जिन स्थानों में तीस-चालीस इंच से अधिक वर्षा होती है, वहां भूमि में अच्छी तरी प्राप्त हो जाती है, परंतु जहां कम वर्षा होती है, वहां काफी तरी प्राप्त नहीं होती और यदि गिरे हुए पानी का ठीक से जमीन में संचित होने का प्रबंध न किया जाय तो वह बह जाता है या सूर्य की गर्मी से उड़ जाता है। ऐसी वर्षा से लाभ उठाने के लिए वर्षा के पहले जमीन को हल से जोतकर रखना चाहिए ताकि गिरा हुआ पानी उसमें सोख जाय। जव वर्षा समाप्त हो जाय और जमीन जोतने योग्य हो जाय तो जोतकर वरावर करके छोड़ देनी चाहिए और दो-एक रोज बाद पपड़ी भी तोड़ देनी चाहिए, ताकि पानी उड़ने न पावे। इसी भांति जव जाड़े या गर्मी में वरसात आ जाय तो उस वक्त भी उपर्युक्त उपचार द्वारा लाभ उठा लेना चाहिए।

कृत्रिम सिंचाई—जहां पानी की जगह से जमीन ढालू होती है वहां नदी, नाले, झरने या तालाब से नहर द्वारा पानी आसानी से मिल जाता है। यदि जमीन ऊंची हुई तो पम्प और इंजन द्वारा पानी ऊपर उठाकर सिंचाई हो सकती है। नहर के अभाव में कुओं से सिंचाई करनी होती है। जहां पानी की सतह ऊपर होती है और कम गहराई पर पानी मिल जाता है, वहां थोड़ी-थोड़ी दूर पर कुएं वनवाकर ढेंकुली से सिंचाई की जा सकती है। जहां पानी वहुत नीचा हो, वहां दस एकड़ की सिंचाई के लिए एक पक्का जलाशय वनवाना चाहिए।

यदि वगीचा शहर के निकट हो और मोरियों का पानी सिंचाई के लिए मिल सके, तो उसका उपयोग किया जा सकता है।

पानी उठाने के उपचार—नहर के अभाव में जब कुओं से जल उठाना होता है तो मनुष्य, पशु, वायु, विद्युत् (बिजली) भाप या तेल की शक्ति काम में लानी पड़ती है और पानी की गहराई के अनुसार पानी उठाने के यंत्रों[1] का उपयोग किया जाता है।

जब सिंचाई थोड़ी करनी होती है तो डोन, सूप, ढेंकुली, चेन-पम्प या फोर्स पम्प मनुष्य-शक्ति से चलाकर पानी उठा सकते हैं। डोन से पांच-छः फुट, सूप से सात-आठ फुट, ढेकुली से पंद्रह-सोलह फुट, चेन-पम्प से आठ-दस फुट और सक्सन-पम्प या फोर्स-पम्प से चालीस-पचास फुट तक का पानी ऊपर उठाया जा सकता है।

उपर्युक्त यंत्रों में से पहले चार से पचास-साठ मन से लेकर सौ-डेढ़-सौ मन पानी प्रति घंटा फेंका जा सकता है। सक्शन या फोर्स-पम्प कई तरह के होते हैं, इसलिए इनसे फेंके जानेवाले पानी का अनुमान पम्प-विक्रेताओं से जाना जा सकता है।

चेन-पम्प और सक्शन या फोर्स-पम्प जब बड़े होते हैं तो पशुओं से चलाये जाते हैं। पशुओं से चलाये जानेवाले यंत्रों में रहट और चरसों की भी गणना है।

रहट—एक बड़े लोहे या लकड़ी के चक्के पर रस्सी या लोहे की चेन से माला के रूप में बंधे हुए मिट्टी या लोहे के बर्तन लगे रहतें हैं। चक्का एक या दो पशुओं से चलाया जाता है। भरे हुए बर्तन ऊपर आकर अपना पानी एक चौखटे में गिराते हुए फिर लाने के लिए पानी के अंदर चले जाते हैं। चौखटे से पानी बहकर खेतों की ओर चला जाता है। रहट से तीस-पैंतीस फुट का पानी उठाया जा सकता है।

मोट या चरस—यह विशेषतः चमड़े का बनाया जाता है परंतु कहीं-कहीं लोहे का भी बनने लगा है। चमड़े के मोट दो प्रकार के होते हैं। एक

---

१. यंत्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन 'साग-भाजी की खेती' में दिया गया है। स्थानाभाव के कारण यहां संक्षिप्त वर्णन ही दिया जाता है :

सूंडवाला और दूसरा विना सूंड का। पहला अपने-आप पानी फेंक देता है, दूसरे को खाली करने के लिए एक आदमी की आवश्यकता होती है। मोट में आकारानुसार तीन-चार मन से सात-आठ मन पानी समा सकता है। बड़ी मोट में दो जोड़ी पशु लगाये जाते हैं। मोट से बीस फुट से लेकर अस्सी फुट तक की गहराई का पानी उठाया जा सकता है। एक जोड़ी से चलाये जानेवाले साधारण मोट से यदि पानी पचीस फुट से उठाना हो तो मौसम के अनुसार आधे एकड़ से पौने एकड़ तक की सिंचाई एक दिन में हो जाती है।
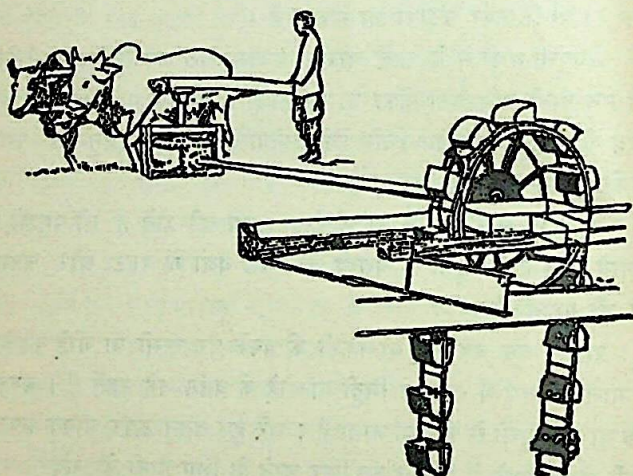
रहट

चमड़े के मोट की संभाल—जब मोट से अधिक दिनों तक काम न लिया जाय तो उसपर तेल लगाकर रखना चाहिए।

मोट लोहे के भी होते हैं। इसमें एक तो ऐसे होते हैं कि उनमें चमड़े की सूंड लगानी होती है। दूसरे ऐसे होते हैं जिनमें सूंड नहीं होती, थालेपर आकर अपने आप पानी फेंक देते हैं। चमड़े के मोट जब-जब फट जाते हैं तो चमारों से सिलवाने पड़ते हैं। कई गांवों में चमार होते नहीं और

वर्तमान समय में जहां होते हैं वहां भी कृषकों को काफी परेशान करते है, ऐसे स्थानों के लिए अपने आप पानी फेंकने वाले लोहे के मोट अच्छे होंगे।

हवा से पवन-चक्की द्वारा पानी उठाया जा सकता है। यह वहीं अधिक उपयोगी होता है, जहां हवा नियमित रूप से चलती हो।

विद्युत का उपयोग करने के लिए मोटर और पम्प की आवश्यकता होती है और भाप या तेल का उपयोग किया जाय तो इंजन और पम्प लगाना होता है। इनके द्वारा डेढ़ सौ फुट की गहराई का पानी ऊपर उठाया जा सकता है।

पम्प नित्य नये-नये बनते रहते हैं,इसलिए यदि पम्प विक्रेताओं को निम्नलिखित सूचना दी जाय तो उचित पम्प की सलाह दे सकते हैं :

(क) कुएं की लम्वाई-चौड़ाई, यदि गोल हो तो व्यास और गहराई का व्योरा, (ख) गर्मी में पानी कितना नीचे चला जाता है, (ग) वरसात में कितना ऊंचा आता है, (घ) मुंह से पानी कितना ऊपर फेंकना होगा, (ङ) पम्प में मोड़ कितने होंगे, (च) इंजन अपने पास हो और पम्प मंगाना हो तो उसके शक्ति-संचालक पहिए का व्यास और प्रति मिनट वह कितने चक्कर लगाता है, इसका व्योरा और, (छ) प्रति मिनट पानी कितना फेंकना होगा।

पानी की चाह की गणना निम्नलिखित रीति से की जा सकती है, पानी का एक एकड़ पर एक इंच मोटा तह एक सौ टन के बराबर होता है और फलों के लिए एक वार की सिंचाई में एक इंच से दो इंच, भूमि व पेड़ की जाति तथा पेड़ों की आयु के अनुसार, दिया जाता है। मान लीजिए हमें दो इंच पानी देना है और नित्य एक एकड़ की सिंचाई करनी है। इस हिसाब से हमें नित्य प्रति दो सौ टन पानी चाहिए। पानी का नाप वहुधा गैलन में किया जाता है। एक गैलन में करीब पांच सेर (दस पौंड) पानी आता है और एक टन में २२४ गैलन पानी होता है, इस हिसाब से २०० टन=४४८०० गैलन हुआ। मान लीजिए, हमें पम्प दस

घण्टा प्रति दिन चलाना है तो प्रति घण्टा ४४८०० गैलन अथवा प्रति मिनट ७४.६ गैलन पानी हुआ, तो हमें लिखना चाहिए कि वह पम्प ऐसा हो जो पचहत्तर गैलन पानी प्रति मिनट फेंक सके।

सिंचाई की रीति—फलों के वगीचों में सिंचाई दो प्रकार से की जाती है। एक ऊपर से जल छिड़ककर और दूसरी नालियों द्वारा वृक्षों तक पानी पहुंचाकर। छोटे-छोटे पौधों या लताओं अथवा वीच की जमीन में उपजाई जानेवाली तरकारियों की सिंचाई के लिए क्यारियां वनाई जाती हैं।

पानी का छिड़काव हजारे या झांझ से नर्सरी वाले पौधों के लिए किया जाता है। वड़े पेड़ों की सिंचाई नालियों द्वारा होती है। साधारणत: लोग फलों के पेड़ों के घड़ के चारों ओर थाला वनाकर उसमें पानी भर देते हैं, ऐसा करना ठीक नहीं है। पौधे या पेड़ अपनी जड़ों द्वारा पानी खींचते हैं और जड़ों के मुंह धड़ के चारों ओर दूर तक फैले हुए होते हैं। ऐसी सूरत में पानी उस स्थान पर देना चाहिए जहां जड़ों के मुंह हों। ऐसा करने से जड़ें और भी फैलती हैं और अधिक भूमि से उन्हें अपना पोषण करने का अवसर मिलता हैं, जिससे पेड़ स्वस्थ और अच्छी वाढ़वाले होते हैं। धड़ के नजदीक देने से पेड़ों की वाढ़ उत्तम नहीं होती और तने में व्याधियां या कीड़े लगने का डर भी रहता है, इसलिए पेड़ के तने के पास की जमीन पर मिट्टी चढ़ाकर कुछ ऊंची करके पेड़ की शाखाओं के फैलाव के अकारानुसार गोल नाली वनाकर उसमें पानी भर दिया जाय तो अच्छा होता है। ऐसा पानी जड़ों के मुंह के पास रहता है इससे उसका पूरा उपयोग हो जाता है। ज्यों-ज्यों पेड़ वढ़ते जायं और शाखाओं का घेरा वढ़ता जाय, नालियों का चक्कर और चौड़ाई भी वढ़ाते रहना चाहिए। छोटे पौधों के लिए एक फुट तथा वड़ों के लिए दो-ढाई फुट चौड़ाई के चक्कर ठीक होते हैं। जब पेड़ काफी वड़े हो जाते हैं तो नलियां मिल जाती हैं और अन्त में गोलाकार रूप से वदल कर पेड़ों की कतारों के वीच में सीधी वर्गाकार रूप में वन जाती हैं। उस

समय ऐसी नालियां भर देने से काम चल जाता है। छोटे पेड़ों की सिंचाई वाली नाली चार-पांच इंच गहरी होनी चाहिए। पेड़ों की बाढ़ के साथ ज्यों-ज्यों नाली की चौड़ाई बढ़ाई जाय गहराई भी बढ़ाते रहना चाहिए। बड़े पेड़ों के लिए सात-आठ इंच गहरी नाली ठीक होती है।

पानी देने का समय और मात्रा—यह भूमि और वातावरण की तरी तथा ऋतु और फलों की जाति पर निर्भर है। इसलिए कोई एक नियम नहीं बनाया जा सकता। जिस भूमि में तरी अधिक रहती है अथवा वातावरण में भी काफी तरी बनी रहती है, वहां कम पानी देना होता है। गर्मी की ऋतु में प्रायः सब प्रकार के वृक्षों को पानी और अधिक जल्दी-जल्दी देना पड़ता है। जब पेड़ों की बाढ़ अधिक होती है अथवा वे फूलते हैं तब भी उनको विशेष पानी की जरूरत होती है। जो पेड़ गर्मी के दिनों में फूलते हैं, उनसे अच्छे फल प्राप्त करने के लिए उन्हें अच्छी तरह से सींचना ही चाहिए। छोटे पौधों को जब पानी दिया जाय तो थोड़ा, लेकिन जल्दी देना चाहिए। अधिक पानी एक साथ देने से वह जमीन में गहरा चला जाता है और व्यर्थ खर्च हो जाता है। पानी इतनी जल्दी भी नहीं देना चाहिए कि जमीन हमेशा गीली ही बनी रहे। जमीन के गीली बनी रहने से पौधों की जड़ों को हवा नहीं मिलती, जिससे वे अस्वस्थ होकर खुराक भी ठीक से नहीं ले पातीं। दो सिंचाइयों के बीच में जमीन कुछ सूखने देनी चाहिए ताकि मिट्टी में हवा का आवागमन होता रहे। पौधे स्वयं पानी की न्यूनाधिकता बतला देते हैं। नये पत्ते जब पीले पड़ने लगें तो समझना चाहिए कि पानी अधिक हो गया है और जड़ों को हवा की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति में कुछ दिनों के लिए पानी बंद करके जमीन की पपड़ी तोड़ देनी चाहिए और बाद में प्रत्येक सिंचाई के समय पानी कम देना चाहिए। इसी तरह से यदि पूर्ण बाढ़ पाये हुए पत्ते समय से पहले पीले होने लगें तो समझना चाहिए कि उन्हें पानी की आवश्यकता है और पानी देना आरंभ कर देना चाहिए। प्रत्येक सिंचाई

के दो-तीन दिन बाद जब मिट्टी में खुर्पी चलाई जा सके, उस समय दो इंच की गहराई तक की मिट्टी गोड़ देनी चाहिए। ऐसा करने से जैसा कि पहले बतलाया गया है, पानी की कुछ बचत हो जाती है। घासपात नष्ट हो जाते हैं और उनके द्वारा जो पानी उड़ता है, वह बंद हो जाता है।

: ८ :

काट-छांट

यह दो प्रकार की होती है। एक जड़ों की और दूसरी शाखाओं की।

जड़ों की काट-छांट—जड़ों की काट-छांट परोक्ष रूप में जुताई तथा खाद देने के समय होती रहती है। अपरोक्ष रूप से इस क्रिया का उपयोग उस समय किया जाता है जब पेड़ पुराना हो जाता है या फल न देकर पौधे टहनियां और पत्ते ज्यादा देते हैं। ऐसे पौधों की जड़ों की काट-छांट पतझड़ के समय करनी चाहिए। पेड़ों को अधिक ऊंचा न बढ़ने देने के लिए भी जड़ों की काट-छाट करनी पड़ती है। स्थानांतर किये जानेवाले पौधों की जड़ों की काट-छांट की जाती है ताकि उनकी जड़ें अधिक दूरी तक न फैलें। कभी-कभी बीजू पौधे जब पेड़ों के नीचे कलम बांधने के लिए लगाये जाते हैं तो उनकी मूसला जड़ काटनी पड़ती है ताकि फैलने वाली जड़ें ज्यादा बनें और अपना भोजन ऊपरी जमीन से लेती रहें।

बड़े पेड़ों की जड़ों की काट-छांट करने के लिए शाखाओं के फैलाव के अनुसार तीन हाथ से पांच हाथ की दूरी पर चारों ओर एक हाथ चौड़ी और हाथ-डेढ़-हाथ गहरी खाई खोदकर देखना चाहिए और जड़ें ज्यादा हों तो कुछ को तेज छुरे से काट देना चाहिए। इस खाई को दो-तीन सप्ताह तक खुली रखकर उसकी मिट्टी में खाद मिलाकर भर देना चाहिए।

शाखाओं की काट-छांट—शाखाओं की काट-छांट कई कारणों से की जाती है और यह वृक्षों की जाति पर निर्भर है।

पहली काट-छांट दरख्तों के सुंदर आकार के लिए की जाती है। जिन शाखाओं की बाढ़ अधिक हो, जो घनी हों अथवा बहुत धीरे-धीरे बढ़ने-वाली हों वे काट दी जाती हैं और साधारण बाढ़ वाली छोड़ दी जाती हैं,

ताकि पेड़ का फैलाव चारों ओर बराबर हो। ऐसा करने से पौधों को रोशनी, धूप और हवा अच्छी मिलती है और उनके अंग मजबूत हो जाते हैं। फल बड़े-बड़े, उत्तम रंगवाले और अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं। उनकी रक्षा अच्छी तरह से की जा सकती है। आवश्यकता होने से पेड़ों पर औषधियों का छिड़काव भी चारों ओर भली-भांति किया जा सकता है। फल उतारने या तोड़ने में भी आसानी रहती है।

ऐसी काट-छांट में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि शाखाएं लटककर जमीन पर न आ जायं। पहली शाखाएं जमीन से कम-से-कम दो फुट ऊपर ही रखी जायं। यदि ऐसा न किया जायगा तो डालियां जमीन पर पड़ी रहेंगी, उनके नीचे का घास-पात निकालने में कठिनाई होगी और फल जमीन पर पड़े रहेंगे तो वे बिगड़ जायंगे।

उपर्युक्त प्रकार की काट-छांट की ओर ध्यान प्रारंभ से ही रखना चाहिए। आड़ू, जरदालू, नाशपाती, सेव इत्यादि के पौधे, जिनमें बड़े पेड़ों में काट-छांट बराबर करनी पड़ती है, जब डेढ़-दो फुट ऊंचे हो जायं तो उनके बीचवाला कोंपल तोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से तने में से नये कोंपल निकलेंगे। इन नये कोपलों में से चार-पांच को रखकर शेष को धड़ के निकट से ही काट देना चाहिए। जो चार-पांच रखे जायं उन्हें भी इस तरह से रखना चाहिए कि वे धड़ के चारों ओर रहें। ऐसा करने से पेड़ छोटे और मजबूत होते हैं और शाखाओं का फैलाव चारों ओर बराबर हो जाता है। पेड़ों के अधिक ऊंचे न होकर छोटे होने में कई लाभ हैं। उनकी काट-छांट आसानी से हो सकती है। फल सरलता से तोड़े जा सकते हैं। लू अथवा पाले से आसानी से बचाव किया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर औषधियां अच्छी तरह से छिड़की जा सकती हैं।

नीबू, माल्टा, संतरा जैसे पेड़, जिनमें बड़े पेड़ों में काट-छांट विशेष नहीं करनी पड़ती, उनके पौधों के बीच की कोंपल तीन-चार फुट ऊंचाई से तोड़ना चाहिए और धड़ पर पांच-छः कोंपल छोड़ने चाहिए।

आम, लीची इत्यादि पेड़, जिनके बीच की टहनी और बाजू की टहनियां

करीब-करीब एक साथ ही बढ़ती हैं और जिनमें विशेष काट-छांट की आवश्यकता नहीं होती, उनके पौधों के बीच के कोंपल नहीं तोड़ने चाहिए। सिर्फ यह देखना चाहिए कि तने पर पांच-छः कोंपल से अधिक न हों। उपशाखाएं आवश्यकतानुसार छोड़ देनी चाहिए। ये इतनी अधिक न हों, जिसमें हवा का आवागमन और प्रकाश रुके और न इतनी कम हों कि बहुत-सी जगह खाली रह जाय और सूर्य की तेज धूप से नई टहनियों फलों को हानि पहुंचे।

दूसरी प्रकार की काट-छांट सूखी, व्याधि-ग्रस्त और कीट-भक्षित या आक्रमणित शाखाओं की की जाती है ताकि बेकार शाखाएं हटा ली जायं, व्याधि फैलने न पाये और कीटों की वृद्धि न हो।

तीसरी प्रकार की काट-छांट उस समय की जाती है जब वृक्षों में शाखाओं और पत्तों की बाढ़ अधिक हो और पेड़ कम फलते हों। ऐसी स्थिति में कुछ शाखाओं और जड़ों की काट-छांट कर दी जाय तो पे फलने लग जाते हैं।

तीसरी प्रकार की काट-छांट का संबंध खाद से भी है। जब फल अधिक आते हों और शाखाएं कमजोर हों तो नाइट्रोजन-पूर्ता खाद देना चाहिए और जब शाखाओं की बाढ़ अधिक हो और फल कम हों तो फासफोरस और पोटाश-पूर्ता खाद लाभप्रद सिद्ध होंगे।

कभी-कभी अधिक फल देनेवाले पेड़ों की शाखाओं की काट-छांट करनी पड़ती है, ताकि वे शाखाओं को स्वस्थ होने दें। जब पेड़ की शक्ति फलों को बनाने में लग जाती है, तो शाखाएं स्वस्थ नहीं होतीं और कभी-कभी मारे बोझ के टूट पड़ती हैं। ऐसी स्थिति में फलवाली कुछ टहनियां काट देनी पड़ती हैं।

बहुधा ऐसा भी होता है कि पेड़ों को आराम देने के लिए शाखाएं और जड़ें काटनी पड़ती हैं। बहुत-से पेड़ ऐसे होते हैं जिनकी बाढ़ बराबर बनी रहती है और फल कम आते हैं। उनसे अधिक फल प्राप्त करने के उद्देश्य से कुछ समय के लिए पानी रोककर जड़ों और शाखाओं की

काट-छांट करनी पड़ती है, जैसा कि आड़, आलूबुखारा आदि के लिए किया जाता है।

चौथी प्रकार की काट-छांट उस समय की जाती है, जब फल प्राप्त हो जाते हैं, जैसी कि लीची की होती है। फल डालियों समेत तोड़े जाते हैं, क्योंकि जिस टहनी में फल आ जाते हैं, वे फिर नहीं फलतीं। नई टहनियां ही फलती हैं। काट-छांट से नई टहनियां बहुत निकलती हैं और अच्छे फल प्राप्त होते हैं।

पांचवीं प्रकार की काट-छांट कलम बांधने के लिए की जाती है। पुराने बड़े वृक्षों में जब फल नहीं आते, तो उनकी टहनियां काटकर नई कलमें उनमें बांध दी जाती हैं।

छठी प्रकार की काट-छांट कलियों की होती है। जब किसी शाखा या टहनी पर आवश्यकता से अधिक फलों की कलियां निकल आती हैं तो वे तोड़ दी जाती हैं।

सातवीं प्रकार की काट-छांट पेड़ों के तनों की छाल की होती है। बहुधा आम के पेड़ों में ऐसा देखा जाता है। जब पेड़ों में फल नहीं आते और पत्ते तथा शाखाएं बहुत बढ़ती जाती हैं, तो जमीन से तीन-चार फुट की ऊंचाई पर दो इंच चौड़ी छाल जगह-जगह चारों ओर काट दी जाती है। अगर पूरी छाल छुड़ाई जाय तो इस रीति से छुड़ाना चाहिए कि एक जगह आधे तने तक छुड़ाई जाय और उससे कुछ ऊपर दूसरी ओर के आधे भाग की छुड़ाई जाय। एक ही जगह पूरे चक्कर के रूप में छाल छुड़ा देने से यदि कहीं कटाव काफी गहरा हो जाय तो पेड़ के मर जाने का भय रहता है। पेड़, जड़ द्वारा ली हुई खाद्य वस्तुओं को पत्तों तक पहुंचाते हैं। वहां पर उनके पोषणार्थ भोजन तैयार होता है और वह फिर दूसरे अंगों में, यानी फल, फूल, शाखाओं, धड़ों और जड़ों इत्यादि के लिए जाता है। जब इसकी चाल जड़ों की तरफ अधिक होती है तो पेड़ फलते नहीं। छाल के काट देने से जड़ों की तरफ जानेवाले इसके कुछ मार्ग बंद हो जाते हैं और इसका उपयोग पेड़ों में फल पैदा करने के

लिए हो जाता है। ऐसी काट-छांट उस समय होनी चाहिए जब पेड़ों के नये कोंपल फूट रहे हों। इतना ध्यान रहे कि कमजोर पेड़ों पर ऐसी काट-छांट नहीं करनी चाहिए। फलों के गुच्छों की टहनी पर गुच्छे के नीचे की कुछ छाल छील देने से फल बड़े होते हैं, विशेषतः अंगूर में।

इनके सिवाय जब पेड़ों पर उनके घातक पौधे (Parasites) लग जाते हैं तो उन्हें हटाने के लिए भी काट-छांट करनी पड़ती है। जैसे अमरलता (Dodder) का लगना या आम पर लाल फूलवाले, बांभी (Loranthus) का जमना।

काट-छांट की रीति—बड़ी शाखाएं जब काटनी हों तो उन्हें आरी से काटना चाहिए। कटाव धड़ के बिल्कुल पास या जिस शाख से वह शाख निकली हो उसके निकट से ही होना चाहिए ताकि ठूंठ न रहे। ऐसी शाखा को काटने के प्रथम नीचे की ओर करीब डेढ़-दो इंच गहरा और धड़ से अढ़ाई इंच की दूरी पर एक कटाव लगा देना चाहिए और फिर ऊपर से आरी चलाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो कटी हुए शाख गिरते समय अपने साथ धड़ की कुछ छाल लिये हुए गिरेगी और पेड़ को हानि पहुंचा देगी। जब शाख गिर जाय तो जो ठूंठ रह जाय, उसे काटकर बराबर कर सकते हैं। नीचे का कटाव पहले से ही धड़ के निकट दिया जा सकता है। परंतु ऊपर से आनेवाला आरी का कटाव कहीं उससे न मिले और कटा हुआ भाग साफ न हो, इसलिए नीचेवाला कटाव जरा दूरी पर लगाना ठीक होगा। शाख के गिर जाने के बाद वह स्थान साफ किया जा सकता है। यदि शाख बहुत बड़ी हो तो उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके काटना चाहिए, नहीं तो वह गिरते समय अपने साथ कई छोटी शाखाओं को लेती हुई गिरेगी। पतली शाखाएं पेड़ छांटने की बड़ी कैंची से और छोटी-छोटी शाखाएं छोटी कैंची से काटनी चाहिए। तेज छुरे या चाकू से या हंसुआ से छोटी टहनियां काटी जा सकती हैं। काट-छांट के बाद हरएक कटे हुए स्थान पर अलकतरा या सफेदा और तीसी (अलसी) का उबाला हुआ तेल लगा देना चाहिए ताकि उस जगह पर कीट या किसी प्रकार की

व्याधि का आक्रमण न हो।

काट-छांट का विषय बड़े ही महत्व का है। इसके लिए कुछ क्रियात्मक अनुभव होना बहुत जरूरी है। इस विषय का इतना विस्तार है कि इसी पर एक अलग पुस्तक लिखी जा सकती है। स्थानाभाव के कारण यहां पर आवश्यकीय बातें संक्षेप में दी गई हैं। कांट-छांट में फलों के बैठने के स्थान का भी ध्यान रखना पड़ता है। बहुत-से फल, जैसे आम और संतरा, बढ़ती हुई कोंपल पर बैठते हैं, तो ऐसे पेड़ों की कोंपल नहीं काटना चाहिए। आलूबुखारा जैसे फल टहनियों के धड़ पर बैठते हैं, सो ऊपर की बढ़ती हुई टहनी काट देनी चाहिए। कटहल धड़ पर ही बैठता है। ऐसे पेड़ों में कांट-छांट पेड़ों के सुन्दर आकार देने के लिए ही की जाती है। साधारणतः यह ध्यान रखना चाहिए कि जिन पेड़ों के पत्ते साल में एक बार झड़ जाते हैं या झड़वाना आवश्यक होता है, उनमें प्रति वर्ष नई बाढ़ के प्रारंभ होने के पहले कांट-छांट हो जानी चाहिए। जो पेड़ सदा हरे-भरे रहते हैं, उनमें विशेष कांट-छांट नहीं करनी पड़ती। इसी भांति वे पेड़, जो पहाड़ के ठंडे वातावरण और मैदान के उष्ण वातावरण, दोनों में हो जाते हैं, उनमें ठंडे वातावरण वाले पेड़ों की काट-छांट उष्ण वातावरण वाले पेड़ों की अपेक्षा कुछ अधिक करनी पड़ती है।

: ६ :

फलों के शत्रु और उनसे बचने के उपाय

फलों के शत्रु दो प्रकार के होते हैं—एक वे, जो पेड़ों को अंगहीन कर देते हैं, उन्हें अस्वस्थ कर देते हैं या मार डालते हैं। दूसरे वे, जो फलों को खा जाते हैं या उन्हें विगाड़ देते हैं।

इन शत्रुओं में अधिकांश ऐसे हैं, जो बिना यंत्र की सहायता के दिखलाई देते हैं। जैसे परजीवी वनस्पति (Parasites), मनुष्य, पशु-पक्षी या दूसरे जानवर और कीट। कुछ ऐसे होते हैं, जिनकी पहचान बिना यंत्रों की सहायता के नहीं हो सकती इनमें फंगस (Fungus), बेक्टिरिया (Bacteria) और वायरस (Virus) की गणना की जा सकती है। इनके सिवाय कुछ व्याधियां भूभि में खाद्य-तत्वों का संतुलन ठीक नहीं होने से होती है। पौधों की बाढ़ और उनके स्वास्थ्य में वाधा उपस्थित होती है।

परजीवी-वनस्पति (Parasites) फलों के पेड़ों को हानि पहुंचानेवाले विशेषतः दो प्रकार के परजीवी पौधे पाये जाते हैं। एक अमरलता (Dodder) और दूसरा वांभी (Loranthus)।

अमरलता—यह एक वहुत ही छोटे पत्तेवाली (वहुत ध्यान से देखने से पत्ते दीखते हैं) पीली लता होती है, जो यदि पेड़ों पर लग जाय तो कुछ दिनों में पेड़ों को सुखा देती है। यदि कहीं से लता का एक टुकड़ा पेड़ पर गिर जाय तो जिस टहनी पर गिरता है, वहीं पर उसमें से जड़ों के जैसे महीन अंकुर निकलकर टहनी में प्रवेश कर जाते हैं और पौधे या पेड़ का रस चूसकर अपना पोषण और वृद्धि करती हैं। थोड़े ही दिनों में यह इतनी फैल जाती है कि समस्त पेड़ ढक जाता है और कुछ दिनों

बाद वह मर जाता है।

इससे बचाने का सरल उपाय यह है कि जहां कहीं यह नजर आये, वहां से तुरंत हटवा देनी चाहिए। जिस डाली पर लग जाय, वह भी कटवा देनी चाहिए। यदि हो सके तो बगीचे के आसपास के जंगली पेड़ों पर से भी हटवा देनी चाहिए ताकि इसके आक्रमण का भय न रहे।

अमरलता फलों के पेड़ों में नीबू और करौंदे पर विशेष पाई जाती है।

बांझी (Loranthus)—यह एक प्रकार का हरे पत्तेवाला लाल फूल का पौधा होता है, जो आम, शरीफा इत्यादि पेड़ों पर जम जाता है और उनसे रस चूसकर अपना पोषण करता है। इसके बीज बहुधा पक्षियों द्वारा एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक पहुंचा दिये जाते हैं। बीज चूंकि चिकने होते हैं, नये पेड़ पर चिपककर रह जाते हैं और अनुकूल वातावरण तथा तरी पाकर बीज से पौधे बन जाते हैं। यदि प्रारंभ में ध्यान न रखा जाय तो कुछ दिनों में सारे पेड़ पर बांझी नजर आने लगती है।

इससे बचाने का उपाय यह है कि जहां कहीं पेड़ों पर यह पौधा नजर आये उसे वहां से तुरंत हटवा देना चाहिए और जिस डाली पर हो उसे कटवा देनी चाहिए। यदि धड़ पर हो तो उस जगह को छिलवाकर उस स्थान पर अलकतरा (Coal-tar) लगा देना चाहिए। आसपास के दूसरे पेड़ों पर यदि हो तो वहां से हटवा देना चाहिए।

मनुष्य से बचाने के लिए मजबूत घेरे या रखवाले का और पशुओं से बचाने के लिए घेरा, रखवाला, रोशनी या किसी प्रकार की आवाज का प्रबंध करना चाहिए। बहुत-से पशु रोशनी से डरते रहते हैं, इसलिए जहां रात्रि में रोशनी या आग जलती रहती है, वहां वे नहीं जाते। ढोल, वर्तन या वंदूक की आवाज से प्रायः सभी पशु भगाये जा सकते हैं। फलों को बंदर भी बहुत हानि पहुंचाते हैं। इन्हें बंदूक की आवाज या गुलेल से भगाना चाहिए।

बगीचों में या पेड़ों पर नकली मनुष्याकृतियां बनाकर खड़ी कर दी जायं तो कुछ पशु-पक्षी डरकर नहीं आते, इसके लिए एक लकड़ी गाढ़कर

उसपर सफेद पुती हुई हंडिया रख दी जाय और उसपर दोनों ओर काले रंग से आंखें, मुंह-मूंछ बना देना चाहिए। हंडिया के नीचे समकोण बनाती हुई एक लकड़ी बांधकर उसमें फटा-पुराना कोट पहना दिया जाय तो अच्छा काम चल जाता है। लेखक के यहां मीठी मटर को मैना बहुत हानि पहुंचाती थी। उपर्युक्त युक्ति से अच्छा बचाव होता पाया गया।

इसके सिवा दिन में गिलहरी और रात में चमगादड़ बहुत फल खा जाते हैं। टीन की आवाज से गिलहरी से और कुछ अंश तक चमगादड़ से भी बचाव हो जाता है। चमगादड़ से बचाने का उपाय पेड़ों पर जाली लगाने का है। पतली रस्सियां लेकर उन्हें पेड़ों पर इस रीति से बांधा जाय कि जिसमें जाली तानी गई हो, ऐसा मालूम हो। जाली के छेद एक बीते से लेकर एक हाथ लंबे-चौड़े होने से ही काम चल जाता है।

पक्षियों में सुग्गा और कौआ बहुत हानि पहुंचाते हैं। सुग्गा अमरूद, आम इत्यादि फलों का पक्का शत्रु है। पपीते और केले जब पकने लगते हैं तो कौए चोंच मार-मारकर अंदर का गूदा खा जाते हैं। सभी जाति के पक्षी किसी-न-किसी प्रकार की आवाज से भगाये जा सकते हैं। सबसे सरल उपाय यह है कि बगीचे में कहीं-कहीं पेड़ों पर मिट्टी के तेल के पुराने टीन बांध दिए जायं और रस्सियों से एक-दूसरे को इस प्रकार जोड़ा जाय कि एक को हिलाने से सब हिल जायं और आवाज कर सकें। इस युक्ति से एक ही स्थान पर बैठा हुआ आदमी एक टीन की रस्सी अपने पास रखकर कभी-कभी खींच दिया करे तो सब टीनों से आवाज होगी और पक्षी उड़ जायंगे।

चिल्डर्स[१] महोदय लिखते हैं कि पक्षियों को डराने के लिए बिल्ली को पींजरे में बंद करके पेड़ों पर पिंजरा लटका देना चाहिए।

चूहे भी कहीं-कहीं फलों को काफी हानि पहुंचाते हैं। लेखक ने एक जगह देखा है कि नारियल के पेड़ों पर चूहे चढ़ जाते हैं और फल काटकर

---

१. Childers N. F. 1949., Fruit Science, P. 361,

नीचे गिरा देते हैं।

इनसे बचाने का सरल उपाय यह है कि प्रत्येक पेड़ के धड़ पर टीन के पीपे (Funnels) लगा दिये जायं। ये छातानुमा नजर आयंगे। इनके लग जाने से उलटे होकर चूहे नहीं चढ़ सकेंगे। ऐसा करना वहीं संभव है, जहां पेड़ों की संख्या कम हो। जहां पेड़ अधिक हों, वहां झरियां बेर के पौधे जैसे, कांटेवाले पौधे, पेड़ के तने पर बांध कर देखना चाहिए। ऐसा करने से गिलहरी तो पेड़ पर नहीं चढ़ती और आशा है कि चूहे भी न चढ़ेंगे।

कीट—जहां तक हो, इनसे बचाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए और यदि आक्रमण हो जाय तो प्रारंभ में ही इनके नाश का उपाय करना बहुत जरूरी है।

निम्नलिखित नियमों की ओर ध्यान रखा जाय तो इनके आक्रमण से बहुत-कुछ बचाव हो सकता है। (१) भूमि घास-पात रहित रखनी चाहिए ताकि कीट उसमें छिपे रहकर वंश-वृद्धि न करने पायं। (२) कूड़ा कर्कट इधर-उधर नहीं फेंकना चाहिए, क्योंकि बहुत-से कीट उसमें अपने रहने तथा वंश-वृद्धि योग्य स्थान बना लेते हैं। (३) पेड़ों के बीच की भूमि की कभी-कभी जुताई भी करा देनी चाहिए ताकि भूमि में जो कीट, उनके अण्डे अथवा कोष छिपे हुए हों, वे ऊपर आकर पक्षियों के भक्ष्य बन जायं या धूप से मर जायं। (४) पौधे या बीज खरीदते समय कीट-रहित खरीदे जायं। (५) पेड़ों को आवश्यकतानुसार खाद और जल दिया जाय ताकि वे स्वस्थ बने रहें क्योंकि स्वस्थ पौधों पर कीट का आक्रमण शीघ्र नहीं होने पाता। (६) काट-छांट के बाद पेड़ के कटे हुए भागों पर अलकतरा लगा देना बहुत जरूरी है, क्योंकि वहां का भाग कुछ कोमल रहता है, जिससे कीट आक्रमण कर बैठते हैं। (७) छोटे पौधों पर या नर्सरी पर कपड़े की या तार की जाली लगाकर उनकी रक्षा करना। (८) आक्रमण हो जाने पर तत्काल कीटों को चुनवाकर, काट-छांट अथवा अन्य प्रकार के उपचार या विष-प्रयोग से उनका नाश कर देना

चाहिए, ताकि उनकी वंश-वृद्धि रुक जाय।

(१) **कीटनाशक उपचार और विष**—हाथ से चुनवाकर मिट्टी में गड़वा देना या मिट्टी के तेल और पानी के मिश्रण में उन्हें डाल देना अथवा आग में जला देना साधारण उपचार हैं। जो कीट पौधे या पेड़ों पर दिखलाई दें और उड़ने की आयु तक न पहुंचे हों और थोड़ी संख्या में हों, तो चुने जा सकते हैं। फुदकने और उड़नेवाले हानिकर्ता कीट कपड़े की थैली में पकड़े जा सकते हैं। संतरे और नीबू के छोटे पौधे पर जो तितलियां अण्डे दे जाती हैं, उन्हें पकड़ने के लिए ऐसी थैली अच्छा काम देती हैं। इसे कोई भी कृषक अपने हाथ से बना सकता है। एक आठ-दस इंच व्यास के बेत या लोहे के कुण्डल में एक महीन या जालीदार कपड़े की एक हाथ गहरी थैली लगा दी जाती है और कुण्डल की पकड़ के लिए करीब एक हाथ लंबा लकड़ी का दस्ता लगा दिया जाता है। उड़ती हुई तितली, भ्रमर आदि को पकड़ने के लिए थैली को झटके से उनकी ओर बढ़ाना चाहिए जिसमें हवा से थैली फूल जाय और कीट अंदर घुस जाय। उसके अंदर जाते ही हाथ ऐसा मोड़ देना चाहिए, जिसमें थैली का मुंह बंद हो जाय और वे निकलने न पावें। पकड़े हुए कीट उपर्युक्त रीति से मारे जा सकते हैं।

(२) **अन्य उपचार**—धड़-छेदक कीट गोबरीले कीट की जाति के होते हैं और पेड़ के धड़ या शाखाओं में छेद करते रहते हैं। ठण्ड या गरम लोहे की तार को छेद में डालकर वे मारे जा सकते हैं। यदि कीड़ा छेद से नीचे की ओर जाता है तो छेद का मुंह साफ करके उसमें अलकतरा डाल देना चाहिए। यदि ऊपर की ओर हो तो क्लोरोफार्म और क्रियोसोट को बराबर भाग में मिलाकर उसमें रूई भिगो लेनी चाहिए। फिर उसे छेद में डालकर छेद का मुंह बंद कर देना चाहिए। इस मिश्रण की गैस ऊपर जाकर कीट को मार देती है।

(३) **विष प्रयोग**—कीट-नाशक विष दो प्रकार के होते हैं—एक आमाशय विष, अर्थात् जिनके खाने से कीट मर जायं और दूसरे स्पर्शज

अर्थात् वे विष जो यदि कीट के बदन पर लग जायं तो कीट मर जायं।

खान-पान की रीति के अनुसार कीट दो प्रकार के होते हैं। एक भक्षक, अर्थात् जो वनस्पतियों को काटकर खा जाते हैं और दूसरे चूषक, अर्थात् जो अपने पोषण के लिए पौधे या पेड़ों का रस चूस लेते हैं। इस कारण से भक्षक पर आमाशय विष और चूषक पर स्पर्शज विष का अच्छा प्रयोग होता है। आमाशय विष से चूषक कीट नहीं मारे जा सकते क्योंकि आंतरिक विष तो पौधों के अंग पर ही रह जाता है और वे कीट अपने मुंह की नली को पत्तों के अंदर डालकर रस चूसते हैं।

आमाशय विष—लेड आर्सिनेट (Lead arsenate)। यह सीसे और संखियों का बना हुआ लवण होता है। एक मन पानी में दो-ढाई छटांक दवा का घोल बनाना चाहिए। यह छिड़कने के यंत्र (Sprayer) द्वारा छिड़का जाता है। उसी तरह से लेड-क्रोमेट का भी उपयोग किया जाता है।

फलों की मक्खी को आकर्षित करने के लिए एक मन पानी में तीस सेर गुड़ और पाव भर लेड-आर्सिनेट का घोल बनकर पेड़ों पर या लकड़ी या टीन के तख्तों पर लगाकर पेड़ों पर बांध देते हैं। मक्खियां इस पर आकर्षित होकर खाकर मर जाती हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के विष का प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए, क्योंकि ये बड़े जहरीले हैं। जहांतक हो, कृषि-विभाग द्वारा ही इन का प्रयोग करना चाहिए।

नर्सरी के पौधों पर छिड़कने के लिए तम्बाकू का काढ़ा भी अच्छा उपयोगी होता है। एक सेर तम्बाकू दस सेर पानी में दिन-रात भिगोकर अथवा आधे घण्टे तक पानी में उबालकर जो काढ़ा बनाया जाय, उसमें सात भाग और जल मिलाकर काम में लाया जा सकता है। मिट्टी के तेल में भीगी हुई राख का छिड़कना भी लाभप्रद होता है।

स्पर्शज विष—इनमें क्रूड आइल इमलशन (Crude oil emulsion) अच्छा विष है। यह मिट्टी के तेल और साबुन से बना हुआ होता

है। एक मन पानी में एक सेर दवाई घोलनी चाहिए। यह यंत्र द्वारा छिड़का जाता है।

आम के मौर में मधुवा कीट (Jassids) लग जाते हैं, उनके लिए फिश-आइल-रोजिन सोप (Fish-oil-rosin-soap) का छिड़काव अच्छा होता है। डेढ़ मन पानी में एक सेर औषधि घोलना चाहिए। गंधक का चूर्ण[1] भी इस कीट को मारने के लिए अच्छा होता है। एक सेर गंधक लगभग पच्चीस फुट ऊंचाईवाले पेड़ के लिए काफी होता है। आठ-दस दिन के अंतर पर तीन-चार बार भुरभुराना पड़ता है। आधी मात्रा गंधक की और आधी ५% डी० डी० टी० मिलाकर भुरकना भी अच्छा होता है। राय और राम[2] महोदय लिखते हैं कि एक भाग ग्यूसेरोल (Guesarol) को चार सौ भाग पानी में मिलाकर छींटा जाय तो उससे भी लाभ होता है। एक पेड़ के लिए एक मन पानी काफी होता है। ग्यूसेरोल में डी० डी० टी० और गंधक दोनों मिले हुए होते हैं। डी० डी० टी० अकेली[3] नहीं छिड़कनी चाहिए। ग्यूसेरोल छिड़काव करने के बड़े यंत्रों द्वारा यह काम किया जाता है।

स्पर्शज विष में मिट्टी का तेल भी बड़ा अच्छा होता है। रोशनी पर आकर्षित होनेवाले कीट इससे मारे जा सकते हैं। फलों के पेड़ों पर मिट्टी के तेल के टीन, जिनमें थोड़ा पानी और थोड़ा मिट्टी का तेल हो,

---

१. Uppal B. N. and Wagle P. V. 1944, Indian Farming 519 : P 40/403

२. Roy R. S. and Ram K. B. 1952, Indian J. Horti. Soc.9 : 1 : 33-40

(३) I. C. A. R. कृषि पुस्तकमाला पृष्ठ ७७ में गांधी महोदय लिखते हैं कि अकेली डी० डी० टी० छिड़कने से वरुथी नाम के नाशक कीट मर जाते हैं और वरुथी भी एक प्रकार का कीट होता है जिसके आक्रमण में पत्ते और फूल सूखकर गिर जाते हैं।

बांध दिये जायं और उनपर रोशनी टांग दी जाय तो कीट आकर्षित होकर आते हैं और टीन में गिरकर मर जाते हैं। "डी० डी० टी०", "गेमेस्कीन" "लिंडेन" इत्यादि कई स्पर्शज विष और भी हैं। कृषि-विभाग की सम्मति से इन्हें काम में लाना चाहिए।

कीट का जीवन-चरित—कीट की पहचान के लिए उनका जीवन-रहस्य जानना बहुत जरूरी है। स्थानाभाव के कारण यहां संक्षेप में कुछ वर्णन दिया जाता है, ताकि फलों की खेती करनेवाले हानिकर्ता कीट को पहचान सकें।

सब कीट अंडे से पैदा होते हैं और जीवन-प्रणाली के अनुसार दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं। एक वर्ग में रूपांतरकर्ता कीट की गणना है। इस वर्ग में तरुण-कीट का रूप बाल-कीट से बिल्कुल निराला होता है। सिर्फ रूप ही नहीं बदलता बल्कि किसी-किसी जाति में खान-पान की रीति भी बदल जाती है। भक्षक बालकीट, इल्लियां, (Caterpillars) तरुण अवस्था में चूषक हो जाते हैं। किसी-किसी के बदन पर बाल भी होते हैं। कुछ पांव-रहित तो किसी-किसी के बहुत-से पांव होते हैं। पूर्ण बाढ़ आने पर अपने ऊपर झिल्ली बनाकर कुछ दिनों तक बिना खान-पान उसमें रह जाते हैं। इसी में इनके पंख भी आ जाते हैं। झिल्ली फटने पर पंखवाले कीट निकल आते हैं।

जिन कीटों का रूपांतर नहीं होता उनके बाल-कीट के रूप में विशेष अंतर नहीं होता। आकार बढ़ जाता है और खान-पान की रीति वैसी ही बनी रहती है।

भक्षक कीट, जो आंतरिक विष से मारे जा सकते हैं, उनमें टिड्डे, तितलियों की जाति के बाल-कीट, इल्लियां, कवच पंखी (Beetles) दीमक (White-ants) और फलों की मक्खी की गणना है।

चूषक में तितलियों के तरुण कीट और खटमल की जाति के कीट होते हैं, जो फूल और पत्तों का रस चूसकर पेड़ को कमजोर कर देते हैं।

टिड्डे (Grass-hoppers, Crickets, Locusts)—ये पौधे या

पेड़ों के कोमल और हरे पत्ते खाते हैं। इनके अण्डे जमीन में दिये जाते जाते हैं। वाल्यावस्था से तरुणावस्था तक ये हानि पहुंचाते रहते हैं। इनसे विशेष हानि नर्सरी में होती है। अण्डों का नाश भूमि की जुताई से और कीट का आंतरिक विष से या कपड़े की जाली में पकड़कर किया जा सकता है।

तितलियों की जाति के कीट—इस जाति के जो कीट दिन में वाहर आते हैं, उन्हें तितलियां (Butterflies) कहते हैं और जो रात्रि में बाहर आते हैं उन्हें पतंग (Moths) कहते हैं। तितली या पतंग दोनों ही में नर-मादा के मेले के पश्चात् मादा पौधों के निकट जमीन में पौधों पर या पेड़ों पर अण्डे दे देती है, जिनसे बाल-कीट निकलकर अपना खाना शुरू कर देते हैं और पूर्ण बाढ़ पाने पर पेड़ पर या जमीन में कोष बनाकर रूपांतर करते हैं। तरुण कीट वैसे विशेष हानिकारक नहीं होते, क्योंकि ये फूलों के रस पर निर्वाह करते हैं, परंतु अण्डे देकर वंश-वृद्धि करते हैं। इसलिए परोक्ष रूप से हानिकारक हैं।

इनके नाश का यह उपाय है कि कम संख्या में हों, तो बाल-कीट चुनवाये जा सकते हैं; अधिक संख्या में हों तो पम्प द्वारा आंतरिक विष छिड़काया जा सकता है। पंतग की रोशनी पर आकर्षित कर मार सकते हैं। ताप के लिए आग जलाई जाती है, उसमें बहुत कीट भस्म हो जाते हैं। तितलियां कपड़े की जाली में पकड़कर मारी जा सकती हैं।

कवच-पंखी (गोबरीले) कीट की जातिवाले कीट (Beetles)—इस जाति के कीट की मादा पेड़ों पर या जमीन पर कूड़ा-कर्कट में अण्डे देती है। अण्डे से बाल-कीट निकलकर अपने खाने का काम शुरू कर देता है और पूर्ण बाढ़ पाने पर पेड़ में या बाहर निकलकर जमीन में रूपांतर करता है। तरुण-कीट कोमल पत्ते और फूलों की पंखुड़ियां खाते हैं।

दीमक[1] (White-ants)—इनका जीवन बड़ा रहस्यमय है, परंतु

१. 'साग-भाजी की खेती' में इनका विस्तारपूर्वक वर्णन दिया गया है।

इन्हें और इनकी करतूत को कृषक जानते हैं। इसलिए यहां पर उनसे बचाव का उपाय ही बतला दिया जाता है। स्मरण रहे कि तंदुरुस्त पौधे या पेड़ को दीमक हानि नहीं पहुंचा सकती। जब पौधा कमजोर होता है तो उसपर इनका आक्रमण हो जाता है और लोग समझते हैं कि दीमक से पौधा मर गया। दीमक विशेषतः सूखी लकड़ियों पर धावा करती है। इसलिए बगीचों में इधर-उधर सूखी टहनियां या लकड़ियां नहीं पड़ी रहने देनी चाहिए। सिंचाई से भी दीमक का असर कुछ कम हो जाता है छोटे पौधों को बचाने के लिए पौधे के तने के चारों ओर दो फुट की दूरी तक नीम की खली यदि मिट्टी में मिला दी जाय तो दीमक तने के निकट नहीं आती। जहां अधिक भय हो वहां रोपने के पहले ही खली डाल देनी चाहिए।

फल की मक्खी (Fruit-fly)—आम, फूट आदि फलों के छिलकों में छेद करके यह मक्खी अण्डे दे देती है, जिनमें से बाल-कीट निकलकर गूदे में चले जाते हैं। पूर्ण बाढ़ पाने पर बाहर निकलकर जमीन में कोष बनाकर रूपांतर करते हैं। एक सप्ताह में कोष से मक्खी निकल आती है। व्याधिग्रस्त फलों के सुधार का तो कोई उपाय नहीं है। व्याधि अधिक फैलने न पावे, इसलिए जिन फलों में मक्खियों के बाल-कीट पाये जायं उन्हें जला देना चाहिए। आमाषय विष (पृष्ठ ९२) पर आकर्षित करके भी इनका नाश किया जा सकता है।

चूषक कीट—ये स्पर्शज विष से मारे जाते हैं। इनमें अधिकतर खटमल की जाति के होते हैं। इनके अण्डे बहुधा पत्ते और नये कोंपल पर दिये जाते हैं, जिनमें से तरुण-कीट निकलकर पेड़ों का रस चूसते रहते हैं जिनके पर नहीं आते वे पत्तों पर धीरे-धीरे घूमकर रस चूसते हैं और जिनके पर आ जाते हैं वे एक स्थान से उड़कर दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं। इनके मुंह नली के रूप के होते हैं, जिसके द्वारा ये रस चूसते हैं।

मुख्य-मुख्य फलों को हानि पहुँचानेवाले कीट—फलों को थोड़ी-बहुत हानि पहुंचानेवाले विविध जाति के कीट हैं, परंतु विशेष हानि पहुंचाने-

वाले बहुत कम हैं, इसलिए यहांपर उन्हीं कीटों का वर्णन किया जाता है, जिनसे फलों के वृक्षों को बचाना बहुत जरूरी है।

अंगूर—इसमें पतंग की जाति का एक कीट लग जाता है, जो पत्ते बहुत खाता है। बालकीट हरे रंग का होता है और पूर्ण बाढ़ पाने पर करीब डेढ़-दो इंच लंबा छोटी अंगुली इतना मोटा होता है। इसकी दुम पर सींग-जैसा एक अंग होता है। यह कीट अपना कोष भूमि में बनाता है। तरुण-कीट भूरे रंग का करीब एक इंच लंबा पतंग होता है। जब पत्ते कटे हुए दिखलाई दें तब इसे लता पर ढुंढ़वाकर मार देना चाहिए।

कवच-पंखी कीट की जाति का छोटा-सा कीट भी पत्तों को बहुत हानि पहुंचाता है। पत्तों में छोटे-छोटे बहुत-से छेद कर देता है। काट-छांट के पश्चात् यदि केले के सूखे पत्ते लताओं पर रख दिये जायं तो ये कीट उन पत्तों पर चढ़ जाते हैं, जिन्हें कपड़े की थैली में गिराकर मार सकते हैं। दिन में दो-तीन बार पांच-छः दिन तक ऐसा करने से बहुत-से कीट मर जाते हैं।

अनार—अनार के फलों को तितली की जाति का एक कीट बहुत हानि पहुंचाता है। मादा तितली फूल या छोटे फल पर जहां फूल की पंखुड़ियां होती है, अण्डे दे देती है। प्रायः एक फल पर एक ही अण्डा देती है। अण्डे से निकलते ही बालकीट फल में घुस जाता है और बीज खाना शुरू कर देता है। बालकीट काले रंग का छोटे-छोटे बालोंवाला होता है। इसकी दुम चपटी होती है। इसका रूपांतर फल में ही होता है। जिस फल पर इसका आक्रमण होता है, वह अंदर से काला होकर कुछ दिनों में नीचे गिर जाता है। ऐसे फलों के काटने से अंदर बालकीट मिल जाते हैं।

व्याधि अधिक नहीं फैलने पावे, इसलिए सड़े हुए फलों को जला देना चाहिए। आक्रमण न होने पाए, इसलिए यदि थोड़े ही फल हों, तो उन्हें कपड़े या कागज की थैलियों में बंद कर देने से बचाव हो जाता है।

आड़ू—जब फल पकते हैं, उस समय यदि पानी आ जाय तो भूरे

रंग की एक मक्खी, जिसपर काली-पीली धारी होती है, फलों के छिलकों में छेद करके अण्डे दे देती है। इन अण्डों से तीन ही दिन में बालकीट निकलकर फल का गूदा खाना शुरू कर देते हैं और फल बेकार हो जाते हैं। करीब दो सप्ताह तक गूदे से अपना पोषण कर पूर्ण बाढ़ पाया हुआ कीट नीचे गिरकर भूमि में रूपांतर करता है। एक सप्ताह में कोष से मक्खी निकल जाती है।

व्याधि फैलने न पावे इसलिए आक्रमित फलों को जला देना चाहिए। मक्खियां पृष्ठ ९२ पर दिये हुए विष पर आकर्षित कर मारी जा सकती हैं।

आम—धड़-छेदक कीट—यह गोबरीले कीट की जाति का एक बड़ा कीट होता है, जो बहुधा पुराने आम के पेड़ों में लग जाता है और कुछ समय में पेड़ मर जाते हैं। मादा छाल के नीचे अण्डे दे देती है, जिनसे बालकीट निकलकर पहले छाल को और बाद में अंदर के काष्ठ को खाता हुआ अंदर घुसता चला जाता है और विष्ठा मिश्रित लकड़ी का बूरा पीछे फेंकता रहता है। यह कीड़ा कई साल तक पेड़ में रह जाता है।

पृष्ठ ९१ में दिये हुए उपचार से इसे मार सकते हैं।

टहनी का रस चूसनेवाला सफेद कीट (The mango white-bug)—यह खटमल की जाति का रस-चूषक कीट गर्मी के मौसम में पेड़ पर धीरे-धीरे चढ़ता-उतरता दिखलाई देता है। मादा पेड़ के नीचे की मिट्टी में अण्डे देती है। बालकीट निकलकर पेड़ पर चढ़ जाते हैं और रस चूसते रहते हैं। ये कीट अमरूद और कटहल पर भी मिलते हैं। इसलिए जहां कहीं मिलें कीटनाशक उपचार से इनका भी नाश करा देना चाहिए। थोड़े हों, तो चुन करके और अधिक संख्या में पेड़ पर चढ़ते हुए दिखलाई दें, तो पेड़ के धड़ पर मोटे रस्से के समान चारों ओर से सन बांधकर उसमें निम्नलिखित चिपकनेवाला पदार्थ लगा देना चाहिए। कारबोलिक एसिड एक भाग, वेसलिन दस भाग, नीम का तेल पचास भाग और राल एक सौ बीस भाग मिलाकर उबलते हुए पानी में यह मिश्रण गरम करके लगाना चाहिए। पेड़ पर चढ़नेवाले कीट सन के पास पहुंचते ही चिपक-

कर मर जाते हैं। उपर्युक्त मिश्रण के अभाव में यदि सन को क्रूड-आइल इमल्शन में डुबोकर बांध दिया जाय तो भी ठीक होगा।

मधुवा, मौर-चूषक कीट (Jassids)—इस कीट की मादा नये कोंपलों पर फाल्गुन-चैत्र में अण्डे देती है, जिससे बालकीट निकलकर पहले कोंपलों का और मौर (फूल) आने पर उनका रस चूसककर दस-बारह दिन में परसहित तरुणकीट बन जाते हैं। तरुणकीट भी मौर का रस चूसते रहते हैं। कभी-कभी तो इनकी इतनी वृद्धि हो जाती है कि सभी मौर का रस चूस लेते हैं, जिससे फल मिलते ही नहीं। इनके शरीर से मीठा रस निकलकर पत्तों पर और टहनियों पर गिरता रहता है। इस रस पर एक प्रकार की फंगस (Fungus) लग जाती है, जिससे टहनियां काली नजर आती हैं। आकार में तरुणकीट पाव इंच से भी छोटा होता है।

पृष्ठ ९२-९३ में दिये हुए उपचार करके इनके आक्रमण से पेड़ बचाये जा सकते हैं। मौर आने के दो-एक सप्ताह पहले से छिड़काव प्रारंभ कर जबतक छोटे-छोटे फल न बन जायं छिड़काव करना चाहिए। करीब पांच-छ: छिड़काव करने पड़ते हैं। छिड़काव सुबह में करना उत्तम होगा, क्योंकि उस वक्त कीट अचेतन अवस्था में रहते हैं।

आम की मक्खी—आड़ू की मक्खी ही आम के फलों पर भी आक्रमण करती है। पृष्ठ ९२ में दिये हुए उपचार से यह मारी जा सकती हैं।

आम का घुन—यह पाव इंच से कुछ बड़ा अनाज के घुन के आकार का काले और भूरे रंग का एक घुन होता है जिसकी मादा छोटे-छोटे फलों पर अण्डे देती हैं। बालकीट अण्डे से निकलते ही छिलके में छेद करके अंदर घुस जाते हैं। ज्यों-ज्यों आम बढ़ता जाता है, छेद बंद हो जाता है और बाहर से कुछ भी पता नहीं लगता। बालकीट गूदा खाते जाते हैं और जब गुठली की मींगी बनती है तो उसे खाने लग जाते हैं। पूर्ण बाढ़ पाने पर रूपांतर करके घुन बाहर निकल आते हैं और दूसरे साल की फसल पर आक्रमण करने के लिए छाल में या मिट्टी में पड़े रहते हैं।

मौर आने लगे उस वक्त से पेड़ की सिंचाई की जाय और धड़ पर क्रूड-आइल-इमल्शन का छिड़काव किया जाय तो बहुत-कुछ बचाव हो जाता है। सिंचाई से भूमि के अंदर के और औषधि से छाल में विश्राम करनेवाले कीट मर जाते हैं। आक्रांत फल जला देने चाहिए।

कुरूप मौर (बौर)—इनसे पेड़ों पर बौर के गुच्छे बन जाते हैं और फल नहीं आते। इनकी अभी तक कोई औषधि नहीं निकली है। इन्हें काटकर जला देना चाहिए।

कटहल—आम पर आक्रमण करनेवाला सफेद रंग का चूषक कीट इसपर भी पाया जाता है।

नारियल—नारियल का घुन—यह भी अनाज के घुन जैसे भूरे रंग का डेढ़ इंच लंबा घुन होता है जिसकी मादा पेड़ के कोमल भाग पर किसी तरह का घाव मिल जाने पर उसमें अण्डे दे देती है। बालकीट निकलकर अपना भोजन करते हुए अंदर घुसते चले जाते हैं। पूर्ण बाढ़ पाने पर कीट रूपांतर करते हैं और करीब तीन सप्ताह में घुन निकल आते हैं। ये घुन रात्रि में उड़ते हैं।

पेड़ पर कोई घाव खुला नहीं छोड़ना चाहिए। अलकतरे से सब बंद कर देने चाहिए।

धड़-छेदक कीट—यह भी गोबरीले कीट की जाति का एक सींग-वाला दो इंच लंबा कीट होता है। नर के बड़ा और मादा के बहुत छोटे सींग होता है। मादा कूड़ा-कर्कट या गोबर की ढेरी में अण्डे दे देती है। बाल-कीट उसीमें अपना पोषण कर रूपांतर करते हैं। पूर्ण बाढ़ पाया हुआ बाल-कीट करीब चार इंच लंबा और पौन इंच मोटा सफेद रंग छः पांववाला होता है। तरुणकीट पत्तों के बीच में घुसकर कोमल स्थानों पर आक्रमण करके अपना पोषण करते हैं। दिन-भर वहीं छिपे रहकर रात्रि में खाने के लिए बाहर निकलते हैं। तरुणकीट रोशनी पर आकर्षित किये जाकर मारे जा सकते हैं। नरियल के बागों में आग जलाई जाय तो उसमें आकर ये गिर जाते हैं। यदि पेड़ में हानिकर्ता कीट दिखलाई

दें तो तार से निकालकर मार देना चाहिए। इस कीट से मरे हुए पेड़ों को जला ही देना चाहिए। कूड़े-कर्कट और गोवर की ढेरी नरियल के पेड़ों के पास नहीं होनी चाहिए। मिट्टी के घड़ों में सड़ती हुई रेंडी की खली जगह-जगह रख दी जाय तो कीट उसमें आकर मर जाते हैं।

नीबू और संतरा की जाति को हानि पहुँचानेवाले कीट—धड़-छेदक संतरे में कवचपंखी कीट की जाति का धड़-छेदक कीट कभी-कभी लग जाता है। पृष्ठ ६१ में दिये हुए उपचार कर देने चाहिए। क्लोरोफार्म और क्रियोसोट मिश्रण के अभाव में कार्बन-व्राई-सलफाइड का उपयोग भी किया जा सकता है।

कोंपल-भक्षक नीबू की तितली—यह तितली देखने में बड़ी सुन्दर होती है। इसके पर वहुत-से पीले धब्बेवाले काले रंग के होते हैं। मादा नये कोंपल पर सफेद के छोटे-छोटे अंडे देती है, जिनसे वालकीट निकलकर कोंपल खा जाते हैं और कुछ वड़े होने पर पत्ते भी खाने लग जाते हैं। छोटे कीट ऐसे मालूम होते हैं, जैसे पत्तों पर पक्षियों की वीट गिरी हो। ये अपना रंग भी वदलते हैं। पूर्ण वाढ़ पाया हुआ कीट हरे रंग का मोटे सिरवाला होता है। इसकी गर्दन पर पक पीली धारी होती है। कोष पेड़ पर ही वनाता है, जो एक तार के सहारे वंधा रहता है। इस कीट से नर्सरी में बहुत हानि होती है।

छोटे कीट को चुनकर और तितलियों की हाथ-जाली से पकड़वाकर मार सकते हैं। यदि वालकीट अधिक संख्या में हों तो आंतरिक विष छिड़क देना चाहिए।

दूसरा कीट (Leaf miner) बहुत पतला होता है और पत्ते के वीच में रहता। जिस रास्ते से यह पत्ते में घुसता है वह रास्ता ऊपर से साफ दिखलाई पड़ता है। आक्रमण के कुछ दिन वाद पत्ते मुड़ जाते हैं। जिन पेड़ों को पूरी धूप और हवा नहीं मिलती उनपर इनका आक्रमण अधिक होता। इसलिए ऐसा प्रवन्ध रखना चाहिए जिसमें धूप और हवा का अभाव न हो।

घेरे के पास आम, जामुन, बेर, काजू, नीम, शीशम आदि के पेड़ लगा दिये जायं तो हवा से वचाव अच्छा होता है।

फल-छेदक—वरसात में एक जाति का पतंग (Ophideres fullonica) रात्रि में फलों को छेद देता है। छेद के आस-पास पहले फल का रंग भूरा हो जाता है और वाद में फल गिर जाता है। दिन में यह कीट छाल में छिपा रहता है।

इससे वचाने के लिए फलों को कागज की थैलियों में वांधना होगा या जाड़े की फसल न लेकर गर्मी की फसल ही लेनी ठीक होगी, क्योंकि उसमें आक्रमण कम होता है।

बेर—एक प्रकर की फल की मक्खी का आक्रमण बेर के फलों पर भी होता है। उपचार पृष्ठ ९२ में दिये हुए अनुसार करना चाहिए और आक्रमणित फलों को जला देना चाहिए।

लीची—इसके पत्ते को मोड़कर सुखा देनेवाला मकड़ी-जैसा एक जंतु (Mites) होता है, जो पत्तों के नीचे की ओर मखमल की-सी वाढ़ से पहचाना जा सकता है।

उपचार—आक्रांत पत्ते और टहनियों को जला देना चाहिए और पेड़ों पर क्रूड आइल-इमल्शन और गन्धक के चूर्ण का छिड़काव करना चाहिए।

लू और पाला—उपर्युक्त शत्रुओं के सिवा फलों के वागीचों में लू या जोर की हवा और पाले से वड़ी हानि होती है। हवा से वचने के लिए वागीचों के चारों ओर अथवा निर्माणित दूरी पर वीच में भी जगह-जगह वड़े पेड़ की कतारें या टहनियां लगानी पड़ती हैं। वीच में लगाने के लिए शहतूत के पेड़ भी अच्छे होते हैं। एक तो ये जल्दी वढ़ जाते हैं और दूसरे इनकी जड़ें भी अधिक नहीं फैलतीं। काफी ऊंचे होते हुए भी काट-छांट से इन्हें टट्टियों के समान बनाकर रख सकते हैं। टट्टियां लगा देने से दूसरा लाभ यह होता है कि जोर की हवा से भूमि से जो पानी उड़ जाता है, उसका उड़ना रुक जाता है। पेड़ों की वाढ़ भी सीधी होती है।

पाला गिरता है तो वातावरण इतना ठंडा हो जाता है कि पत्तों

का पानी बरफ बन जाता है और पानी के अभाव से पत्ते सूख जाते हैं जिसे पाले से जलना भी कहते हैं। पाले से उन पेड़ों को, जिनके पत्ते शीतकाल में झड़ जाते हैं, उन्हें बहुत कम हानि पहुंचती है। सदाबहार पेड़ों को ही अधिक हानि पहुंचती है। इससे बचाने के लिए निम्नलिखित उपचार होने चाहिए—

छोटे पेड़ों के बचाव के लिए उनपर चटाई, घास की टट्टी अथवा ताड़ के पत्तों की छाया करनी चाहिए। आम, नींबू, अमरूद आदि के पेड़ चार-पांच साल की आयु के हो जायं, तबतक शरद् ऋतु में उनके आस-पास और ऊपर बांस या घास के टट्टे बांध देने चाहिए। एक तरफ थोड़ा-सा खुला रखना चाहिए जिधर से पानी दिया जाय और पेड़ देखे जा सकें कि कीटादि का आक्रमण तो नहीं हुआ। बड़े पेड़ों का बचाव—(१) सिंचाई (२) धुंआ या (३) गर्मी पहुंचाकर किया जा सकता है।

(१) सिंचाई—जिस दिन पाले की संभावना[1] हो उस दिन जितनी बन सके, सिंचाई कर देनी चाहिए। पानी एक बार गरम होने से इतनी जल्दी ठंडा नहीं होता जितनी जल्दी वातावरण की हवा हो जाती है। जब मिट्टी में पानी बना रहता है तो उसके अंदर की गर्मी जल्दी से नष्ट नहीं होती। पानी इतना देना चाहिए कि मिट्टी गीली-सी बनी रहे। बहुत कम पानी से लाभ नहीं होता। उसी भांति पानी इतना भी नहीं देना चाहिए कि क्यारियों में भरा रहे।

आम के मौर को घने बादलवाले दिन भी बड़ा नुकसान हो जाता है। ऐसे अवसर पर यदि फूलों पर पानी का छिड़काव कर दिया जाय तो फूल मुर्झाने या झड़ने नहीं पाते।

(२) धुआं—पत्ते और घास की जगह-जगह ढेरियां बनाकर यदि ऊपर से कुछ गीली करके जलाई जायं तो उनसे काफी धुआं निकलता

---

१. दिन में बहुत सर्द हवा चलती हो और आसमान बिल्कुल साफ दिखाई दे, तो रात को पाला गिरने की संभावना रहती है।

रहता है। यह धुआं बागीचों पर बादलों-सा छाया रहता है, जिससे पेड़ या पौधों पर पाले का पूरा-पूरा असर नहीं पड़ता। मध्य रात्रि में या एक प्रहर रात बीतने पर ढेरियों में आग लगा दी जाय तो उत्तम होगा। कहीं-कहीं अलकतरा, या डामर का तेल (Coaltar) भी धुआं करने के काम में लाया जाता है। छोटे-छोटे डिब्बों में रखकर आग लगा देने से काफी धुआं हो जाता है और पाला पेड़ या पौधों पर जमने नहीं पाता।

(३) जब वातावरण का तापमान[1] 30°F से कम हो जाता है तब पाला गिरता है। इसलिए वातावरण की हवा को कुछ अंश तक गरम करने की युक्ति विदेशों में काम में लाई जाती है। कुछ यंत्र ऐसे बने हुए हैं, जिनमें सस्ता तेल जलाकर हवा गरम करते हैं। बहुमूल्य पेड़ हों और जलावन सस्ता हो अथवा घास-पात मिल सके तो आग जलाकर वातावरण कुछ अंश तक गरम किया जा सकता है।

तेज धूप—लू और पाले के सिवाय तेज धूप भी पेड़ों को और फलों को काफी हानि पहुंचाती है, विशेषतर पपीते और नीबू जाति के फलों में ऐसी हानि स्पष्ट दिखाई देती है। उस स्थान का रंग लाल-सा हो जाता है। जिधर से धूप अधिक लगती हो उस ओर छायादार पेड़ लगे रहें तो अच्छा, है पपीते के फल इकट्ठे ही बहुत-से रहते हैं, सो उनपर चट्टी भी बांधी जा सकती है। पेड़ों के धड़ों को बचाने के लिए उनपर चूने से सफेदी करा देनी चाहिए।

---

१. तापमान जानने के लिए एल्कोहल के थर्मामीटर जिनका एल्कोहल लाल रंग का रंगा हुआ हो, अच्छे होते हैं, क्योंकि ये रात में भी पढ़े जा सकते है। इन्हें जमीन से ४ फुट की ऊंचाई पर लगाना चाहिए।

अलार्म थर्मामीटर—जब सर्दी पाला गिरने की हद तक पहुँच जाती तो ऐसे थर्मामीटर से अलार्म की घंटी बज जाती है और मालिक जागकर सिगड़ियां (Heater) जला सकता है। १० एकड़ में लगभग ३०० सिगड़ियां (Heaters) और ०·६ गेलन क्रूड-आयल प्रति घंटा जलता है।

इनके सिवा फलों के वृक्षों पर या फलों पर 'फंगस', 'बेक्टीरिया' और 'वायरस' का आक्रमण भी होता है। इनसे बचाने के उपचार के लिए कृषि-विभाग के विशेषज्ञों की सहायता लेनी चाहिए।

जहांपर आवश्यकीय तत्वों के उचित संतुलन से भी व्याधि हों, उसके लिए कृषि रसायनज्ञ से भूमि की जांच करानी चाहिए।

: १० :

फलों का विक्रय

यह विषय बड़ा ही गहन है। इसमें अधिक-से-अधिक लाभ वही उठा सकता है जो स्वयं ग्राहकों तक माल पहुंचा सके। यह कार्य सब व्यक्तियों से नहीं हो सकता। शिक्षित, दूरदर्शी और शीघ्र निर्णयकर्त्ता व्यक्ति ही ऐसे काम कर सकते हैं। कहां किस प्रकार के माल की मांग है इसकी पूरी-पूरी जानकारी रखनी पड़ती है। माल को किन युक्तियों से कम व्यय में और अच्छी स्थिति में बाहर ले जाना चाहिए, किस प्रकार ग्राहकों को प्रसन्न कर उनसे द्रव्य प्राप्त किया जाय, माल की विज्ञप्ति की रीतियों आदि से पूरी जानकारी करनी पड़ती है और साथ में बाग़ीचों की देखभाल भी करनी पड़ती है।

जो इन झंझटों में नहीं पड़ना चाहें अथवा वे लोग, जिनके पास बहुत बड़े बग़ीचे हों और जो अपने समय का उत्तम उपयोग बागीचे की देखभाल में करना उचित समझें, उनके लिए माल तैयार होने पर किसी थोकबंद व्यापारी के हाथ बेचना भी ठीक होगा। ऐसे व्यापारी खरीदे हुए माल को स्थानांतर कर सुभीतानुसार बेच देते हैं। साधारणतः उपभोक्ता के पास पहुंचने तक कम-से-कम तीन-चार मध्यस्थों के हाथ से माल निकलता है और प्रत्येक अपना-अपना नफ़ा चढ़ाकर माल को काफी मंहगा कर देते हैं।

इनके नफे के सिवा माल के उलट-फेर में हम्माली, शहरों की चुंगी, तुलाई या गिनाई, धर्मादा इत्यादि का खर्च बढ़ता ही रहता है।

फलों की बिक्री साधारणतः पांच प्रकार की हो सकती है :

१. कुछ वर्षों के लिए बग़ीचों को बेच देना—जो व्यवसायी बागीचा खरीदता है वह प्रतिवर्ष फलने-न-फलने अथवा आंधी और कीटादि से

फसल को हानि पहुंचने-नहीं-पहुंचने की जोखिम में पड़कर लेता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह कम दाम देगा। इस रीति से वेचने में मालिक को ग्रामदनी तो कुछ कम होती है, लेकिन वार्षिक ग्राय पक्की हो जाती है।

२. बागीचों की वार्षिक बिक्री—इसमें कुछ व्यापारी छोटे-छोटे फलों को देखकर ही बाग उस फसल के लिए खरीद लेते हैं ग्रौर कुछ ऐसे भी होते हैं जो पूर्ण बाढ़ पाये हुए फल ही खरीदते हैं। पहली रीति से वेचने में देखभाल नहीं करनी पड़ती ग्रौर ग्रांधी ग्रथवा कीट से जो हानि की संभावना रहती है यह खरीदार के सिर पड़ती है। इसमें भी ग्रामदनी कुछ कम ही होती हैं। यदि फसल ग्रच्छी रही तो फलों के पूर्ण बाढ़ पाने पर ही वेचने में ग्रधिक लाभ प्राप्त होता है।

३. ग्रपनी ग्रोर से फलों को छांट करके मांग के ग्रनुसार वाजार में पहुंचाकर थोकवंद व्यापारी के हाथ वेचना—इसमें रास्ते में फल विगड़ने न पावें इसका पूरा प्रवन्ध करना पड़ता है।

४. स्वयं ही ग्राहकों तक पहुंचाना—इस प्रकार से वेचने में कुछ विशेष परिश्रम करना पड़ता है; परंतु लाभ ग्रच्छा होता है। इसमें फलों की छंटनी करनी पड़ती है ग्रौर भेजने के लिए पैंकिंग का सब सामान तथा एक मिस्त्री भी रखना पड़ता है, जो काट-छांटकर बक्सों को ग्रावश्यकतानुसार वनाया करे ग्रौर पार्सल ठीक से तैयार कर दे।

जो व्यक्ति ग्रपने ही हाथ में सब कार्य रखना चाहें उनके लिए निकट-वर्ती वाजार में ग्रपनी एक दुकान भी रखना वहुत जरूरी है, जिसपर कुछ फल ग्रौर तरकारियां विकती रहें। जो कृषक फलों की खेती करते हैं उन्हें फलों के पेड़ों के तैयार होने तक बीच की भूमि में कुछ तरकारियां भी उपजानी पड़ती हैं। उनसे ग्रधिक-से-ग्रधिक मूल्य प्राप्त करने के लिए ग्रपनी दुकान होनी चाहिए। ऐसी दुकान का प्रबंध किसी भरोसेवाले मधुर-भाषी, स्वच्छता-प्रेमी व्यक्ति के हाथ में होना चाहिए। भरोसेवाला ग्रादमी दुकान की पीठ ग्रच्छी जमाता है। मधुर भाषण से ग्राहक प्रसन्न

होकर माल ले ही जाते हैं। स्वच्छता-प्रेमी होने से माल साफ-सुथरा रखेगा ताकि ग्राहक आकर्षित हों।

५. स्वयं सदस्य बनकर सहकारी मंडल द्वारा व्यवसाय चलाना— आजकल इस प्रकार से व्यवसाय चलाने की ओर बहुत ध्यान दिया जाता है और यदि ठीक चलाया जाय तो लाभ भी अच्छा होता है। अन्य प्रकार के व्यवसाय में जहां एक ही प्रकार का या करीब-करीब एक ही प्रकार का माल तैयार किया जाता है वहां इसके संचालन में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती; परंतु फलों की खेती में जहां एक ही प्रकार के फल उत्पन्न करना ज़रा कठिन कार्य होता है, संघ के संचालन में कुछ कठिनाइयां होती हैं। इस कार्य में प्रथम पूर्ण विश्वास ही नहीं, कुछ उदारता का भाव भी रखना पड़ता है। सभी कृषक एक ही प्रकार के उत्तम फल तैयार नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में लाभ के बंटवारे में झंझट पैदा हो जाता है। धीरे-धीरे कृषक नीची श्रेणी का माल ऊंची श्रेणी के माल में किसी तरह से चलाने का प्रयत्न करते हैं जिससे कुछ काल में उदारता और विश्वास के भाव नष्ट हो जाते हैं। संघ के कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति में कुछ लोग अपने-अपने आदमी रखने का प्रयत्न करते हैं और सभी नियुक्त व्यक्ति भी ऐसे उच्चकोटि के नहीं होते जो सब सदस्यों के प्रति समानता का व्यवहार रख सकें। इन झंझटों से कुछ ही काल में संघ टूट जाते हैं।

उपर्युक्त प्रकार की बाधाओं से संघ को धक्का न पहुंचे, इसलिए पहले-पहल ग्रामीण संघ स्थापित करने चाहिए जिसमें समान प्रेम-भाव-वाले उदारहृदयी व्यक्ति सदस्य बनाये जायं और वे आदर्श-उदाहरण स्थापित कर दूसरों के हृदय में भी पारस्परिक सद्व्यवहार के भाव जागृत करें। भारत की वर्तमान स्थिति में पहले-पहल अखिल भारतीय संघ या प्रांतीय संघ स्थापित करने में सफलता कठिन होगी। प्रारंभ में ग्रामीण और फिर जिला संघ बनाने चाहिए। ऐसे संघ में एक ही प्रकार के रहन-सहन और व्यवहारवाले सदस्य रहते हैं। इसलिए ऐसे संघ का संचालन

सफलतापूर्वक हो सकता है । संघ के संचालनार्थ सदस्यों को अपने लाभ का कुछ भाग तो अवश्य व्यय करना पड़ता है; परंतु लाभ के विचार से व्यय कुछ भी नहीं है । किसी प्रकार का सुधार करने की आवश्यकता होती है तो संघ के सभी सदस्य सूचित किये जाते हैं और सब एक साथ सुधार कर लेते हैं । किसी प्रकार की व्याधि का सामना करने के लिए भी एक-दो या दो-चार पृथक्-पृथक् व्यक्तियों की अपेक्षा संघ अधिक सफल हो सकता है । किस प्रकार के माल की कहां अधिक खपत होगी और कहां विशेष लाभ हो सकता है, इसकी सूचना भी संघ आसानी से रख सकता है और माल का उचित मूल्य प्राप्त कर सकता है । पृथक्-पृथक् व्यक्तियों की चढ़ा-उतरी से जो बहुधा मूल्य घटाना पड़ता है, वह नहीं होने पाता । माल भेजने के लिए बक्स, टोकरियां वगैरह इकट्ठी लेने से बहुत सस्ते मूल्य में मिल जाती हैं । माल एक साथ भेजने से सस्ते मूल्य पर बाहर भेजा जा सकता है । थोड़ा माल रेल द्वारा बाहर भेजा जाय तो खर्च बहुत पड़ जाता है । यदि कुछ व्यक्ति संघ बनाकर भेजें तो पूरे डिब्बे भरकर भेज सकते हैं, जिनका दर बहुत कम पड़ता है ।

फलों का चालान—व्यवसायार्थ फलों की खेती करनेवालों को फलों के चालान की भांति-भांति की युक्तियां पूरी तरह से ध्यान में रखनी चाहिए । विशेष लाभार्थ फलों का बाहर भेजना उनके लिए एक अनिवार्य कर्तव्य समझना चाहिए । स्थानीय अथवा निकटवर्ती बाजार में अच्छा मूल्य नहीं प्राप्त हो सकता, क्योंकि जहां जो चीज पैदा होती है वहां लोग अपने-आप ही निजी बाग़ीचों में अपने घरू उपयोग के लिए तैयार कर लेते हैं और आवश्यकता से अधिक होने पर सस्ते मूल्य पर बाजार में बेच देते हैं । इनके सिवा छोटे बाग़ीचेवाले कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनके पास माल कम होता है और बाहर भेजने के झंझट से बचना चाहते हैं, वे भी सस्ते मूल्य पर निकटवर्ती बाजार में अपना माल बेच लेते हैं । ऐसी स्थिति में दूर के बाज़ार से अधिक लाभ की आशा की जा सकती है ।

फलों का बाहर भेजना उनके गुण, मांग, मूल्य, फलों की भौतिक स्थिति, उनकी आयु तथा स्थानांतर की सुविधा पर निर्भर है।

गुण—बहुत-से फल ऐसे हैं जिनकी मांग उनके गुण पर ही निर्भर है, जैसे बेदाना अनार, मोसम्बी या माल्टा और संतरा। गरीब और साधारण स्थितिवाले सामान्यतः इन्हें नहीं खरीदते, परन्तु जब कोई व्याधि उनके घर में आ जाती है तो व्याधि-ग्रस्त व्यक्तियों के लिए इन्हें इनके गुण के कारण खरीदना पड़ता है। निकटवर्ती बाजार में नहीं मिलने पर दूर से भी मंगवाने पड़ते हैं।

मांग—यह स्थानीय जलवायु और ग्राहकों की चाह पर निर्भर है। जिन स्थानों में गर्मी विशेष होती है वहां गर्मी में संतरा और माल्टा की मांग विशेष होती है। इसी तरह जाड़े में काजू, किशमिश, अखरोट आदि सूखे फलों की मांग अधिक होती है।

एक ही वस्तु, जो कुछ व्यक्तियों के लिए स्वादिष्ट हो, दूसरों के लिए उतनी ही स्वादिष्ट नहीं भी हो सकती है। उदाहरणार्थ, बहुत-से व्यक्ति ऐसे हैं, जो कटहल और बेल बड़े प्रेम से खाते हैं और कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें ये बिल्कुल अच्छे नहीं लगते। आम, सेब इत्यादि कुछ ऐसे फल हैं जो सबके लिए स्वादिष्ट होते हैं और जिस स्थान पर इनकी अच्छी जातियां पैदा होती हैं, वहां से लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए मंगवाते है। इसलिए कहां किस स्थान पर कौन-से माल का चालान लाभप्रद होगा यह भी चालानकर्ता को ध्यान में रखना चाहिए और पहुंच के स्थान पर फलों की तैयारी के दो सप्ताह पहले से ही विज्ञापनों द्वारा फलों के नाम, वर्ग तथा दर की सूचना देते रहना चाहिए।

मूल्य—संसार में सभी जगह धनाढ्य, मध्यम और निर्धन स्थिति के व्यक्ति होते हैं। उसी भांति हमारे देश में भी तीनों प्रकार के व्यक्ति हैं; परन्तु पहले की अपेक्षा दूसरी और तीसरी श्रेणी के व्यक्ति कहीं अधिक हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए अधिक मूल्यवाले फल खरीदना असंभव हो जाता है। इसलिए यह देखना बहुत ज़रूरी है कि फलों की तैयारी तथा

उनके भेजने में इतना अधिक व्यय न हो जाय कि उनका मूल्य ही बहुत बढ़ जाय।

फलों का मूल्य उनकी तैयारी तथा भेजने के खर्च के सिवा जनता की आर्थिक स्थिति और बाजार में उनकी आमद और मांग पर भी निर्भर है। यदि जनता की कमाई अच्छी हुई तो फलों की बिक्री अधिक मूल्य पर आसानी से हो सकती है। निकटवर्ती बाजार में कम आमद होने से मूल्य बढ़ जाता है। जब मूल्य बढ़ जाता है तो आमद भी अधिक हो जाती है और मूल्य फिर घट जाता है। इसलिए घबराकर माल कम मूल्य पर जल्दी नहीं निकाल देना चाहिए। दूरवर्ती बाजार के भाव की सूचना रखते हुए दाम घटाना-बढ़ाना चाहिए।

फलों की भौतिक स्थिति—भौतिक स्थिति के अनुसार फल चार भागों में विभाजित किये जा सकते हैं:—

१. सूखे फल, जैसे सूखे नारियल, काजू, किशमिश, खूबानी आदि ऐसे फल हैं, जो कभी भी और कितनी ही दूरी पर बिना पैकिंग का व्यय बढ़ाये साधारण बोरों में भेजे जा सकते हैं।

२. कठोर फल, जैसे हरे नारियल, कैथ, बेल ये भी सहूलियत से भेजे जा सकते हैं; परन्तु सस्ते बिकने के कारण दूर तक नहीं भेजे जा सकते।

३. टिकाऊ फल—सेब, नाशपाती, संतरा, आम आदि ऐसे फल हैं, जिनसे अच्छा मूल्य प्राप्त किया जा सकता है और पकने पर उनके ठहरने की स्थिति के अनुसार अच्छा पैकिंग करके दूर तक भेजे जा सकते हैं।

४. वे फल, जो अपनी कोमलता के कारण पकने पर एक-दो रोज से अधिक नहीं ठहर सकते। जैसे जामुन, खिरनी, करौंदे आदि। ऐसे फल दूर नहीं भेजे जा सकते।

स्थानांतर की सुविधा—जहां रेल से माल भेजा जा सके वहां जल्दी, कम व्यय और अच्छी स्थिति में माल दूर तक भेजा जा सकता है। जहां पक्की सड़कें हों वहां बैलगाड़ी द्वारा और जहां सजीव नदियां

हों, वहां नदियों से नाव द्वारा भी कुछ दूरी तक माल अच्छी स्थिति में भेजा जा सकता है, परन्तु जहां रास्ते खराव हों, वहां कोमल फलों को अच्छी हालत में भेजना संभव नहीं तो कठिन अवश्य होता है। ऐसे स्थानों पर मनुष्यों द्वारा या ऊंट, वैल घोड़े या गदहों पर माल भेजना पड़ता है, जिससे मूल्य वढ़ जाता है।

चालान की युक्तियां—हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि फल वाजार में ताजे, अखंडित और व्याधि-रहित स्थिति में पहुंचें। इसलिए पेड़ पर से फल उसी दिन तोड़ना चाहिए जिस दिन भेजना हो और जहां तक हो रात्रि की ठंडक खाये हुए हों, अर्थात् सुवह में तोड़कर छंटनी करके उसी दिन चालान करना चाहिए।

वड़े फल पेड़ पर से वड़ी सावधानी से तोड़ने चाहिए, जिसमें उन्हें चोट न पहुंचे। चोट खाया हुआ फल अपने-आप तो नष्ट हो ही जाता है, साथवाले दूसरे फलों को भी विगाड़ देता है। जहांतक हो, फलों को पेड़ पर चढ़ करके अथवा सीढ़ी लगाकर हाथ से तोड़ना चाहिए। पतली डालियों के फल सींकी[1] से तोड़े जा सकते हैं, यदि उसकी भी पहुंच के वाहर हो तो डालियों को हिलाकर फलों को कपड़ों में झेलना चाहिए। जो फल छोटे हों, जैसे लीची, तो उनके गुच्छे-के-गुच्छे तोड़ने ठीक होंगे। उससे भी छोटे फल, जैसे खिरनी या जामुन हों तो उन्हें गिराते समय पेड़ के नीचे कुछ थोड़ा-सा घास विछा देना चाहिए। ऐसे फल कपड़े में नहीं झेले जा सकते क्योंकि उनमें, चिकना दूध होता है। उससे अथवा उनके रंग से कपड़ा विगड़ जाता है। घास पर गिरने से फल टूटते नहीं

---

१. एक लंबे वांस के मुंह पर लोहे या बेंत का नौ-दस इंच व्यास का एक कुंडल बांधकर उसमें एक जाली लगा दी जाती है, जिसमें फल टूटकर जाली में गिरे। फल जल्दी से टूट जायं, इसलिए कुंडल में वांस के दो टुकड़े, जो एक ओर से तेज किये होते हैं, लगा दिये जाते हैं। फलों के डंठल इस युक्ति से जल्दी टूट जाते हैं।

और आसानी से चुने जा सकते हैं।

जब फल नजदीक भेजना हो तो पके हुए या ऐसे फल, जो एक-दो दिन में पक जायं, भेजने ठीक होंगे। दूरी के लिए, जहां कि तीन-चार दिन का समय लगता हो ऐसे फल तोड़कर भेजने चाहिए जो वहां पहुंचने पर पकें। जब इससे भी अधिक समय लगे अथवा फल कोमल हों तो बर्फ द्वारा ठंडे रखे जानेवाले डिब्बों में या जहाज के ठंडे गोदाम में रखने चाहिए।

चालान के प्रथम बाजार की मांगानुसार फलों की छंटनी[1] होनी चाहिए। अखंड, उत्तम आकार और सुन्दर रंगवाले प्रथम श्रेणी में, उनसे हलके लेकिन अखंड दूसरी श्रेणी में और अन्य तीसरी श्रेणी में रखने चाहिए। तीसरी श्रेणी के फलों को निकटवर्ती बाजार में ही बेचना चाहिए। उन्हें दूर भेजना वृथा है क्योंकि एक तो उनसे यथेष्ट मूल्य नहीं प्राप्त हो सकता और दूसरे टूटे-फूटे होने से रास्ते में उनके बिगड़ जाने की संभावना रहती है। छंटनी के पश्चात् उनके भेजने का प्रबन्ध होना चाहिए।

यदि फल नजदीक भेजने हों तो मजदूरों द्वारा टोकरियों में भरकर अथवा बैल-गाड़ी, गधे, घोड़े, खच्चर, बैल, भैंसे या ऊंट पर लादकर भेज सकते हैं। दूर भेजने के लिए नाव, रेल, मोटर या वायुयान काम में लाये जाते हैं। विदेश में जहाजों या वायुयानों द्वारा भेजने होते हैं।

माल भेजने के लिए कोई भी सवारी हो सकती है; परन्तु पैकिंग ऐसा होना चाहिए जिसमें रास्ते में एक-दूसरे से रगड़ खाकर फल बिगड़ने न पावें या कोई आसानी से उसमें से कुछ माल पार न कर ले।

सूखे फल, जैसे खुमानी, काजू, किशमिश आदि बोरों में भेज सकते हैं। नारियल जैसा कठोर फल भी बोरे में भेजा जाता है। टिकाऊ लेकिन

---

१. भारत-सरकार की ओर से एक विभाग खुला हुआ है, जिसने कुछ फलों की अलग-अलग श्रेणियां बनाकर बेचने के नियम बनाये हैं। ये नियम Agricultural Marketing Adviser to the Government of India, Delhi से प्राप्त हो सकते हैं।

कोमल, जैसे सेव, ग्राम, संतरा ग्रादि बांस की टोकरियों में या देवदार ग्रथवा प्लाईवुड के वक्स में भेजना चाहिए। प्लाईवुड का वक्स मजवूत भी होता है ग्रौर हल्का भी रहता है। कटहल जैसा फल विना पैंकिंग के ही भेज सकते हैं। इसके डंठल से लेवल बांध देना ही काफी है। कच्चे केले भी विना पैंकिंग के भेज सकते हैं।

बहुमूल्य ग्रौर प्रथम श्रेणी के फलों को पतले प्लाईवुड या देवदार के वक्सों में भेजना ठीक होता है। प्रत्येक वक्स में फलों की दो या तीन तह से ग्रधिक नहीं होनी चाहिए। फल एक-दूसरे से रगड़कर विगड़ने न पावें ग्रथवा वे हर प्रकार की व्याधि से बचे रहें, इसलिए प्रत्येक फल को पतले रंगीन कागज में लपेटकर रखना चाहिए। ग्रधिक सावधानी के लिए सेलीसीलईज़्ड[1] कागज काम में लाया जा सकता है। कागज के उपयोग से फलों पर धूल भी नहीं जमने पाती ग्रौर उसका रंग भी चमकीला बना रहता है।

ग्रनार, नासपाती जैसे फल लकड़ी के क्रेट में चटाइयां लगाकर उनमें वंद करके भेजे जा सकते हैं।

जो फल छोटे हों, उन्हें छोटी-छोटी बांस की टोकरियों में, जिनमें एक सेर के लगभग फल रखे जा सकें, रखकर टोकरियों को बड़े वक्स में रख सकते हैं। एक वक्स में ऐसी टोकरियों की दो-तीन तह ही रखनी चाहिए।

फलों को रखते समय जो जगह खाली हो उसे लकड़ी के महीन छीलन से या हरे पत्तों से भर देना चाहिए। वक्सों में दोनों वाजू पर कुछ छोटे-छोटे छेद हवा के ग्रावागमन के लिए बनवा दिये जायं तो फल

---

१. सेलीसिलिक एसिड (Salicylic acid) ग्रौर ग्रलकोहल (Alcohol) के घोल में पानी सिर्फ इतना डाला जाय कि जिसमें एसिड नीचे जमने न पावे। ऐसे घोल को कागज में डुबोकर सुखा करके काम में लाया जाता है।

अच्छी स्थिति में बने रहते हैं।

बक्सों का आकार और वजन ऐसा होना चाहिए कि कुली आसानी से उठा सकें और धीरे-से रख सकें। अधिक-से-अधिक दो फुट लम्बा, फुट-सवा-फुट चौड़ा और करीब एक फुट गहरा होना चाहिए। वजन में लगभग एक मन का बोझ ठीक होता है। टोकरियों का वजन दस सेर से बीस सेर तक ठीक न होगा।

प्रत्येक पार्सल पर बड़े सुन्दर अक्षरों में फल और विक्रेता का नाम अवश्य होना चाहिए। यह भी विज्ञापन का काम करता है। एक पार्सल में एक ही श्रेणी के फल होने चाहिए और श्रेणी का वर्णन, फलों की संख्या और वजन भी अवश्य लिखना चाहिए। ऐसा करने से माल जल्दी खप जाता है और मूल्य भी अधिक प्राप्त होता है। सबसे विशेष लाभ तो यह होता है कि एक बार पीठ जम जाने से लोग बिना संदेह के तुरन्त माल खरीद लेते हैं। उसे खोलकर दिखलाने में समय नष्ट नहीं होता। जो नियम पौधे भेजने के पृष्ठ ७१ पर दिये गए हैं, उन्हींको ध्यान में रखकर फलों के पार्सल भी भेजने चाहिए।

विदेशों से व्यवसाय—पाठकों के सूचनार्थ कुछ अंक पृष्ठ ११६ पर दिये जाते हैं, जिससे ज्ञात होगा कि फलों के व्यवसाय की ओर कितनी उन्नति करने की आवश्यकता है।

पृष्ठ ११६ पर के अंक बताते हैं कि ताजे फलों का आयात बढ़ता जा रहा है। जहां १९६२-६३ में तेरह करोड़ छाछठ लाख के फल आये थे, १९६३-६४ में पन्द्रह करोड़ पैंतालीस लाख के आये। सूखे फलों तथा फलों के पदार्थों का आयात कम हुआ। भारत में सब प्रकार के फलों को उपजाने जैसी जलवायु विद्यमान है, यहां तो फलों का आयात नहीं के बराबर होना चाहिए। यह सन्तोष की बात है, कि जहां दस वर्ष पूर्व आयात की रकम से निर्यात की रकम तीन-चौथाई थी वहां अब आयात से निर्यात के अंकों में काफी बढ़ती हुई है।

फल और फलों के पदार्थों का आयात-निर्यात[१]—रुपयों में

नाम वस्तु	आयात		निर्यात	
	१९६२-६३	१९६३-६४	१९६२-६३	१९६३-६४
ताजे फल	१३,६५,७९८४८	१५,४४,५२,६०७	२१,३१,९७,३६२	२३,६०,३७,४३०
सूखे फल	४,१३,०५,३३९	२,९१,०७,३७२	२२,०६,३०२	२०,९४,२५२
फलों के पदार्थ, सुरक्षित फल, चटनी, आचार आदि	२२,०२१	२०,२४३	१२,३३,५६९	१६,४७,९४३
कुल	१७,७९,०७,२०८	१८,३५,८०,२२२	२१,६६,३७,२३३	२३,९७,७९,६२५

(१) Monthly statistics of the Foreign Trade of India, March 1964, Vol. I. P. 8 Vol. II, P.8

उसी भांति मुरब्बे और सुरक्षित फलों (Tinned and bottled fruits) के कारखाने भी देश में खोलने की बहुत आवश्यकता है। आम, लीची, संतरे इत्यादि कई ऐसे फल हैं, जो मौसम में बहुत ही सस्ते बिक जाते हैं और गैर-मौसम मिलते ही नहीं। हाल में कुछ कारखाने अवश्य खुले हैं और निर्यात भी अच्छा हो रहा है, परन्तु इसमें और वृद्धि होनी चाहिए।

अचार, चटनी आदि में आयात की अपेक्षा निर्यात अच्छे हुए और ऐसा होना भी चाहिए।

: ११ :

फलों के वृक्षों का वर्गीकरण और खेती की विस्तृत रीति

फलों के वृक्षों का वर्ग-निर्माण तीन प्रकार से हो सकता है:—

१. वनस्पति-शास्त्रानुसार ।

इस रीति से वर्ग-निर्माण में कुछ अंश तक पेड़ों के गुणावगुण तथा उनके संवर्धन की रीति और खाद की मांग का पता चल जाता है ।

२. वृक्षों के आकारानुसार जैसाकि पृष्ठ २६-२७ में वर्णन किया गया है ।

३. उपयोगानुसार । जैसे,

(क) ताजे फल—पकने पर ताजे खाये जानेवाले फल ।

(ख) सूखे फल—सुखाकर उपयोग में लाये जानेवाले फल ।

(ग) चटनी-मुरब्बा आदि के लिए काम में लाये जानेवाले फल ।

इनमें से पहली रीति से वर्ग-निर्माण किया जाना उत्तम है; परंतु फलों की जाति के नाम हिन्दी में तो क्या अंग्रेजी में भी नहीं हैं । वे सब लेटिन में हैं । इसलिए साधारण पढ़े-लिखे पाठकों की समझ में नहीं आ सकते । इस कारण से इस पुस्तक में तीसरी रीति का उपयोग किया गया है और फलों में वे ही फल चुने गए हैं, जो अधिकतर भारतवर्ष में होते हैं या हो सकते हैं।

प्रत्येक फल के नाम के साथ अंग्रेजी तथा लेटिन[1] नाम भी दिये गए

---

१. चटर्जी तथा रंधावा महोदय ने अपनी खोज के आधार पर कुछ नाम बदलने का सुझाव दिया है । इसलिए कहीं-कहीं नये नाम दिये हैं और पुराना नाम कोष्ठक में दिया है, ताकि पाठकों को, कौन-सा नाम पहले था, अब कौन-सा है, ज्ञात हो जाय । Chatterji & Randhawa 1952 Indian. J Hort. Soc Volix N0. 2, p. 24-36.

हैं, ताकि जो सज्जन जानना चाहें जान सकें।

सूखे फलों में दो-तीन ऐसे फलों का वर्णन हैं, जो अफगानिस्तान की तरफ से अथवा बाहर से आते हैं। चूंकि उनका उपयोग भारतवर्ष में बहुत होता है, अतः पाठकों की जानकारी के लिए संक्षिप्त रूप से उनका वर्णन किया गया है।

तीसरे वर्ग के पृथक-पृथक उपवर्गों में निम्नलिखित फल समाविष्ट हैं।

ताजे फल—अंगूर, अमरूद, अनानास, अनार, आड़ू, आम, ककड़ी, कटहल, कमरख, केला, खजूर, खरबूजा, खिरनी, गुलाबजामुन, चकोतरा, तरबूज, तुरंज, तेंदू, दिल-पसंद, नासपाती, नीबू, पपैया, फालसा, बीही, बेर, बेरी, (गूज बेरी, ब्लेकबेरी, स्ट्राबेरी), बेल, रामफल, रेंता, लीची, लोकाट, शफतालू, शरीफा, शहतूत, संतरा, सपाट्ट, सिंघाड़ा, सेब, ।

सूखे फल—अखरोट, अंजीर, काजू, खूबानी, चिलगोजा, चिरौंजी, नारियल, पिश्ता, बादाम ।

चटनी-मुरब्बा आदि के फल—आलूबुखारा, आंवला, इमली, करोंदा, कँथ, वापी, (आमपीच) ।

उपर्युक्त वितरण बिल्कुल सीमाबद्ध नहीं हैं क्योंकि बहुत-से फल ऐसे हैं जो ताजे भी खाये जाते हैं और उन्हें सुखाकर भी खाते हैं अथवा उनसे चटनी, अचार, मुरब्बा आदि भी बनाये जाते हैं, जैसे आम। इसी भांति अंजीर की गणना ताजे और सूखे फलों में हो सकती है। जिसकी जिस वर्ग में विशेष उपयोगिता पाई जाती है उसीमें उसे स्थान दिया गया है।

ताजे फल

अंगूर Grapes—*Vitis vinifera*

अंगूर की खेती फ्रांस, स्पेन और इटली में बहुतायत से होती है। धीरे-धीरे अन्य देशों में भी इसकी खेती का विस्तार बढ़ रहा है, भारतवर्ष में आनेवाले सीमाप्रांत और बलोचिस्तान (अब दोनों पाकिस्तान में) की तरफ के अंगूर अच्छे होते हैं और सारे उत्तर भारत में वहीं से इसकी पूर्ति

होती है। दक्षिण में नासिक, पूना, औरंगाबाद आदि स्थानों में भी अंगूर होते हैं।

अंगूर चालीस इंच से अधिक वर्षावाले स्थानों में नहीं होता। उत्तर भारत में अंगूर की एक फसल आती है क्योंकि इनकी वाढ़ कुछ दिनों के लिए रुक जाती है। बंवई की तरफ वाढ़ वरावर होती रहती है। अप्रैल की वाढ़ में अंगूर वरसात में आते हैं। ये मीठे नहीं होते। अक्तूवर (अश्विन-कार्तिक) की वाढ़ में फल मार्च से मई (चैत्र से जेष्ठ) तक आते हैं, वे मीठे होते हैं।

फलों के आकार, रंग, स्वाद, छिलके की मोटाई और वीज की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के अनुसार अंगूर कई तरह के होते हैं, परन्तु साधारणतः हम इन्हें दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—एक विना वीज के और दूसरे वीजवाले।

विना वीज के वहुधा हरे या मोतिया रंग के गोल और छोटे दानेवाले होते हैं। वीजवाले हरे, मोतिया, लाल, काले या वैंगनी रंग के गोल या लंवे दानेवाले पहले की अपेक्षा वड़े होते हैं।

अंगूर का पौधा डाली, दाव-कलम या गूटी से तैयार किया जाता है। इसके लिए एक साल की स्वस्थ टहनी, जिसकी छाल का हरा रंग मिटकर भूरा हो गया हो, काम में लानी चाहिए। डाली वरसात में या वरसात के अन्त में लगानी चाहिए। गूटी वरसात के अन्त में वांधना चाहिए। नर्सरी में पौधों को दीमक से वचाने के लिए फीनाईल में पानी डालकर सींचना चाहिए और पौधों का चालान देवदारू के वक्सों में किया जा सकता है।

जमीन और खाद—इसके लिए दुमट मिट्टी अच्छी होती है। जिस मिट्टी में पानी लगता हो, अंगूर ठीक नहीं होते। गर्मी में चार सौ मन गोवर का खाद और करीव तीन मन हड्डी का चूरा प्रति एकड़ के हिसाव से डालकर जुताई अच्छी तरह करवानी चाहिए। अंगूर के लिए मछली का खाद भी वहुत अच्छा होता है। चार भाग सरसों या एरंडी की खली

में एक भाग हड्डी का चूरा मिला हुआ मिश्रण पौष-माघ में प्रति पौधा सेर-सवा-सेर दे दिया जाय तो वह भी लाभप्रद होता है।

पौधा लगाना—बरसात में या जाड़े के प्रारम्भ में आठ-आठ फुट के अन्तर पर कलमें या पौधे लगाने चाहिए। बंगलौर की तरफ पन्द्रह-बीस फुट और मद्रास में बैंगनी जाति के अंगूर के लिए यह दूरी पचीस-तीस फुट भी रक्खी जाती है। लताओं को वृक्षाश्रयी कुंजों पर चढ़ा देते हैं। लताओं के चढ़ने के लिए कुछ सहारे का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसके लिए बांस की पट्टियां, मचान या तार लगाने होते हैं। उत्तम तो यही है कि पांच-छः फुट ऊंची टट्टियां लगा दी जायं ताकि लता को धूप और हवा अच्छी मिलती रहे और फलों के तोड़ने में भी सहूलियत हो। कहीं-कहीं निर्माणित दूरी पर ईंट-चूने के खम्भे बनवाकर उनमें एक या दो तार लगा दिये जाते हैं और लता तार के सहारे पर चढ़ा दी जाती है। सीमा-प्रान्त की तरफ अंगूर के बागीचों के चारों ओर मिट्टी की ऊंची दीवार बना दी जाती है और लताएं इतनी नीचे मचानों पर चढ़ाई जाती हैं कि घुटनों के बल चलकर फल तोड़ना पड़ता है। बंबई प्रांत में कहीं-कहीं पंगारा (Erythrina indica) नाम का पेड़ अंगूर की लता के साथ लगा दिया जाता है, जिस पर लता चढ़ जाती है। बरसात के पहले पंगारा की छः फुट लम्बी कलमें अंगूर के पेड़ से नौ-दस इंच की दूरी पर लगा दी जाती हैं। अंगूर की जड़ गहरी चली जाती है और इसकी छिछली होती है, इसलिए लता को हानि नहीं पहुंचती।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। जब फल पकने लगे तब पानी नहीं देना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से स्वाद बिगड़ जाता है। जब पौधा लग जाय तो बीच की फुनगी तोड़ देनी चाहिए ताकि नये कोंपल फूट जायं। प्रतिवर्ष फल मिल जाने के पश्चात अथवा जाड़े में जिन टहनियों से फल मिल जायं, उन्हें पांच-छः इंच छोड़कर आगे का शेष भाग काट देना चाहिए। इन छोड़ी हुई टहनियों में से जो नई टहनियां निकलती हैं, उनपर अंगूर बैठते हैं।

जब फल के गुच्छे वैठ जायं तो उनसे आगे एक-दो इंच टहनी छोड़कर बाकी काट देनी चाहिए। ऐसा करने से फलों की बाढ़ अच्छी होती है। फल वैठ जाने पर लता के तने पर तार या सुतली बांध दी जाय तो पत्तों द्वारा जो भोजन तैयार होता है और जिसका कुछ भाग जड़ों के पोषणार्थ नीचे की ओर जाता है, उसमें कुछ रुकावट हो जाती है और उसका उपयोग फलों की वनावट के लिए हो जाता है। फलों का आकार बढ़ जाता है और कुछ मीठे भी विशेष हो जाते हैं। अंगूर को पाले से भी बहुत हानि पहुंचती है, इसलिए हो सके तो पृष्ठ १०२-१०४ में दिये हुए उपचार करने चाहिए।

फल की तैयारी और चालान—कलम लगाने के समय से दो-तीन साल की आयु की होने पर लताएं फलने लगती हैं। अंगूर की आयु सौ वर्ष से अधिक होती है। परंतु चालीस-पचास साल तक अच्छी फसल मिलती रहती है। फूल आने के समय से चार-पांच महीने में फल तैयार होते हैं। एक पेड़ से दस-बारह सेर बढ़िया अंगूर मिल जाते हैं। सीमाप्रांत की तरफ से अंगूर भारत में भाद्रपद और आश्विन में आते हैं। मैदानों में गर्मी में समाप्त होनेवाली फसल अच्छी होती है। बंबई की तरफ चैत्र से जेष्ठ (मार्च से मई) मद्रास में बैशाख-जेष्ठ (अप्रैल-मई) और अश्विन-कार्तिक (सितम्बर-अक्तूबर) मैसूर की तरफ आषाढ़ से पौष (जून से दिसम्बर) और बंगलौर में तो लगभग बारह महीने अंगूर मिलते रहते हैं।

अंगूर का फल बड़ा कोमल होता है। इसलिए छोटी-छोटी टोकरियों में या प्लाईवुड के बक्सों में पांच-छ: सेर के लगभग महीन घास या केले के सूखे पत्तों के साथ भरकर भेजना चाहिए। विशेष सावधानी के लिए एक-एक सेर की टोकरियां बनाकर उन्हें बहुत-सी इकट्ठी रखकर क्रेट में भेज सकते हैं। मद्रास की तरफ मिट्टी के वर्तनों में भी अंगूर भेजते हैं। प्रत्येक गुच्छे में से, छोटी कैंची से, खराब और बहुत छोटे अंगूर काट देने चाहिए। गुच्छों को उस वक्त तोड़ना चाहिए, जबकि वे करीब-करीब पके हों अर्थात् तोड़ने पर तीन-चार रोज बाद उपयोग के योग्य हो जायं।

चुने हुए अंगूर छोटी टोकरियों में रुई में भी भेजे जाते हैं।

(१) सुखानेवाले अंगूर की खास जातियां होती हैं और सुखाने की रीति अनुसार उनमें रंग आता है। सूखे हुए अंगूर तीन प्रकार के होते हैं—किशमिश या द्राक्ष, आवजोश और मुनक्का। किशमिश अफगानिस्तान की तरफ से आती है। इसके अंगूर एक विशेष प्रकार के घरों में सुखाये जाते हैं, जिससे हरा रंग बना रहता है। आवजोश "हैय" जाति के अंगूर सोडा के उबलते हुए पानी[1] में थोड़ी देर डालकर सुखाने से आवजोश बन जाते हैं। जो बिना सोडा के पानी में सुखाते हैं, वे मुनक्का बन जाते हैं। ये अफगानिस्तान और ईरान से भारत में आते हैं।

उपयोग और गुण—ताजे फल वैसे ही खाये जाते हैं। दाख (सूखे अंगूर) औषधि द्राक्षासव और मिठाइयों में डाली जाती है। अंगूर बल-वर्धक, खांसी और बुखार को मिटानेवाले होते हैं। वायुजनित रोग में भी इनका सेवन करना चाहिए। ये दस्तावर और आंखों को हितकारी होते हैं। इनसे भी खून साफ होता है।

अमरूद Guava—*Psidium gujava*

अमरूद मैदानों में सब जगह होते हैं। पहाड़ पर ये नहीं फलते। इनके पेड़ पंद्रह-बीस फुट ऊंचे होते हैं। फल आकार में कई तरह के होते हैं। कोई गोल और कोई लंबे, किसीका छिलका साफ तो किसीका ऊंचा-नीचा, कोई कैथ इतने बड़े तो कोई नीबू से भी छोटे होते हैं। गूदा किसीका लाल तो किसीका सफेद होता है। अमरूद इलाहाबाद और मिर्जापुर के आस-पास के बड़े विख्यात हैं। इलाहाबाद का सफेदा, चित्तिदार और करेला ऐसी तीन जाति के फल अच्छे होते हैं। तीनों का गूदा मीठा, सफेद और कम बीजवाला होता है। संभव है, फल के आकार से एक जाति का नाम करेला पड़ा हो। अमरूद के पौधे बीज से या भेंट-कलम से

---

१. एक भाग सोडा और २५ भाग पानी। तापमान ७०°-७५° तक होना चाहिए।

तैयार किये जाते हैं। कहीं-कहीं दाव-कलम या गूटी से भी तैयार करते हैं। यह क्रिया सरल है और भेंट-कलम से अच्छी रहती है। बीज से उपजाकर इलाहाबाद तथा पूना में जांच की तो ऐसे पेड़ों के फलों में बहुत अन्तर पाया। इसलिए दाव-कलम या गूटी द्वारा तैयार किये हुए कलमी पौधे लगाना उत्तम है। ये क्रियाएं बरसात में होनी चाहिए। भेंट-कलम के लिए बीजू पौधे नर्सरी में तैयार करके गमलों में लगा देने चाहिए। जाड़े में प्राप्त होनेवाले पके फल के बीज सुखाकर राख के साथ बरसात तक भली-भांति रखे जा सकते हैं। इन्हें वर्षा के प्रारम्भ में लगा देना चाहिए।

नर्सरी आठ-दस फुट लंबी-चौड़ी के लिए आठ-दस सेर अच्छा सड़ा हुआ खाद देकर बनानी चाहिए। एकाध महीने[1] में बीज से पौधे निकल आते हैं। इन्हें, ज्यों-ज्यों वे बढ़ते जायं, छांटते जाना चाहिए ताकि निर्बल पौधे हटा दिये जायं और सबल को अपनी बाढ़ के लिए पूरा स्थान मिलता जाय। पौधे से पौधा दो फुट के अंतर पर रखना चाहिए। दो साल की आयु के पौधे खेतों में लगा सकते हैं या उनपर कलमें बांधी जा सकती हैं।

अमरूद के पौधे काफी मजबूत होते हैं, इसलिए टोकरियों में इनका चालान आसानी से किया जा सकता है।

जमीन और खाद—अमरूद के लिए बलुआ दुमट जमीन अच्छी मानी गई है, वैसे ये सब प्रकार की जमीन में हो जाते हैं। पेड़ कठोर होता है। इसलिए यदि थोड़ा-बहुत पानी भी लग जाय तो यह सहन कर लेता है। उसी भांति कुछ सर्दी सहन करने की शक्ति भी इसमें है। गर्मी के दिनों में अच्छी जुताई के पश्चात् पंद्रह से अठारह फुट की दूरी पर तीन फुट व्यास के उतने ही गहरे गढ़े बनवाकर भरते समय उनकी मिट्टी में पचीस-

---

१. "हेज" महोदय अपनी पुस्तक (Fruit Growing in India) में लिखते हैं कि यदि बीज पांच मिनट तक पानी में उबालकर अथवा १५ दिन तक पानी में गलाकर बोये जायं तो अंकुर जल्दी निकलते हैं।

तीस सेर गोवर का खाद और करीव दो सेर हड्डी का चूर्ण मिला देना चाहिए। दो-एक वार वारिश के वाद जव मिट्टी जम जाय तव पौधे लगाने चाहिए। प्रति वर्ष वैशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल-मई) में जड़ें खोलकर गोवर, पत्ते और हड्डी के मिश्रण का खाद लगभग पचीस सेर दे देना चाहिए। मिश्रण में एक शतांश हड्डी ठीक होगी।

पौधा लगाना—वरसात के आरम्भ में या जाड़े के अंत में करीव दो साल की आयु के पौधे लगाना ठीक होता है।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। काट-छांट वहुत लोग करते ही नहीं, परन्तु अच्छे फल प्राप्त करने के लिए काट-छांट अवश्य होनी चाहिए। छोटे पौधे इस तरह वढ़ने दिये जायं कि प्रत्येक धड़ पर तीन-चार शाखाएं और प्रत्येक शाखा पर तीन-चार उप-शाखाओं तक काट-छांट कर दी जाय तो कुछ अधिक फल प्राप्त होते हैं।

फसल की तैयारी और चालान—वीजू पौधे पांच-छः साल में और कलमी तीन-चार साल में फल देना प्रारंभ करते हैं। कच्चे फल पकने पर अंगूरी या सफेद रंग के हो जाते है। अमरूद के पेड़ उत्तर भारत में दो वार फलते हैं। पहली के फूल माघ (फरवरी) में आते हैं। इसे आंवे वहार कहते हैं। दूसरी से फूल आषाढ़ (जून) में आते हैं इसे मृग वहार कहते। आंवे वहार से फल श्रावण से अश्विन तक (जुलाई से सितंवर) और दूसरी मृग वहार से जाड़े में नवम्वर से फरवरी तक मिलते हैं। दक्षिण भारत में अमरूद के पेड़ तीन वार फूलते हैं इससे कहीं-कहीं साल-भर फल मिलते रहते हैं। जहांतक हो जाड़े की फसल ही लेना उत्तम है। जाड़े के अंत में दो-तीन वार सिंचाई करके एकदम पानी वंद कर देने से भी गर्मी में फूल आकर आप ही झड़ जाते हैं। इस रीति से गर्मी की फसल रोकी जा सकती है। यदि गर्मी की ही फसल लेना हो तो खाद माघ में देकर सिंचाई वरावर करते रहना चाहिए। अमरूद के वागीचे से बीस-पचीस साल तक अच्छी आमदनी होती रहती है। वैसे चालीस-पचास साल की आयु तक भी पेड़ कुछ-न-कुछ फल देते रहते हैं। प्रत्येक वीजू

पेड़ पचास-साठ किलो फल प्रति वर्ष मिल जाते हैं। कलमी से उपर्युक्त उपज से दुगनी तिगुनी मिल जाती है।

फलों का चालान बांस की टोकरियों में घास के साथ किया जा सकता है। अमरूद का चालान बहुत दूर तक नहीं होता, क्योंकि एक तो ये बहुत सस्ते बिकते हैं और दूसरे ये अधिक दिनों तक टिकते भी नहीं।

उपयोग और गुण—फल वैसे ही खाये जाते हैं। इनकी चटनी भी बनाई जाती है। चीनी के साथ गूदे की बरफी और जेली (Jelly) भी बनाई जाती है। मलाई और चीनी के साथ गुदा मिला दिया जाय तो अच्छा पदार्थ बन जाता है। कच्चे अमरूद कब्जकारी और पके हुए दस्तावर होते हैं।

अनानास Pine-apple—*Ananassa comosus (sativa)*

भारतवर्ष में बंगाल, असम, मलाबार तट और ब्रह्म प्रदेश तथा लंका में इसकी खेती विशेष होती है। पहाड़ों पर कहीं-कहीं हो जाता है। मैदानों में तरीदार वातावरण में अच्छा हो सकता है। इसके पौधे जड़ के पास से निकले हुए नये पौधे (Suckers) से तैयार किये जाते हैं। पौधों के सिर पर जो पोच (Bulbils) निकलते हैं, उनसे भी पौधे तैयार किये जा सकते हैं। परन्तु ऐसे पौधे देरी से फलते हैं। पौधों का चालान टोकरियों में किया जा सकता है।

जमीन और खाद—खुली हुई दुमट या बलुआ दुमट अम्लवाली मिट्टी इसके लिए अच्छी होती है। गोबर का खाद तीन सौ मन, जिसमें एक शतांश हड्डी-चूर्ण और उतनी ही राख मिली हो, डालना चाहिए और फिर अच्छी जुताई के पश्चात तीन-तीन फुट की दूरी पर नालियां बनवा-कर उनसे निकली हुई मिट्टी से बीच की भूमि ऊंची कर लेनी चाहिए। बरसात के प्रारम्भ में प्रति पौधा एक मुट्ठी सरसों, नीम या अरण्डी की खली दे दी जाय तो फलों की बाढ़ अच्छी होती है। मछली का खाद भी इसके लिए अच्छा माना गया है। कृत्रिम खाद में मन-सवा-मन एमो-नियम सलफेट या सोडियम नाइट्रेट, ढाई मन के लगभग सुपर-फासफेट

और उतना ही पोटेशियम सलफेट प्रति एकड़ के हिसाब से देना ठीक होगा।

पौधे लगाना—उपर्युक्त रीति से तैयार की हुई नालियों के बीच की ऊंची जमीन पर सकर्स दो-दो फुट की दूरी पर चार-पांच इंच गहरे-भाद्रपद-आश्विन (अगस्त-सितम्बर) में लगाने चाहिए। जाईन्ट क्यू जैसी वड़ी जाति के लिए कतारें चार-पांच फुट की दूरी पर और पौधों में तीन-तीन फुट का अन्तर उत्तम होगा। सकर्स ऐसे चुनने चाहिए, जो ताजे और स्वस्थ हों। वहुत मोटे सकर्स नहीं चुनने चाहिए। सकर्स को मुख्य पौधे से अलग करके नीचे के पत्ते छील देना चाहिए। कुछ दिन तक खुली हवा में छोड़कर लगाना अच्छा होता है।

सिंचाई और काट-छांट—पौधे लगाने के समय से आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए और जब फल बैठने लगें तबसे पानी जल्दी-जल्दी देना चाहिए। हर तीसरी-चौथी फसल के वाद जमीन वदल देनी चाहिए। अनानास के पौधों की धूप से काफी हानि पहुंचती है, इसलिए छाया रखने के लिए कतारों में तूवर वो देते हैं। कहीं-कहीं अन्य प्रकार की छाया की भी व्यवस्था करते हैं।

फसल की तैयारी और चालान—रोपने के समय में बारह से पंद्रह महीने में फल मिलने आरम्भ होते हैं और प्रतिवर्ष श्रावण-भाद्रपद (जुलाई-सितम्बर) में फल मिलते रहते हैं। पके हुए फल रंग और सुगंध से पहचाने जाते हैं। जब नीचे का आधा फल कुछ रंग वदलने लगे तब तोड़ना चाहिए। जाईन्ट क्यू जाति की उपज पचास-साठ क्विन्टल से एक सौ क्विन्टल तक हो जाती है। फलों का चालान टोकरियों में किया जा सकता है, क्योंकि ये वड़े शख्त होते हैं। चोरी का भय हो तो बक्सों में भेजना चाहिए।

उपयोग और गुण—ऊपर का मोटा छिलका निकालकर बीच का गूदा खाया जाता है, जो वड़ा स्वादिष्ट, पाचक और वलवर्धक होता है।

अनार, दाड़िम Pomegranate—*Punica granatum*

अनार भारतवर्ष में प्रायः सब जगह होते हैं, परन्तु मसकती या काबुली अनार जैसे मीठे और छोटे बीजवाले होते हैं, वैसे नहीं होते। फिर भी काफी बड़े और साधारण मीठे अनार हो जाते हैं। अहमदाबाद जिले में धौलका के आस-पास के अनार अपने बीज की मिठास तथा नर्मी के लिए विख्यात हैं। वहांपर काबुली अनार लगाये जायं तो बहुत ही कम फलते हैं और मसकती तो फलते ही नहीं। अनार के पौधे बीज, डाली या दाब-क़लम से तैयार किये जाते हैं। बीज और डाली बरसात में और दाब-कलम जाड़े के अन्त में लगानी चाहिए। इसके पौधे मजबूत होते हैं। टोकरियों में भेजे जा सकते हैं।

जमीन और खाद—ये सब प्रकार की जमीन में हो जाते हैं, परन्तु कछार और अधिक चूनेवाली भूमि में अच्छे होते हैं। गर्मी में खेतों की जुताई के पश्चात पंद्रह-पंद्रह फुट के अन्तर पर दो-ढाई फुट गहरे और उतने ही व्यास के गढ़े बनाकर उसकी मिट्टी में आधा मन के लगभग गोबर-खाद और दो सेर के लगभग हड्डी का चूर्ण और यदि अम्लदार मिट्टी हो तो उसमें एक सेर के करीब बुझाया हुआ चूना मिला देना चाहिए। पेड़ों में प्रति वर्ष पौष-माघ में आठ-द। सेर खाद दिया जा सके तो अच्छा है।

पौधे लगाना—उपर्युक्त रीति से तैयार किये हुए गढ़ों में दो साल की आयु के पौधे बरसात में लगाने चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। काट-छांट जाड़े के आरम्भ से सूखी तथा घनी और उन टहनियों की, जिससे फल मिल जायं, करनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—रोपने के समय से चार-पांच साल में पौधे फल देने योग्य होते हैं और चालीस-पचास साल की आयु तक फलते रहते हैं। मध्य बरसात में फल आना आरंभ होकर दो-तीन महीने तक आते रहते हैं। बहुत-से अनार पकने पर फट जाते हैं। कुछ सिर्फ अपना रंग बदलते

हैं, हरे से लाल या कुछ सफेदी लिये हुए हो जाते हैं। पैदावार औसत दर्जे ५०-६० अच्छे फल प्रति पेड़ ली जा सकती है। फलों का चालान टोकरी, चटाई और क्रेट या वक्सों में किया जा सकता है।

उपयोग और गुण—रस चूसकर बीज फेंक दिये जाते हैं। अनार का शरवत भी बनाया जाता है जो गर्मी में ठंडक के लिए औषधि के काम में लाया जाता है। पेड़ की छाल चमड़ा रंगने के काम में लाई जाती है। फल की पंखुड़ियां जो गिर जाती हैं, रंगने के काम में लाई जाती हैं।

अनार ठंडा, त्रिदोपनाशक; हृदय-रोग, दाह, ज्वर और कंठ-रोग में लाभप्रद होता है। यह कृमि-नाशक भी होता है। छिलका पेचिश में काम में लाया जाता है।

आड़ू, सतालू—Peach—*Prunus persica*

वढ़िया आड़ू पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत की तरफ होते हैं। वहां इसकी सफेद, लाल और पीली ऐसी तीन जातियां पायी जाती हैं। ये रंग विशेषत: गूदे के होते हैं। इसका फल खट्टा-मीठा होता है और बीच में वादाम-जैसा बीज होता है। छिलका ऐसा रोएदार होता है कि मखमल-जैसा मालूम होता है। पौधे छल्ला-काट चश्मा चढ़ाकर (Ring budding) तैयार किये जाते हैं। वह क्रिया चैत्र-वैशाख (मार्च-अप्रैल) में होनी चाहिए। बीजू पौधे तैयार करने के लिए बीज नर्सरी में आठ-दस इंच की दूरी पर ताजे ही लगा देने चाहिए। ये वहुत देरी से अंकुर फेंकते हैं। वरसात में लगाये हुए पौधे चैत्र में जाकर चश्मा चढ़ाने योग्य होते हैं। जिस डाली पर चश्मा चढ़ाया जाय वह करीव पाव इंच मोटी होनी चाहिए। पौधों का चालान क्रेट में होना चाहिए।

जमीन और खाद—वलुआ दुमट जमीन में ये अच्छे होते हैं। भारी मटियार इनके लिए ठीक नहीं होती। गढ़े तीन फुट व्यास के और उतने ही गहरे वीस-वीस फुट की दूरी पर गर्मी में वनवाकर पच्चीस-तीस सेर के क़रीव गोवर, सड़े पत्ते और हड्डी का चूर्ण नीचे की दो फुट मिट्टी में देना चाहिए। हड्डी करीव दो सेर काफी होगी। जाड़े में पत्ते झड़ने

लगें तब जड़ें खोलकर दस-पन्द्रह दिन बाद खाद देकर मिट्टी भर देनी चाहिए।

पौधा लगाना—बरसात में या जाड़े के अन्त में लगाना ठीक है। इसके पेड़ बागीचे की सड़कों के किनारे पर भी लगाये जा सकते हैं।

सिंचाई और कांट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। माघ में काट-छांट के पश्चात खाद देते ही सिंचाई अच्छी होनी चाहिए। फलों की बाढ़ के समय अधिक और पकने के समय कम पानी दिया जाय तो फल अच्छे स्वादिष्ट होते हैं। काट-छांट ऐसी करनी चाहिए कि जिसमें नई टहनियां आठ-दस इंच लंबी ही रह जायं। पत्ते झड़ने से पौधों को विश्राम मिलता है, इसलिए यदि न झड़ें तो सिंचाई बंद करके जड़ें खोलकर झड़वाना चाहिए। इससे फल अच्छे आते हैं। कभी-कभी डालियां सूखने लग जाती हैं और गोंद-जैसा पदार्थ निकलता रहता है। यदि ऐसा हो तो पानी बंद कर देना चाहिए।

फसल की तैयारी—पेड़ लगाने के समय से तीसरे साल से फल देना शुरू होकर सात-आठ साल तक अच्छे फल देते रहते हैं। प्रतिवर्ष ज्येष्ठ में फल मिलते रहते हैं। पकने पर फल हरे रंग से सफेद और गुलाबी रंग के हो जाते हैं। बरसात आते ही फल में एक प्रकार का कीट लग जाता है और फल बिगड़ जाते हैं। सीमाप्रांत-जैसे सूखे स्थानों में भाद्रपद से कार्तिक तक फल मिलते हैं। प्रति पेड़ से एक मन के लगभग फल मिल जाते हैं। फल जब कुछ कच्चे हों तभी तोड़ लेना चाहिए। दूर बाजार तक पहुंचने तक पक जाते हैं। फलों का चालान छोटी टोकरियों में होना चाहिए।

उपयोग और गुण—फल वैसे ही खाये जाते हैं। वे कृमिनाशक, पेट के दर्द को मिटानेवाले और हल्के दस्तावर होते हैं। बीज से तेल निकाला जाता है, जो रोशनी के काम में आता है।

आम—Mango—*Mangifera indica*

आम मैदान में सभी जगह होते हैं। चूंकि ये उष्णता-प्रिय हैं, दो

हजार फुट से अधिक उंचे स्थानों पर अच्छे नहीं फलते। वैसे चार हजार फुट की ऊंचाई तक आम पाये जाते हैं। आम की कई जातियां हैं और एक ही जाति के आम के पृथक्-पृथक् स्थान में पृथक्-पृथक् नाम भी हैं। जलवायु और भूमि के हेर-फेर से स्वाद में थोड़ा-वहुत अन्तर पड़ जाता है और आम एक ही जाति के होने पर भी दूसरी जाति के मान लिये जाते हैं। कुछ मुख्य-मुख्य जाति के नाम आगे दिये हैं, परन्तु यहां पर हम आम को दो भागों में विभाजित करते हैं—एक वीजू अर्थात् बीज से तैयार किये हुए पेड़ के फल और दूसरे कलमी। वीजू आम बहुधा छोटे और पतले रसवाले होते हैं। ये चूसकर खाये जाते हैं। इनकी गुठली रेसेदार होती है। कलमी की अपेक्षा बीजू आम के पेड़ बड़े[1] होते हैं। इनके विपरीत कलमी आम अधिकतर रेशारहित, बड़े और गाढ़े रसवाले होते हैं। ये वहुधा काटकर खाये जाते हैं। कलमी पौधे भेट-कलम[2] से वहुधा बरसात

---

१. पंजाब में एक आम का पेड़ रंधावा महोदय ने ऐसा देखा, जिसके धड़ का घेरा ३२ फुट, शाखाएं ७०-८० फुट ऊंची और फैलाव के नीचे का क्षेत्रफल २७०० वर्ग गज था। इससे ४५० मन तक आम प्राप्त होते थे—Indian Farming. (June 1949) p. 257

२. कहीं-कहीं चश्मा चढ़ाकर भी पौधे तैयार करते हैं। ऐसा करने से पौधे जल्दी तैयार होते हैं और वहुत-से पौधे एक साथ तैयार किये जा सकते हैं। सफलता के विचार से अभी तक तो भेंट-कलम-रीति ही अच्छी जंचती है। पूना गनेशखिड से गांधी महोदय लिखते हैं कि चश्मे में ६० शतांश सफलता होती है। Indian Farming Vol. 7, p. 125. (1944). चश्मे में एक लाभ यह भी है कि किसी अच्छे पेड़ की डाली दूर से लाकर स्थानीय पौधे पर चश्मा चढ़ा सकते हैं. चश्मा चढ़ाने का उत्तम समय जुलाई-अगस्त है। बीजू पौधे की छाल के नीचे कली को दबाकर बांधना चाहिए। पूरी तरह से ढंककर मोम या कपड़े की धजी से बांध दे। तीन सप्ताह बाद पट्टा खोल दे। यदि कली हरी

में तैयार किये जाते हैं। परन्तु जो कलमें अन्तिम वरसात में वांधी जाती हैं, वे अच्छी होती हैं। कहीं-कहीं जाड़े के अन्त में भी बांधते हैं। पौधों का चालान क्रेट में होना चाहिए।

जमीन और खाद—पानी नहीं लगनेवाली सब प्रकार की मिट्टी में आम हो जाते हैं। अच्छी जुताई के पश्चात गर्मी में कमजोर भूमि में पचीस-तीस और अच्छी उपजाऊ में तीस-पैंतीस फुट की दूरी पर गढ़े वनवाने चाहिए। वीजू पेड़ के लिए चालीस फुट का अन्तर भी अधिक नहीं होगा। गढ़े तीन फुट व्यास के उतने ही गहरे होने चाहिए। मिट्टी को कुछ दिन धूप खिलाने के वाद भरते समय पहले भरी जानेवाली दो-तिहाई मिट्टी में दो सेर हड्डी का चूर्ण, पांच सेर लकड़ी की राख और करीव एक मन गोवर-पत्तों का मिश्रण मिला देना चाहिए और वाद में वची हुई एक-तिहाई मिट्टी भर देनी चाहिए। जब एक-दो वार पानी गिर जाय और गढ़े में भरी हुई मिट्टी ठीक से वैठ जाय तो पौधे लगा सकते हैं। आम को वहुधा एक वार लगा देने के पश्चात खाद नहीं देते, ऐसा नहीं करना चाहिए। कम-से-कम पहले पांच-छः[1] साल तक प्रति वर्ष देना ही चाहिए। वाद में प्रतिवर्ष नहीं तो जिस साल फल आने की वहार हो, उस साल अवश्य देना चाहिए। जहां पानी दिया जाय वहां जाड़े के

और ताजी दीखे तो समझना वह लग गई। फिर पट्टी खोलकर दूसरी पट्टी ऐसी बांधे कि कली का मुंह खुला रहे ताकि वह फूट निकले। बीजू पौधे पर से बीस-पचीस दिन में वह कली कोंपलें फेंक देती है।

१. एलन महोदय लिखते हैं कि पहले वर्ष में पांच सेर गोवर के खाद से शुरू करके प्रति वर्ष ढाई सेर बढ़ाते हुए दस साल तक बढ़ाते रहना चाहिए। इसके साथ-साथ डेढ़ सेर नीम की खली और डेढ़ सेर सुपर फासफेट या हड्डी का चूरा और आधा सेर पोटेशियम सलफेट भी देना चाहिए अगर बाढ़ अच्छी हो तो नीम की खली नहीं देना चाहिए। R. G. Allan, 1935, Modern Mango Cultivation.

अन्त में फूल आने के पहले गोवर, पत्ता, राख आदि हड्डी-मिश्रित खाद देना चाहिए। जहां पानी की असुविधा हो वहां वरसात के प्रारम्भ में देना चाहिए। आम वहुधा हर दूसरे साल अधिक फलते हैं। एक साल कोंपलें अधिक फूटती हैं और एक साल फल अधिक आते हैं। इसलिए जहां वरसात में खाद देना हो वहां कोंपलें फूटनेवाले साल में देना चाहिए। खली या सोडियम नाइट्रेड का खाद देना हो तो फूल आने लगे तव देना चाहिए। खली पांच शतांश नाइट्रोजन-वाली पांच-छः मन प्रति एकड़ के हिसाव से और सोडियम नाइट्रेड मन-सवा-मन के हिसाव से दिया जा सकता है। नीम की खली मिल सके तो अच्छी होती है। खासकर छोटे पौधों के लिए उनका उपयोग करना चाहिए ताकि दीमक हानि न पहुंचा सके।

पौधा लगाना—पौधा वीजू हो या कलमी, दो-ढाई साल की आयु का हो जाय तो लगा देना चाहिए। अधिक आयु के पेड़ ठीक नहीं होते। वीजू पौधे रोपने या कलम के लिए नर्सरी में तैयार किये जाते हैं। नर्सरी की क्यारियां आठ-दस फुट लंबी-चौड़ी वनाकर आठ-दस इंच तक उनकी मिट्टी गोड़ देनी चाहिए। गोड़ते समय प्रति एक सौ वर्गफुट के लिए लगभग दस-वारह सेर सड़े हुए गोवर का अथवा बकरी या भेड़ों की मींगनी (गोवर) का खाद दे देना चाहिए। वाद में पानी देकर बीज बो सकते हैं। आम की गुठलियों की अंकुरन शक्ति वीस-तीस दिन में नष्ट हो जाती है। बीज करीव दो-दो फुट की दूरी पर लगाना चाहिए। कोइम्बटूर[1] (मद्रास) के प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि वीज वोते समय उनका मुंह ऊपर की ओर रखा जाय तो पौधा सीधा निकलता है। जब पौधे छः महीने के हो जायं तो उन्हें गमले में वदल देना चाहिए। वीज ताजे ही अच्छे होते हैं। पुराने होने से उपज शक्ति नष्ट हो जाती है। नये कोंपल पर लगे

---

१. K. C Naik, 1949, South Indian Fruits and Their Culture, P. 145.

हुए और डाल पके फलों के बीज उत्तम होते हैं। कुछ लोगों का ऐसा अनुभव है कि ऐसे बीज से पैदा होनेवाले पेड़ में गुण-परिवर्तन नहीं होता,[१] अर्थात् जिस पेड़ के बीज होते हैं उसीके गुण नये पौधे में पाये जाते हैं। पौधे लगाने का उत्तम समय बरसात या जाड़े का अंत है। आम को सर्दी से बड़ी जल्दी हानि पहुंचती है, इसलिए मध्य जाड़े में उसे नहीं लगाना चाहिए। हवा से पौधे टूट न जायं, इसलिए सहारे का प्रबंध भी करना चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—पौधे यदि जाड़े के अंत में लगाये जायं तो लगाने के साथ ही पानी देना चाहिए और गर्मी में बराबर देते रहना चाहिए। पूर्ण बाढ़ पाये हुए पेड़ों को मौर (फूल) आने लगे उस समय से आवश्यकतानुसार जल देना ठीक होता है। काट-छांट सूखी या व्याधिग्रस्त टहनियों की होनी चाहिए। छोटे पौधों की काट-छांट आकार के लिए भी की जाती है। कलमी पौधों पर बांध के नीचे से कोंपल निकल आयं तो उन्हें तोड़ देना बहुत जरूरी है। आम के पेड़ पर लाल फूलवाला एक पौधा बांझी जम जाता है, उसे तुरंत काट देना चाहिए। वह आम के पेड़ से रस चूसकर अपना पोषण करता है। यदि आम की बाढ़ अच्छी हो और फल न आते हों अथवा कम आते हों तो पेड़ों के धड़ पर उनकी छाल छीली जाती है। छीलन की चौड़ाई आधा इंच होनी चाहिए। एक कटाव धड़ की आधी गोलाई तक और दूसरा उससे लगभग छः इंच ऊपर दूसरी तरफ की आधी गोलाई तक हो। यह क्रिया मध्य बरसात में होनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—दस-बारह साल की आयु के होने

---

१. आम एक भ्रूणीय और बहुभ्रूणीय ऐसे दो प्रकार के होते हैं और भारतवर्ष में अधिकांश एक भ्रूणीय होते हैं। एक भ्रूणीय में गर्भाधान शंकर क्रिया द्वारा होता है। इससे नये पेड़ के फलों में सब पैतृक गुण स्थिर नहीं रहते, कुछ परिवर्तन हो जाता है। बहुभ्रूणीय जाति में कुछ बीजू के पौधों में गुण-परिवर्तन नहीं होता। Fruits culture in India 1963 P. 68

पर बीजू और पांच-छः साल की आयु के कलमी पौधे फल देना प्रारंभ करते हैं। कलमी आम करीब पचास-साठ साल तक और बीजू लगभग सौ साल तक अच्छे फलते रहते हैं। व्यवसायिक दृष्टि से कलमी आम दस साल से लेकर चालीस-पचास साल की आयु तक अच्छे समझना चाहिए। कुछ ही आम ऐसे होते हैं, जो प्रति वर्ष फलते हैं, वरना अधिकतर ऐसे ही होते हैं जो हर दूसरे साल फलते हैं।[1] आम के बौर आने के बाद से लगभग चार महींने में पके फल मिलने आरम्भ हो जाते हैं। उत्तर भारत में आम ज्येष्ठ-आषाढ़ (मई-जून) में पकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही पेड़ पर कुछ डालियां एक साल फलती हैं, तो कुछ दूसरे साल। लगातार दो-तीन साल तक अच्छी फसल बहुत ही कम पेड़ों में आती है। विहार और उत्तर प्रदेश में जाति-अनुसार ज्येष्ठ से प्रारंभ होकर भाद्रपद (मई से अगस्त-सितम्बर) तक फल मिलते रहते हैं। कलमी आमों में मिठुवा बंबई, कृष्णभोग, माल्दा (वनारसी लंगड़ा), सिपिया, शुकुल, सेंदूरिया और भदैया क्रमानुसार पकते रहते हैं। बंबई की तरफ कलमी आम हाफूज (Alphonse) और पायरी मई-जून में मिलते हैं। दक्षिण भारत में चैत्र-वैशाख से शुरू होकर आषाढ़-श्रावण तक मिलते हैं। कुछ आम ऐसे होते हैं, जो बारह-मासिये कहलाते हैं।

---

१. सहारनपुर में १८८६ से १९१२ तक का ब्यौरा देखा गया तो मालूम हुआ कि ९ साल फसल साधारण रही, ३ साल साधारण से अच्छी और १५ साल साधारण से कम। आम के मौर में पूर्ण और अपूर्ण दो प्रकार के फूल होते हैं। फल पूर्ण फूल में ही आते हैं। पूर्ण फूल बहुत कम होते हैं। सन् १९३९ में नायक महोदय ने गिनती की तो नीमल जाति के पेड़ में १९.४७% और आलमपुर जाति में ३.४१% ही पूर्ण फूल आये।

Agril J. India 1913 : 9 : 140-149

२. चूंकि पेड़ों के बीच में काफी जमीन खाली रहती है, इसलिए उसमें कम ऊंचाईवाली सागभाजी या मूंगफली जैसी फसल ले लेनी चाहिए।

इनमें मौर से लेकर छोटे-बड़े फल वारह महीने मिलते रहते हैं, परंतु ये वहुत कम फलते हैं। दक्षिण भारत में आरकाट और सलीम के आम अच्छे होते हैं। वहां के विख्यात आमों के नाम दिलपसंद, तोतापरी, काला पहाड़, नवाब पसंद, जहांगीर, शकरपारा आदि हैं। वाल्टेयर के आस-पास राजमान्य, नल कल्याण, स्वर्ण रेखा आदि नाम के आम अच्छे माने गए हैं। वीजू आम की फसल वहुधा महीने-डेढ़ महीने तक रहती है। जव आम के पेड़ पर से दो-एक आम पके हुए गिरें तव समझना चाहिए कि आम उतारने (तोड़ने) योग्य हो गये। पृष्ठ ११२ में बताई हुई रीतियों को ध्यान में रखकर वड़ी सावधानी से फल तोड़ने चाहिए। यदि बाहर भेजना हो तो बक्स में वंद करके भेजना ही उत्तम होता है। निकटवर्ती वाजार में गाड़ियों में भेजे जा सकते हैं। यदि मालगाड़ी का पूरा डिब्बा भरकर आम का चालान करना हो तो टोकरियों में हो सकता है। हजारों रुपये के आमों का चालान उत्तर विहार से ऐसे ही किया जाता है। करीव डेढ़ फुट व्यास की बीच में आठ-दस इंच गहरी टोकरी ऊपर तक भरकर उसपर दूसरी टोकरी उलटी रख दी जाती है। फिर दोनों को बांधकर डिब्बों में डाल देते हैं। यदि पकाना हो तो कलमी आम वैसे ही मचान पर रख दिये जायं तो धीरे-धीरे पक जाते हैं। जल्दी पकाने के लिए आम को घास या पुआल (Rice-straw) में दबाकर पका सकते हैं। ऐसा करने से वातावरण की गर्मी से अधिक गर्मी पहुँचती है। इससे फल जल्दी पक जाते हैं। यदि जल्दी नहीं पकाना हो तो पेड़ पर ही रहने देने चाहिए। वहां न रक्खे जा सके तो ठंडे वातावरणवाले घर में या वरफ से ठंडे रखे जानेवाले कमरों में रखना ठीक होता है।

पकने पर अधिकांश आमों का रंग पीला, कुछका लाल और पीला और कुछका सेंदूरिया हो जाता है। माल्दा और कृष्णभोग-जैसे कुछ आम ऐसे भी हैं, जो पकने पर भी हरे ही रहते हैं। मद्रास का तोतापरी पीला हो जाता है। वंबई का हाफूज मुंह की ओर सेंदूरिया और बाकी

पीला हो जाता है।

आम के पेड़ से फलों की पैदावार का अनुमान करना बहुत कठिन है। स्थान, जल-वायु, पेड़ की आयु और जाति इत्यादि पर यह अनुमान निर्भर है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि बीजू की अपेक्षा कलमी कम फलते हैं। आठ-दस साल की आयु के कलमी आम से अच्छी मौसम में पांचसौ से दो हजार तक फल मिल सकते हैं। बीजू पेड़ कोई-कोई ऐसे भी देखे गए हैं जिनसे दस-दस हजार तक आम मिल जाते हैं।

उपयोग और गुण—बीजू आम चूसकर और कलमी काटकर खाये जाते हैं। रस निकालकर चीनी और चिरौंजी के साथ खाया जाय तो बड़ा स्वादिष्ट हो जाता है। घृत और चीनी के साथ आम की बर्फी भी बनाई जाती है। सिर्फ आम का रस जमाना हो तो आगर-आगर (सामुद्रिक वनस्पति से प्राप्त किया हुआ पदार्थ) से अच्छा जम जाता है। सवा सेर रस में करीब दो तोला आगर-आगर (Agar agar) डालना पड़ता है। आगर-आगर को घोलने के लिए थोड़े-से गरम पानी में आधे घंटे तक उबालना चाहिए। फिर रस को थोड़ा गरम करके (चालीस शतांश से ऊपर गर्मी आ जाय इतना ही गरम करना चाहिए)। उसमें आगर-आगर मिला दिया जाय और बर्फी जमा दी जाय तो अच्छी जम जाती है। आम के रस को सुखाकर भी रखते हैं, जिसे आमोठ या आम का पापड़ कहते हैं। कच्चे से चटनी, शरबत, अचार, मुरब्बा, आमचूर आदि बनाते हैं। कुछ लोग गुठली के बीच का गूदा भूंजकर खाते हैं। पत्तों से मंडप सजाये जाते हैं।

पका आम बल-वर्द्धक, दस्तावर और तृप्तिकारक होता है। दूध के साथ रस का सेवन किया जाय तो शरीर पुष्ट होता है और संग्रहणी में भी लाभदायक होता है। इसमें खाद्योज 'सी'[1] काफी मात्रा में होता है।

---

१. Dr. Solemon Zilvia और कुमारी Edith Perry ने लीस्टर इंस्टीट्यूट में हाफूज आम की जांच की तो पता लगा कि उसमें सेब से छःगुना अधिक खाद्योज 'सी' रहता है।

कच्चा आम खट्टा और पित्तकारक होता है। आग में भूंजे हुए आम का शरवत लू लग जाने पर फायदा करता है। वीज का गूदा कब्जकारी होता है, इसलिए दस्त रोकने के लिए काम में लाया जाता है। मौर (फूल) खांसी, क़फ़, पित्त और रुधिर-विकार में काम में लाये जाते हैं। नये पत्ते में भी फूल जैसा गुण होता है।

एवोकेडो—Avocado—*Persea gratissinra*

इसकी जन्मभूमि दक्षिण अमरीका में मैक्सिको मानी गई है। भारत में १९४१ में एवोकेडो का आगमन हुआ और गनेशखिड फल अनुसंधान वगीचा पूना में इसे स्थान मिला। इस जाति के फल बैंगनी रंग के होते हैं, जिनमें सत्रह शतांश स्नेह रहता है। इसमें ए. बी. सी. जी विटामिन्स भी रहते हैं। इसका उपयोग सलाद जैसे किया जाता है। इसका फल नाक जैसा होता है। लेकिन उससे वड़ा होता है। वज़न में लगभग चार सौ ग्राम होता है। छिलका चिकना सेन्दूरी रंग का लीची के छिलके जैसे जल्दी टूटने और छिलनेवाला होता है।

पौधा वीज़ से तैयार किया जाता है और उन्हें पचीस-तीस फुट की दूरी पर लगाने चाहिए। इनमें माघ (जनवरी) में फूल और आषाड़-श्रावण (जून-जुलाई) में फल आते हैं। बैंगनी जाति के एवोकेडो की उपज दो सौ से तीन सौ फल प्रति पौधा ली जा सकती है। ऐसी उपज दस-बारह साल के पेड़ों से आती है।

ककड़ी या खीरा—Cucumber—*Cucumis sativus*

यह एक वार्षिक फल है। इसके पेड़ नहीं होते—लता होती है। फल छः इंच से डेढ़ फुट लंबे और एक इंच से तीन-चार इंच मोटे होते हैं। खीरा भी प्रायः उन जगहों में पाया जाता है जहांपर मक्का की फसल होती है। उत्तम खीरे मध्यप्रदेश में रतलाम और सैलाने के निकटवर्ती स्थानों में होते हैं, जहां से वंबई तक चालान होता है। ये ककड़ियां सिर की तरफ कुछ मोटी होती हैं और गूदा हरा होता है। छिलका सफेद या हरे पीले रंग का होता है। खीरे की लताएं वीज से तैयार की जाती हैं।

जमीन और खाद—इसके लिए बलुवा दुमट या दुमट जमीन अच्छी होती है। गरमी में डेढ़ सौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से गोबर का खाद देकर जुताई खूब अच्छी करनी चाहिए।

बोना—चैत्र (मार्च) से आषाढ़ (जून) तक कभी भी बो सकते हैं परंतु बरसात के प्रारंभ में ही बोई जाती है। इसे फलों के वृक्षों के बीच की भूमि में भी लगा सकते हैं। पंक्तियां छः-छः फुट के अंतर पर और पौधे चार-चार फुट के अंतर पर रहने चाहिए। इसलिए इसी अंदाज से बीज बोने चाहिए। एक एकड़ के लिए आठ-दस छटाँक बीज की आवश्यकता होती है। इसकी एक जाति ऐसी भी होती है, जिसके बीज माघ में बोये जाते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—बरसात से पहले लगाई जानेवाली फसल को सींचना पड़ता है, बरसातवाली को नहीं सींचना पड़ता। काट-छांट तो नहीं करनी पड़ती, परन्तु बरसाती फसल के लिए मचान बनाना चाहिए, जिसमें फलों की बाढ़ अच्छी हो। जाड़े में बोई जानेवाली के लिए सूखी टहनियां इधर-उधर खेतों में डाल देने से लता उनपर चढ़ जाती है। ऐसा करने से जमीन पर पड़े रहनेवाले खीरे, जो कभी-कभी बिगड़ जाते हैं, बिगड़ने नहीं पाते।

फसल की तैयारी—आषाढ़ में बोई जानेवाली से अश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) और माघवाली से बैसाख-जेठ (अप्रैल-मई) में फल मिलते हैं। जब ककड़ियां काफी बड़ी हो जायं और कुछ रंग बदलती हुई नजर आवें तब तोड़नी चाहिए। दूसरी फसल के लिए बीज, अच्छे फलों को खूब सुखाकर, राख या नेफ्थलीन की गोलियों के साथ रख सकते हैं।

उपयोग और गुण—छोटी और पूर्ण बाढ़ पाई हुई दोनों की ककड़ियां वैसे ही खाई जाती हैं। इनकी तरकारियां भी बनाई जा सकती हैं। बीज के गूदे से मिठाई भी बनाते हैं। ककड़ियां ठंडी और स्वादिष्ट होती हैं। रक्तपित्त के विकारों को शांत करती है।

कटहल, फणस—Jack fruit—*Artocarpus* (*integrifolia*) *heterophyllus*—

इसकी खेती बंगाल और विहार में विशेष रूप से होती है। गुजरात और दक्षिण भारत में भी कुछ अंश तक होती है। अन्य प्रांतों में कहीं-कहीं दो-एक पेड़ वगीचों में पाये जाते हैं। कटहल का पेड़ पचीस-तीस फुट ऊंचा होता है; परन्तु फल धड़ और मोटी-मोटी शाखाओं पर आते हैं। पुराने पेड़ों में कभी-कभी जमीन के अन्दर भी फल हो जाते हैं, जिनकी उपस्थिति भूमि फटने से जानी जाती है।

कटहल के पेड़ की ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती है, फल बड़े-बड़े आते हैं और शाखा से धड़ और जमीन में फलना शुरू होते हैं। एक-एक पेड़ से पच्चीस-तीस से लगाकर सौ-डेढ़ सौ अच्छे फल मिल जाते हैं, वैसे पाँच सौ तक की संख्या में भी फल पाये गए हैं। साधारण कटहल आठ-दस सेर का होता है, वैसे कोई वीस-पचीस सेर के भी हो जाते हैं। पौधे बीज से तैयार किये जाते हैं। बीज बरसात में लगाने चाहिए। कुछ लोगों का अनुमान है कि नई शाख पर के कटहल के बीज लगाये जायं तो उनके जो पेड़ होते हैं वे जल्दी फलते हैं। इनके पौधे भेट-कलम से भी तैयार किये जा सकते हैं। भेट-कलम इसीके पौधे के रूप का जंगली कटहल होता है उसके साथ बांधते हैं।

जमीन और खाद—दुमट कछार भूमि इसके लिए अच्छी होती है। इसके खेत-के-खेत कहीं नहीं लगाये जाते। दस एकड़वाले बगीचे में दो-एक पेड़ लगा दिये जा सकते हैं। आम की भांति गढ़े तैयार कर लगा देना चाहिए। एक वार लग जाने के वाद में कभी-कभी खाद भी आश्विन-कार्तिक में दे देना चाहिए।

पौधे लगाना—बरसात में लगाये जाते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—पहले दो-एक साल पानी का प्रबंध होना चाहिए, बाद में नहीं मिलने से काम चल जाता है। जब फल आने लगें उस वक्त हो सके तो पानी देना लाभप्रद होगा। काट-छांट सूखी टहनियों

की होनी चाहिए या जब पेड़ नहीं फलता हो तो काट-छांट पूरी कर देने से फलने लग जाता है।

फसल की तैयारी और चालान—लगाने के समय से सात-आठ साल और कहीं-कहीं इससे भी अधिक समय के बाद पेड़ फलता है और प्रति वर्ष वैशाख-जेष्ठ (अप्रैल-मई) में अधिक फल प्राप्त होते हैं, वैसे श्रावण तक भी फल मिलते रहते हैं। इसके फल के चालान में किसी तरह का परिश्रम नहीं होता। फल वैसे ही तोड़कर भेज सकते हैं। फल पर पानेवाले के पते का लेबल चिपका दिया जाता है या डंठल से लेबल बांध दिया जाता है। ज्यादा भेजना होता है तो गाड़ियों में भरकर या माल के डिब्बे में वैसे ही डालकर भेज सकते हैं। पके फल रंग और सुगंध से पहचाने जाते हैं।

उपयोग और गुण—कच्चे फल की और पके हुए फल के बीज की तरकारी बनाई जाती है। पके फल का अंदरूनी भाग, जिसे कोआ या गूदा कहते हैं, खाया जाता है। यह चिकना और मीठा होता है। कोए को सुखाकर आटा भी बनाया जाता है, जो फलाहार में उपयोगी होता है। कुछ स्थानों में लोग भर-पेट भोजन भी इसीका कर लेते हैं। पत्ते की पत्तलें बनाई जाती हैं। लकड़ी बक्स, आलमारी इत्यादि बनाने के लिए काम में लाई जाती हैं। कटहल भोजनोपरांत खाया जाय तो लाभदायक होता है। ये पीने की तम्बाकू बनाने के काम में भी बहुत लाये जाते हैं।

कमरख—Kamarakh—*Averrhoa carambola*

कमरख के फल तीन-चार इंच लंबे और पांच धारीवाले होते हैं। पेड़ पंद्रह-बीस फुट की ऊंचाई के होते हैं। वे पहाड़ों पर नहीं होते, मैदानों में होते हैं,। कमरख दो जाति के होते हैं—एक खट्टे और दूसरे मीठे।

पौधे बीज से तैयार किये जाते हैं। बीज ताजे ही पौष-माघ (दिसंबर-जनवरी) में बोने चाहिए। पौधों का चालान टोकरियों में किया जा सकता है।

जमीन और खाद—ये सब प्रकार की मिट्टी में हो जाते हैं। दो फुट व्यास के उतने ही गहरे गढ़े बनवाकर उनकी मिट्टी में आधे मन के लगभग हड्डी-मिश्रित या गोबर का खाद मिला देना चाहिए। गढ़ों में पंद्रह फुट का अंतर काफी होता है। प्रति वर्ष जाड़े में काट-छांट के बाद खाद देना चाहिए।

पौधे लगाना—बरसात में पौधे लगाये जा सकते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। काट-छांट जाड़े में जब फल ले लिये जायं तब करनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—छ:-सात साल की आयुवाले पौधे फल देना प्रारंभ करते हैं और प्रतिवर्ष आश्विन-कार्तिक में फल आते हैं। फल दूर नहीं भेजे जा सकते—निकटवर्ती बाजार में टोकरियों में भेज सकते हैं।

उपयोग और गुण—कुछ लोग फलों को वैसे ही खा जाते हैं, परंतु बहुधा चीनी के साथ इनका शरबत बनाया जाता है, जो बड़ा ठंडा होता है। इसका मुरब्बा भी बनाया जाता है। अचार भी बड़ा स्वादिष्ट होता है।

कमरख कफ और बादीनाशक है। ये शीतल और ग्राही होते हैं। फल के रस से कपड़ों का दाग जल्दी छूटता है।

केला (सब्जीवाला) Plantain—*Musa sapientum*

केला (खानेवाला) Banana—*Musa paradisiaca*

केले भारतवर्ष में प्राय: सब जगह होते हैं, परंतु गरम और तरीवाला वातावरण इनके लिए अच्छा होता है। वर्षा जहां चालीस इंच से अधिक होती है वहां केले अच्छे होते हैं। केले दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिनके कच्चे फल तरकारी के लिए अच्छे होते हैं। यदि तरकारीवाले केले पकाये जायं तो वे स्वादिष्ट नहीं होते और यदि दूसरे केले की तरकारी बनाई जाय तो वह भी अच्छी नहीं होती। दोनों ही जातियों में कई उप-जातियां हैं, जिन्हें स्थानानुसार भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। मालभोग, चीनीचंपा, सोनकेला, राजेला, रसावल इत्यादि केले की गणना अच्छे केलों में है। केले के पौधे सकर्स से तैयार किये जाते हैं, जो केले के

थंभ की जड़ के पास से निकलते हैं। पौधों का चालान वैसे ही पांच-सात पौधों को एक साथ बांधकर किया जा सकता है।

जमीन और खाद—केले बलुआ को छोड़कर सब जमीन में हो जाते हैं। जमीन की गहरी जुताई के पश्चात् जाति-अनुसार आठ-दस फुट के अंतर पर एक फुट गहरे और उतने ही व्यास के गढ़े बनवाकर उनकी मिट्टी में गोबर और पत्ते का खाद करीब दस-बारह सेर, हड्डी का चूर्ण एक सेर, और दो-तीन सेर राख डालनी चाहिए। वामन केली के लिए छः फुट का अंतर भी काफी होगा। प्रत्येक स्थान पर प्रति वर्ष, बरसात के प्रारंभ में आधा सेर सुपरफासफेट या हड्डी का चूर्ण, पावभर एमोनियम सलफेट या एक सेर खाली और एकाध टोकरी राख का डाला जाना भी उत्तम होगा।

पौधे लगाना—उपर्युक्त रीति से तैयार किये हुए गढ़ों में उत्तर भारत में बरसात में केले के सकर्स[1] लगाने चाहिए, दक्षिण भारत में सितम्बर से दिसम्बर तक कभी भी लगा सकते हैं। जबतक ये बाढ़ पाकर फल देने योग्य होते हैं, तबतक इनकी जड़ के निकट दूसरे पौधे निकल आते हैं और फल आने पर जब थंभ काट दिये जाते हैं, तो नये पौधे उनका स्थान ले लेते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। जिन थंभों से फल प्राप्त हो जायं उन्हें काटकर फेंक देना चाहिए; क्योंकि वे फिर नहीं फलते और फले हुए थंभ के पास दो पौधे से अधिक हों तो वे उखाड़ देने चाहिए। उन दो में से एक पौधा बड़े पेड़ की आधी ऊंचाई का और दूसरा छोटा ही होना चाहिए। ऐसे पौधे जमीन की सतह पर से निकले हुए नहीं होने चाहिए, बल्कि जमीन के अंदर से निकले हुए होने चाहिए। अधिक पौधे रहने से फलनेवाले पेड़ को पूरी खुराक नहीं मिलती।

---

१. सकर्स लगभग तीन इंच व्यास के फुट-डेढ़ फुट ऊंचे और स्वस्थ होने चाहिए।

इसमें फल छोटे हो जाते हैं और पकते भी देरी से हैं। जो खुराक फलों की वनावट के लिए जानी चाहिए, उसे नये पौधे ही ले लेते हैं। जव फल के गुच्छे वन जायं तो बढ़ती हुई फूलवाली डंडी को तोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से जितने फल रखे जायंगे वे अच्छे वनेंगे। कभी-कभी अधिक धूप से फल फट जाते हैं। यदि ऐसा होता दिखे तो फलों को पत्तों से वांध देना चाहिए, ताकि कड़ी धूप से वच जायं।

जिन केलों की घड़ें वड़ी-वड़ी होती हैं, उनमें सहारे की भी आवश्यकता होती है। दो वासों को कैंची नुमा वनाकर घड़ के नीचे लगा सकते हैं।

फलों की तैयारी और चालान—अच्छी जमीन और तरीवाला वातावरण हुआ तो रोपने के समय से एक साल में फल प्राप्त हो जाते हैं, नहीं तो डेढ़-दो साल में तो फल आ ही जाते हैं। एक थंभ एक ही वार फलता है परंतु पास में जो पौधे निकलते हैं, वे तैयार हो जाते हैं। इस रीति से नये थंभ तैयार होते रहते हैं। एक खेत में पांच-छः साल तक फल ले लेने के वाद भूमि वदल देनी चाहिए। थंभ के वीच में जो फूल की डंडी निकलती है उसमें फल आते हैं। डंडी और फल दोनों मिलकर घड़ कहलाते हैं। प्रति एकड़ करीव तीन सौ घड़ प्रति वर्ष मिल जाती हैं। थोडी-वहुत फसल साल-भर मिलती रहती है। जव घड़ में दो-एक केले पीले पड़ जायं तव काटकर रख दी जाय तो दो-चार दिन में सव केले पक जाते हैं। व्यवसायी लोग जल्दी पकाने के विचार से जमीन में अथवा मिट्टी में केले के सूखे पत्तों के साथ-साथ रखकर कुछ धुआं देते हैं, जिससे गरमी पहुंचती है और केले की सारी घड़ एक साथ तैयार हो जाती है। जो केले वाहर भेजे जायं, तोड़ते समय यदि घड़ के कटे हुए भाग पर मोम लगा दिया जाय तो फल अधिक दिनों तक अच्छे वने रहते हैं। उनके छिलके जल्दी काले नहीं पड़ते और वे घड़ से जल्दी-जल्दी गिरते भी नहीं। वंवई प्रांतीय कृषि-विभाग ने यह भी वतलाया है कि लगभग आधा सेर मोम एक सौ घड़ों के लिए काफी

होता है। राजेली नाम की जाति के केले सुखाए भी जाते हैं।

उपयोग और गुण—केले के थंभ से मंडप सजाए जाते हैं। इनसे सन भी मिलता है, जिससे रस्सियां और कपड़े वनाते हैं। कहीं-कहीं थंभ की राख से कपड़े भी धोए जाते हैं। पत्तों का उपयोग पत्तलों के लिए किया जाता है और उनसे बीड़ी भी बनाई जाती है। कहीं-कहीं ये पशुओं को भी खिलाए जाते हैं। फूल, फल और थंभ के बीच का सफ़ेद भाग तरकारी के काम में लाया जाता है। कच्चे केले का चूर्ण फलाहार के काम में लाते हैं। केले की जाति के अनुसार २०% से २५% तक चूर्ण मिल जाता है। चूर्ण तैयार करने की सरल रीति यह होगी कि चार-पांच मिनट के लिए फलों को गरम पानी में छोड़ दो। ऐसा करने से छिलका जल्दी छूट जाता है। बाद में बांस के तेज पतले टुकड़े से गूदे के टुकड़े बनाकर सुखा लेना चाहिए। गूदे को लोहे के चाकू से काटने से चूर्ण काला हो जाता है। इसलिए बांस का टुकड़ा या ऐसा चाकू, जिसमें केले काले न पड़ें, काम में लाना चाहिए। यदि केले के टुकड़े काले पड़ने लगें तो गंधक की धूनी दे देनी चाहिए। पके हुए केले वैसे ही या दूध, दही और चीनी के साथ पकवान बनाकर काम में लाए जाते हैं। केले का सिरका भी बनाया जा सकता है। पके केले भी छीलकर सुखाए जा सकते हैं। जिस कमरे में सुखाए जायं उसका तापमान १२५° से १५०° होना चाहिए।

कच्चे केले के आटे की रोटी से वायु-विकार (Dyspepsia) दूर होते हैं। पक्का केला पाचक, शीतल और पुष्टिकारक होता है। नेत्र-रोग में इसका सेवन लाभप्रद होता है। केले के फूल की तरकारी कृमि-नाशक लेकिन चिकनी और भारी होता है।

खजूर—अरबी व देशी—Dates—*Phoenix dactylifera*
खजूर देशी—*Phoenix sylvestris*

पहले प्रकार के खजूर की खेती अरबस्तान में बहुत होती है। खजूर के लिए सूखा और गरम वातावरण अच्छा होता है। बरसात भी पांच-सात इंच से अधिक नहीं होनी चाहिए। सिंध और बलोचिस्तान (पाकि-

स्तान) में करीब-करीब वैसा ही वातावरण है, सो वहां पर भी ये हो जाते हैं। अमरीकावालों ने कोलोरेडो के रेगिस्तान में खजूर लगाना इसी शताब्दी के प्रारंभ में शुरू किया और बड़े पैमाने पर खेती बढ़ा रहे हैं। इसके पेड़ सत्तर-अस्सी फुट से लेकर सौ फुट की ऊंचाई तक के होते हैं। इनमें नर-पेड़ और मादा-पेड़ अलग-अलग होते हैं। फल मीठे, रसीले और अच्छे गूदेवाले होते हैं। इनके पेड़ सकर्स (पेड़ की जड़ के पास से निकलने-वाले पौधे) से तैयार किये जाते हैं। पौधों का चालान टोकरियों में हो सकता है।

दूसरी जाति का खजूर भारतवर्ष में सब जगह पाया जाता है। इसके पेड़ पचीस-तीस फुट ऊंचे होते हैं। इनमें सकर्स नहीं होते। इनके पौधे बीज से तैयार किये जाते हैं, जिन्हें ताजे ही बरसात में बो देना चाहिए। इनका गूदा बहुत पतला होता है, इसलिए फल के लिए इन्हें कोई नहीं लगाता। ये जंगल में अपने-आप हो जाते हैं।

जमीन और खाद—अरबी के लिए बलुवा जमीन ठीक होती है। देशी सब प्रकार की मिट्टी में हो जाता है। अरबी के पेड़ बीस-पचीस फुट की दूरी पर लगाए जाते हैं। देशी के लिए आठ-दस फुट का अंतर काफी होता है। अरबी के लिए दो-ढाई फुट व्यास के उतने ही गहरे गढ़े बनवाकर उनकी मिट्टी में करीब बीस-पचीस सेर गोबर का खाद, दो सेर हड्डी का चूर्ण और थोड़ा नमक या शोरा मिला देना चाहिए। पेड़ लगा देने के बाद बीच की भूमि में खाद दिया जाता है। पेड़ की जड़ें खोली नहीं जातीं, बल्कि उनपर मिट्टी चढ़ाई जाती है।

पौधे लगाना—उपर्युक्त रीति से तैयार किये हुए गढ़ों में बरसात में पौधे लगाने चाहिए। जो सकर्स[1] लगाये जायं उन्हें तीन-चार साल की

---

१. एक पेड़ में १०-१५ सकर्स हो जाते हैं। ये सकर्स पेड़ की १५ से २० वर्ष तक की आयु में ही होते हैं, बाद में नहीं होते। वैसे पेड़ पांचसौ वर्ष तक की आयु तक फल देते रहते हैं। ('विज्ञान' सितंबर १९४३)

आयु के होने पर पेड़ से पृथक् करके लगाना चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—पहले कुछ साल तक गर्मी में जल्दी-जल्दी पानी देना पड़ता है। बाद में आवश्यकतानुसार देना चाहिए। यदि सकर्स ज्यादा हों तो वे हटा देने चाहिए और पुराने पत्ते तथा फलों की सूखी डंडियां भी हटा देनी चाहिए, ताकि नई के लिए जगह मिल जाय। अच्छे बड़े फल प्राप्त करना हो तो कुछ फलों को निकाल देना चाहिए।

फल की तैयारी और चालान—पौधे लगाने के समय से सात-आठ साल की आयु के पेड़ अच्छे फल देना प्रारम्भ करते हैं, लेकिन पंद्रह-बीस साल की आयु के पेड़ अच्छे फल देते हैं और लगभग सत्तर-अस्सी वर्ष तक फल मिलते रहते हैं। इसके पेड़ दोसौ वर्ष तक भी फलते रहते हैं, ऐसा कुछ लोगों का अनुमान है। फाल्गुन में नर-पेड़ों में फूल खिलते हैं, जिनमें कीट को आकर्षित करने के लिए सुगंधित मीठा रस रहता है। आकर्षित कीट द्वारा केसर मादा-फूल तक पहुंचाई जाती है। फल अच्छे बैठें, इसलिए बहुधा नर-फूल के खिलने के पहले पेड़ से हत्थे (Spathe) हटाकर रख लिये जाते हैं और जब मादा-फूल खिलते हैं तब उनके पास पेड़ों पर लगा दिये जाते हैं। प्रत्येक सौ मादा-पेड़ पीछे एक नर-पेड़ अवश्य होना चाहिए। फल ज्येष्ठ-आषाढ़ से आश्विन तक मिलते रहते हैं और प्रत्येक पेड़ में डेढ़ मन से दो मन फल प्राप्त हो जाते हैं। देशी खजूर के फल ज्येष्ठ-आषाढ़ में मिलते हैं।

खजूर का चालान छोटे बक्सों में या चटाई के बोरों में हो सकता है। खजूर लाल और काले दो रंग के होते हैं। काले का बीज छोटा होता है और फल लाल की अपेक्षा अधिक मीठा होता है।

उपयोग और गुण—ताजे फल वैसे ही खाये जाते हैं। इनसे रायता भी बनाया जाता है। सूखे फल, जिन्हें खारक, छोहारा या खजूर कहते हैं, वैसे ही खाए जाते हैं। इनसे आचार, रायता आदि भी बनाते हैं। ये औषधि के लिए भी काम में लाए जाते हैं। बीज पशुओं को खिलाए जाते हैं।

जहां खजूर होते है वहां कच्चे और अधपके फल एक रात के लिए मिट्टी के वर्तन में बंद करके रखे जाते हैं और वाद में खाए जाते हैं। कभी कभी नमक के पानी में कुछ देर के लिए छोड़कर भी खाते हैं।

देशी खजूर के फल भी गरीव लोग खाते हैं। इनके पत्तों और छड़ियों से पंखे, चटाइयां और छोटी-छोटी थैलियां बनाई जातीं हैं। छड़ियों से टोकरियां वनाते हैं। पत्ते सहित छड़ियों से झाड़ू भी वनाए जाते हैं। पत्ते पशुओं को भी खिलाए जाते हैं। पेड़ से पाट का काम लिया जाता है। छोटी-मोटी पानी की नालियां भी इनसे वनाई जाती है। पेड़ के सिर के पास छेद करके रस निकाला जाता है। उसकी ताड़ी (एक प्रकार की शराब) वनाई जाती है। बंगाल तथा अन्य प्रदेशों में खजूर के रस से गुड़ भी वनाया जाता है।

खजूर शीतल, हृदय को हितकारी और पुष्टिकारक होता है। खांसी, दमा, क्षयरोग आदि में इसका सेवन गुणदायक माना गया है।

खरबूजा—Melon—*Cucumis melo*

वे पानी के निकट नदी-नाले की वालू पर ही हो सकते हैं, इसलिए बगीचे के पास, जहां ऐसी जमीन हो, इन्हें लगा देना चाहिए। खरवूजे के स्वाद पर भूमि का वड़ा असर पड़ता है। भूमि वदलने से स्वाद भी वदल जाता है। भारतवर्ष में लखनऊ के खरवूजे अच्छे माने गए हैं। ये चपटे और छोटे होते हैं, परंतु खुशवूदार और मीठे होते हैं। वेलाताल इत्यादि स्थानों के खरवूजे भी काफी मीठे होते हैं। इनका वजन सेर-डेढ़-सेर से ढाई सेर तक होता है। खरवूजे कच्छ के भी वड़े होते हैं।

जमीन और खाद—नदी-नाले के बीच ज़मीन में डेढ़ फुट चौड़ी और आठ इंच गहरी नालियां वनवाकर उनमें गोवर और पत्तों का सड़ा हुआ खाद लगभग डेढ़सौ मन मिला देना चाहिए। नालियों में तीन फुट का अन्तर रखना ठीक होता है।

बोना—माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) में नालियों में इनके बीज

तीन-तीन फुट की दूरी पर बोने चाहिए। प्रति एकड़ डेढ़ सेर बीज की आवश्यकता होती है। जहांतक हो बीज ताजे ही लगाने चाहिए। दो-तीन साल के बीज लगाने से फल जल्दी आते हैं, परन्तु पौधे स्वस्थ नहीं होते।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। जब फल पकने लगें तब बहुत कम पानी देना चाहिए। जब पौधों के तीन-चार पत्ते आ जायं तब बीच का कोंपल तोड़ दिया जाय तो ठीक होगा, क्योंकि ऐसा करने से नये कोंपल निकलते हैं, जिनके तीसरे चौथे पत्ते पर फल आ जाते हैं। यदि न आयं तो इनकी फुनकी (Growing point) भी तोड़ देनी चाहिए। ऐसा करने से फल अच्छे बन जाते हैं। फल बैठ जाने पर प्रत्येक उपलता पर दो-तीन फल छोड़कर आगे की फुनगी तोड़ देनी चाहिए। प्रति पौधा आठ-दस फल से अधिक नहीं रहने देने चाहिए, क्योंकि अधिक फल रखने से फलों की बाढ़ ठीक नहीं होती।

फसल की तैयारी और चालान—बोने के समय से दो-ढाई महीने में फल पकना शुरू हो जाते हैं। जब फलों का रंग पीला या सफेद हो जाय और उनमें से मीठी सुगन्ध निकलने लगे तब तोड़ने चाहिए। फलों का चालान हंडाकार टोकरियों में अच्छा होता है।

उपयोग और गुण—कच्चे फलों की तरकारी बनाई जाती है। पके हुए फल वैसे ही या चीनी के साथ खाये जाते हैं। बीज से मिठाई बनाई जाती है। उन्हें तलकर नमकीन बनाकर भी खाते हैं। खरबूजा दस्तावर और बलदायक होता है। बीज़ ठंडे, बलदायक और अधिक पेशाब लाने-वाले होते हैं।

खिरनी—Khirni—*Mimusops manilkara (hexandra)*

यह पहाड़ों पर नहीं होती। मैदानों में होती है और जंगलों में पाई जाती है। चूंकि फल स्वादिष्ट होते हैं, अतः इच्छा होने से एक-दो पेड़ बगीचे में लगा दिये जायं तो उत्तम होगा। पौधे तैयार करने के लिए ज्येष्ठ में ताजे बीज बोये जाते हैं।

जमीन और खाद—यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाती है। इनके खेत-के-खेत तो लगाये नहीं जाते। दो-एक पेड़ कहीं लगाना हो तो पेड़ों के लगाने की साधारण रीति के अनुसार लगा सकते हैं।

पौधे लगाना—पौधे लगाने का उत्तम समय बरसात है।

सिंचाई और काट-छांट—पहले एक-दो साल तक गरमी में पानी देना चाहिए। बाद में देने की आवश्यकता नहीं। काट-छांट सूखी टह-नियों की होनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—बीज लगाने के समय से दस-बारह वर्ष की आयु के होने पर पेड़ फल देते हैं। प्रतिवर्ष अगहन-पौष में फल-कर गरमी में मिलते हैं। कहीं-कहीं फाल्गुन-चैत्र में भी फल मिलते हैं। फल जब पीले हो जायं तब तोड़ने चाहिए।

उपयोग और गुण—ताजे फल वैसे ही खाये जाते हैं। उन्हें सुखा-कर भी खाते हैं। खिरनी बलदायक, शीतल और भारी होती है। क्षय-रोग में इसका सेवन अच्छा माना गया है।

गुलाब जामुन—Rose apple—*Eugenia syzygium (jambos)*

इसके लिए उष्ण वातावरण अच्छा होता है, इसलिए यह मैदानों में ही फैलता है। फल खट्टे-मीठे छोटी सेब की आकार के गुलाबी रंग के होते हैं। पौधे तैयार करने के लिए मध्य बरसात में बीज लगा देने चाहिए। दाब-कलम से भी पौधे तैयार हो सकते हैं।

जमीन अर खाद—यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाता है, परन्तु दुमट या कछार भूमि में अच्छा होता है। गढ़े पंद्रह-पंद्रह फुट की दूरी पर गरमी में बनवाकर उनकी मिट्टी में आधा मन के लगभग खाद मिला देना चाहिए। गढ़े डेढ़-दो-फुट गहरे होने चाहिए।

पौधे लगाना—पौधे लगाने का उत्तम समय बरसात है।

फसल की तैयारी और चालान—इसका पेड़ बहुत देरी से तैयार होता है। चौदह-पंद्रह साल की आयु का होने पर फलता है। प्रति वर्ष

माघ-फाल्गुन में फूल और ज्येष्ठ-आषाढ़ (मई-जून) में फल प्राप्त होते हैं। फलों का चालान छोटे वक्सों में किया जा सकता है।

उपयोग और गुण—फल वैसे ही खाये जाते हैं। इनका मुरब्बा भी अच्छा बनता है। इसके फल कफ और खांसी को हरनेवाले होते हैं।

चकोतरा—pomelo, *Citrus grandis*
Grape fruit, *Citrus Paradisi (decumana)*—

यह नींबू या संतरे की जाति का सबसे बड़ा फल है। इसका छिलका भी बहुत मोटा होता है। एक जाति इसकी मीठी होती है, जिसे पोमेली कहते हैं। इसके अंदर का गूदा सफेद या लाल रंग का होता है और रस भरी कलियां खुली हुई अर्थात अलग-अलग रहतीं हैं। अमरीका से आई हुई जाति के फल कुछ खट्टे और कड़वे होते हैं जिसे 'ग्रेप-फ्रूट' कहते हैं। इसके पौधे, बीज, दाब-कलम, भेंट-कलम या चश्मा चढ़ाकर ही तैयार करना चाहिए, क्योंकि दाब-कलमवाला इतना अधिक नहीं फलता, जितना चश्मेवाला फलता है। चश्मेवाले पेड़ के फल भी बड़े होते हैं। चश्मा बरसात में या बरसात के अंत में चढ़ाना चाहिए।

जमीन और खाद—जिस प्रकार संतरे के लिए जमीन तैयार की जाती है उसी भांति इसके लिए भी करनी चाहिए। चूंकि इसके पेड़ का फैलाव संतरे के पेड़ से अधिक होता है, गढ़े बीस-बीस फुट की दूरी पर होने चाहिए। प्रतिवर्ष बरसात के प्रारंम्भ में खाद दे देना चाहिए।

पौधे लगाना—पौधे लगाने का उत्तम समय बरसात है।

सिचाई और काट-छांट—आवश्यकतानुसार सिंचाई और काट-छांट सूखी तथा व्याधिग्रस्त टहनियों की होनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—लगाने के समय से बीजू पौधे आठ-दस साल में और कलमी पांच-छः साल में फलने लग जाते हैं। फलों का चालान संतरे की भांति हो सकता है। पोमेको से प्रति पेड़ एक सौ फल मिल जाते हैं। ग्रेप-फ्रूट से लगभग पांच सौ फल मिल जाते हैं।

उपयोग और गुण—इनका रस चूसकर खाया जाता है और रस से शरवत भी बनाते हैं। स्वास्थ्य के विचार से विलायत में ग्रेपफ्रूट की खपत बहुत ज्यादा है। भारतवर्ष में भी धीरे-धीरे इसका प्रचार बढ़ रहा है। चकोतरा ठंडक पहुंचानेवाला होता है। इससे हाजमा अच्छा होता है। यह हिचकी को रोकता है और खांसी में हितकारी माना गया है।

पंजाब में फल जनवरी (माघ) से मार्च (चैत्र) तक और दक्षिण बम्बई में भाद्रपद (सितम्बर) कार्तिक (नवम्बर) तक फल मिलते हैं।

जामुन—jamun *Syzygium (Cuminii)*

जामुन दो प्रकार के होते हैं। एक बड़े और दूसरे छोटे। बड़े को कहीं-कहीं राय जामुन भी कहते हैं। जामुन पहाड़ों पर नहीं होते, मैदानों में सब जगह पाये जाते हैं। पौधे तैयार करने के लिए ताजे बीज आषाढ़ में बोने चाहिए। इसे भेंट कलम या चश्मा चढ़ाकर भी तैयार कर सकते हैं। सात साल के पौधे पर चश्मा चढ़ाना चाहिए।

जमीन और खाद—जामुन सब प्रकार की मिट्टी में हो जाते हैं। इनके खेत नहीं बोये जाते। ये जंगलों में पाये जाते हैं। बड़े जामुन के दो-एक पेड़ बगीचे में लगा दिये जायं तो ठीक होगा। अन्य फलों के पेड़ों के लिए जिस प्रकार गढ़े तैयार किये जाते हैं इनके लिए भी उसी तरह तैयार करने चाहिए।

पौधे लगाना—बीज ही लगाना हो तो बरसात के आरम्भ में और यदि तैयार पौधा लगाना हो तो बरसात में कभी भी लगाया जा सकता है। इस पेड़ को अपने फैलाव के लिए पचीस-तीस फुट व्यास के घेरे की जमीन देनी चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—पहले दो साल तक पानी देना चाहिए, फिर देने की जरूरत नहीं। फल आने लगें उस वक्त से कुछ पानी दिया जा सके तो फल अच्छे आते हैं। काट-छांट सूखी टहनियों की होनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—दस-बारह साल की आयु के होने पर पेड़ फल देते हैं और प्रति वर्ष वर्षा के प्रारंभ में एक माह तक फल मिलते हैं। फल पकने पर ही तोड़े जाते हैं या गिराये जाते हैं। जब गिराते हैं तो पत्तों पर या कपड़े की चद्दर पर गिराते हैं। बढ़िया जामुन के फलों को तो तोड़ना ही चाहिए। गिराने से वे फूट जाते हैं। फलों का चालान निकटवर्ती बाजार में टोकरियों में हो सकता है।

उपयोग और गुण—फल वैसे ही खाये जाते हैं। इनका सिरका भी बनाया जाता है। फल दाहनाशक और पेट के दर्द को मिटानेवाला होता है। सिरका पित्तनाशक होता है। मसूड़े फूलने पर छाल के काढ़े से कुल्ले किये जायं तो लाभ होता है।

तरबूज, कलिंगड़ा, हिंदवाना—Water melon—*Citrullus vulgaris*

तरबूज की मांग गर्मी के दिनों में विशेष होती है। मैदानों में प्रायः सब जगह ये पाये जाते हैं। पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के तरबूज बड़े स्वादिष्ट होते हैं। तरबूज का व्यास करीब नौ-दस इंच का होता है। बंगाल की तरफ कहीं-कहीं बहुत बड़े तरबूज मिलते हैं, जिनका व्यास एक फुट का और लंबाई करीब दो फुट की होती है।

जमीन और खाद—खरबूजे की भांति ये बलुआ मिट्टी में अच्छे होते हैं, लेकिन यदि बलुआ-दुमट या दुमट में लगाये जायं तो उसमें भी हो जाते हैं। जब नदी की बालू में लगाया जाय तो नालियां पांच-पांच फुट की दूरी पर होनी चाहिए और खाद नालियों की बालू में मिलाना चाहिए। जब साधारण खेत में लगाना हो तो दोसौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से खाद देकर जमीन की जुताई खूब गहरी होनी चाहिए। अंतिम जुताई के बाद पांच-पांच फुट की दूरी पर नालियां बना लेनी चाहिए।

बोना—माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) में नालियों में चार-चार फुट की दूरी पर इसके बीज बोने चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई साधारण होनी चाहिए। जब फल पकने लगें तब इतनी ही होनी चाहिए जिसमें लता मुर्झाने न पाये। इसमें भी प्रत्येक लता में सात-आठ फल से अधिक नहीं आने देना चाहिए और जिन फलों से बीज लेना हो उनकी संख्या प्रति पौधा तीन चार ही होना ठीक है।

फसल की तैयारी और चालान—वैशाख-जेष्ठ तक फल पककर तैयार होते हैं। फल तोड़ने पर यदि वह डंठल से जल्दी छूट जाय और जोड़ की जगह साफ गोल चिह्न हो तो समझना चाहिए कि फल पक गया है। कुछ अनुभव से पके फल पहचाने जा सकते हैं। जिन फलों को बाहर भेजना हो उन्हें डंठल-समेत भेजना चाहिए। फल टोकरियों में आसानी से भेजेजा सकते हैं। दूसरी फसल के लिए बीज को गूदे से छुड़ाकर अच्छी तरह से धोकर रखना चाहिए। सूखे हुए बीज बंद बर्तन में रखे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—फलों के अंदर का लाल गूदा खाया जाता है और सफेद भाग की तरकारी बनाई जाती है। तरबूज ठंडा, पाचक और दस्तावर होता है।

तुरंत, बिजौरा Citron—*Citrus medica linneus (Proper)*

इसकी गणना नींबू की जाति में है। फल लंबा, मोटे और खुरदरे छिलकेवाला होता है। इसका छिलका बड़ा सुगंधित होता है जिससे मार्मलेड (एक तरह का मुरब्बा) बनाते हैं। पौधा, बीज, गूटी या दाब-कलम से तैयार किया जाता है। जब बीज लगाना हो तो ताजे ही लगाने चाहिए। गूटी या दाब-कलम बरसात के अंत में लगाई जा सकती है।

इसकी खेती ठीक संतरे की खेती के समान होनी चाहिए। पेड़ छः साल की आयु के होने पर फल देना प्रारंभ करते हैं और प्रतिवर्ष भाद्रपद से कार्तिक (अगस्त से नवंबर) तक फल देते हैं।

उपयोग और गुण—फल का रस बहुत खट्टा होता है। यह हृदय के लिए हितकारी माना गया है। छिलके का ऊपरी भाग, जो बड़ा सुगंधित होता है, चीनी के साथ मार्मलेड बनाने के काम में लाया जाता है।

तेंदू—Persimmon—*Diospyros Kaki*

यह पहाड़ों पर और मैदानों में दोनों जगह हो जाता है। फल छोटे सेव के आकार का मीठा होता है और पेड़ चालीस-पचास फुट ऊंचे हो जाते हैं। पौधा बीज से या भेट-कलम से तैयार किया जाता है। कलम बरसात में इसीके पौधे के साथ बांधी जाती है। पौधों का चालान बक्सों में होना चाहिए।

जमीन और खाद—हर किस्म की उपजाऊ मिट्टी में हो जाता है। गढ़े बीस फुट की दूरी पर दो-ढाई फुट गहरे और तीन फुट व्यास के होने चाहिए। इन्हें गर्मी में तैयार कर लेना चाहिए। प्रत्येक गढ़े की मिट्टी में एक मन गोबर का खाद और दो-ढाई सेर हड्डी का चूर्ण डालना लाभप्रद होगा। जब फलने लगें उस वक्त से प्रतिवर्ष पौष-माघ में जड़ें खोदकर खाद दे देना चाहिए।

पौधा लगाना—बरसात या जाड़े में पौधे लगाये जा सकते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—खाद देने के पश्चात गर्मी में पानी देते रहना चाहिए। जब फल पकने लगें तब कम पानी देना चाहिए। सूखी टहनियों की काट-छांट, पौष-माघ में, जब पत्ते झड़ जाय उस वक्त, करके दो सप्ताह के लिए जड़ें भी खोलना ठीक होगा।

फसल की तैयारी और चालान—चार-पांच साल की आयु के पेड़ फल देते हैं। प्रतिवर्ष कार्तिक-अगहन (अक्तूबर-नवंबर) में फल मिलते हैं। फलों का चालान छोटी-छोटी टोकरियों में होना चाहिए।

उपयोग—जब फल मुलायम होते हैं तब खाये जाते हैं। इनका मुरब्बा भी बनाया जाता है।

दिलपसंद—Dilpasand—*Citrullus var Fistulous*

यह भी तरबूजे की जाति का एक फल है, जिसकी खेती सिंध की तरफ बहुत होती है। कच्चे फल हरे और पके हुए नारंगी रंग के होते हैं। कच्चे फलों पर कुछ रोएं भी रहते हैं। वजन में ये फल करीब आधा सेर के होते हैं।

जमीन और खाद—बलुआ जमीन में इसकी खेती अच्छी होती है। खाद करीब सवासौ मन प्रति एकड़ के हिसाब से डालना चाहिए। जमीन की जुताई पांच-छः इंच गहरी होनी चाहिए।

बोना—सिंध और गुजरात में यह गर्मी में बोया जाता है। बीज इस तरह से लगाये जाते हैं कि पौधों में करीब तीन फुट का अंतर रहता है। एक एकड़ के लिए करीब एक सेर बीज की आवश्यकता होती है।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। काट-छांट ऐसी होती चाहिए कि प्रत्येक लता पर सात-आठ फल रहें।

फसल की तैयारी और चालान—बोने के समय से डेढ़-दो महीने में कच्चे और तीन-चार महीने में पके हुए फल आ जाते हैं।

उपयोग—कच्चे फलों की तरकारी बनाई जाती है। पके हुए फल वैसे ही खाये जाते हैं।

नासपाती, नाक—Pear—*Pyrus pyrifolia* (*communis*)

इसके पेड़ शरीफे के पेड़ जैसे होते हैं। नासपाती पहाड़ पर अच्छी होती है। कुछ जातियां ऐसी भी हैं जो मैदानों में हो जाती हैं परंतु फल उतने अच्छे नहीं होते। विदेश से लाई हुई जातियां पहाड़ पर ही हो सकती हैं। देश-रंजित या देशी जातियों के पौधे कलम (डाली) से तैयार किये जाते हैं। कलम अगहन-पौष (नवंबर-दिसंबर) में लगाई जाती है। विदेशी जातियों में पौधे चश्मा (रिंग या ट्यूब्यूलर ग्राफ्टिंग) चढ़ाकर तैयार किये जाते हैं। चश्मा आड़ू, नासपाती, बीही या सेब के पौधे पर चढ़ाया जाता है। यह क्रिया माघ (जनवरी) में होनी चाहिए। पौधों का चालान क्रेट में करना ठीक होता है।

जमीन और खाद—आड़ू, या नासपाती पर तैयार किये हुए पौधों के लिए बलुआ-दुमट जमीन उत्तम मानी गई है। दूसरे पौधों पर हो तो दुमट जमीन ठीक होगी। जाड़े में बीस-बीस फुट की दूरी पर गढ़े तैयार करवाने चाहिए। बलुआ जमीन में दो फुट व्यास के और उतने ही गहरे और दुमट में तीन फुट गहरे और उतने ही व्यास के होने चाहिए। जब

मिट्टी तीन-चार सप्ताह तक खुली रह जाय तो उसमें एक मन खाद और दो सेर हड्डी का चूरा मिला देना चाहिए। खाद नीचे की दो फुट मिट्टी में मिलना ठीक होता है। जब फल आने लगें उस समय से प्रति वर्ष पौष-माघ में जड़ खोदकर खाद देना चाहिए । खली या नाइट्रेट और हड्डी या सुपरफासफेट का खाद भी नासपाती के लिए लाभप्रद होगा। प्रत्येक पौधे पीछे करीब पाव-भर नाइट्रोजन पहुंचे इतनी खली या आध पाव नाइट्रोजन इतना सोडियम नाइट्रेट और दो सेर के करीब हड्डी का चूर्ण या सुपरफास्फेट डालना चाहिए।

पौधे लगाना—पौष-माघ (दिसंबर-जनवरी) में जब पौधों की बाढ़ रुकी हुई होती है उस समय इन्हें लगाना चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई साधारण होनी चाहिए। जब फल बैठते हैं उस समय विशेष और पकने लगें उस समय कम पानी दिया जाय तो फल आकार में बड़े और स्वाद में अच्छे होते हैं। काट-छांट, पत्ते झड़ें उस समय, मध्य जाड़े में होनी चाहिए। सूखी टहनियों को निकालने के अलावा लंबी-लंबी शाखाओं का एक-तिहाई भाग काट दिया जाता है।

फसल की तैयारी और चालान—छः-सात साल में पौधे फल देने योग्य हो जाते हैं। प्रति वर्ष फल बरसात-भर (जून से सितंबर) मिलते रहते हैं। फलों का चालान टोकरियों में हो सकता है, परंतु इनमें न करके पतले प्लाइवुड के बक्स में या चटाई और क्रेट में किया जाय तो उत्तम होगा। बहुधा फल को पतले रंगीन कागज में लपेटकर रखा जाता है।

उपयोग और गुण—पक्के फल वैसे ही छीलकर खाये जाते हैं। कुछ जातियां ऐसी भी हैं, जिनके फल से तरकारी बनाई जाती है। नासपाती हल्की, वीर्यवर्धक, पित्त और कफनाशक होती है।

नीबू कागजी-Lime-*Citrus aurantifolia (medica acida)*

नीबू-जमेरी—Lemon—*citrus limonia (limonum)*

नीबू कई प्रकार के होते हैं जिनके नाम भी अलग-अलग हैं। आकार में नारियल से लेकर सुपारी के बराबर जाति-अनुसार होते हैं। जिन

नीबू की खेती विशेष रूप से की जाती है वे संतरे से छोटे होते हैं और दो भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—कागज़ी और जमेरी कागज़ी के पत्तों की डंडी फैली हुई होती है जौर फूल सफेद होते हैं। जमेरी के फूल कुछ बैंगनी लाली लिये हुए होते हैं और पत्ते की डंडी फैली हुई नहीं होती। कागज़ी का छिलका पतला, रस सुगंधित और कुछ कम खट्टा होता है। जमेरी का छिलका मोटा और रस खट्टा होता है। कागज़ी नीबू भी दो प्रकार के होते हैं। एक गोल और दूसरे अण्डाकृतिवाले। कागज़ी और जमेरी के सिवाय एक प्रकार का नीबू और भी होता है, जिसका रस मीठा होता है (*Citrus medica Var Limetta*) नीबू के पौधे बीज या गूटी से तैयार किये जाते हैं। बीज की अपेक्षा गूटी वाले अच्छे होते हैं और जल्दी फलते हैं। बीज ताजे ही नर्सरी में गिरा देने चाहिए। पंद्रह-बीस दिन में अंकुर फेंकते हैं। जब पौधे चार-पांच इंच ऊंचे हो जायं तो उन्हें एक-एक फुट की दूरी पर लगा देना चाहिए और जब नये स्थान में डेढ़-दो फुट ऊंचे हो जायं तो निर्धारित स्थान पर लगा सकते हैं। बीज से पौधे बहुधा संतरे की कलमें बांधने के लिए तैयार किये जाते हैं। गूटी या दाब-कलम भाद्रपद के अंत में लगाना ठीक होता है।

जमीन और खाद—नींबू बलुआ और मटियार को छोड़कर सब प्रकार की मिट्टी में हो जाते हैं। गढ़े पंद्रह-पंद्रह फुट की दूरी पर संतरे के लिए जिस रीति से तैयार किये जाते हैं, उसी रीति के करने चाहिए। खाद प्रतिवर्ष फल मिल जाने के पश्चात् जाड़े के अंत में देना उत्तम होगा।

पौधे लगाना—पौधे बरसात में या जाड़े के अंत में लगाये जाने चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—नीबू में फल आने के समय से फल तोड़ने तक बराबर सिंचाई करनी चाहिए। काट-छांट सूखी और व्याधिग्रस्त टहनियों की होनी चाहिए। नीबू की जाति के पौधों में बहुधा बढ़ती हुई टहनियां ऊपर से सूखने लगती हैं और पत्ते झड़ जाते हैं। यह एक प्रकार

की फफूंद की व्याधि होती है। ऐसी टहनियों को काटकर कटे हुए भाग पर 'बोर्डो पेस्ट लगा देना चाहिए। 'गमोसिस' नाम की एक और व्याधि होती है, जिसमें पेड़ के तने व डालियों से गोंद-सा पदार्थ चूने लगता है। इसके लिए भी बोर्डो पेस्ट अच्छा होता है।

बोर्डो पेस्ट—तूतिया एक सेर लेकर उसे पांच सेर पानी में घोलकर फिर एक सेर चूने को अढ़ाई सेर पानी में बुझाओ। दोनों को मिला देने से पेस्ट बन जाता है।

फसल की तैयारी और चालान—बीजू छः-सात साल में और कलमी तीसरे-चौथे साल से फल देना प्रारंभ करते हैं। यदि पांच-छः साल की आयु के होने पर भी फल न दें तो गंधक के साथ सड़ाई हुई हड्डी का खाद (देखो पृष्ठ ४३) देना चाहिए। प्रति पौधा पांच सेर खाद देना ठीक होगा। नीबू वैसे तो बारहों महीने आते रहते हैं परंतु अच्छी बहार दो बार आती है। एक तो श्रावण-भाद्रपद (जुलाई-अगस्त) और दूसरी जाड़े के अंत फाल्गुन-चैत्र (फरवरी-मार्च) में। फलों का चालान टोकरियों में आसानी से किया जा सकता है। विदेशों में नीबू पर अच्छा रंग लाने के लिए (Ethylene gas) का प्रयोग किया जाता है। एक हजार घनफुट जगह के लिए एक घनफुट गैस छोड़ी जाती है। इसके लिए खास प्रकार के कमरे बनाये जाने हैं।

उपयोग और गुण—दोनों ही प्रकार के नीबू से भोज्य पदार्थ स्वादिष्ट हो जाते हैं। इनका अचार भी डाला जाता है। कागजी नीबू औषधि के अधिक काम में लाये जाते हैं। मिल सकें तो इनको नित्य प्रति काम में लाना चाहिए। इनके रस को कुछ गरम करके छानकर थोड़े-से नमक के साथ बोतलों में भरकर रखा जाय तो महीनों तक रह जाता है। ऐसा रस दाल और तरकारियों को स्वादिष्ट करने के काम में लाया जा सकता है।

मीठा रस—रस को २४ घंटे तक ऐसे बर्तन में, जिसमें खराब न हो रहने दो और जब गाद नीचे जम जाय तो ऊपर का रस निकाल लो।

फिर उस बर्तन को उबलते हुए पानी के बर्तन में रखकर इतना गरम करो कि दो हिस्सा रस सूख जाय। इतना सूखने पर उसमें आधा भाग चीनी मिला दो और बोतलों में भर दो। इन भरी हुई बोतलों को १७०° फा० पर आधा घंटा गरम[1] करके ठंडा होने के लिए रख दो।

उपज—हजार बारह सौ फल प्रति पेड़ लिये जा सकते है, जिनका वजन सत्तर-अस्सी किलो तक हो जाता है।

जमेरी नीबू अग्निदीपक, कृमिनाशक, खांसी, वमन और प्यास को मिटानेवाला होता है कागजी पाचक, हल्का, कृमिनाशक, पेट-दर्द को आराम करनेवाले और त्रिदोष-नाशक है। जुकाम या सर्दी होने के प्रारंभ में गरम पानी में नीबू का रस डालकर कुल्ले किये जायं और पिया जाय तो सर्दी रुक जाती है। ऐसे कुल्ले करने से दांतों को भी लाभ पहुंचता हैं।

पपीता, पपैया, एरंड ककड़ी—Papaya—*Carica papaya*

सोलहवीं शताब्दी में पपीते का आगमन भारत में अमरीका से हुआ पेड़ की ऊंचाई के विचार से पपीते दो प्रकार के होते है। एक वे, जिनकी ऊंचाई पंद्रह-बीस फुट होती है और दूसरे वे, जो सात-आठ फुट ऊंचे होते हैं। फल का वजन आधा सेर से दो दो-ढाई सेर तक होता है। भारत मैं रांची की तरफ के पपीते विख्यात हैं। इसके पेड़ छोटे होते हैं और पपीते के फलों में जैसी हीक आती है वह इस जाति के फलों में नहीं आती। वाहर से आई हुई जातियों में पपीते लंका की तरफ के बड़े मीठे होते है। इस जाति का फल लंबा होता है। कुछ वर्षों से अमरीका से एक जाति लाई गई है जिसे (Washington variety) कहते हैं। वह भी बड़ी अच्छी है। इसके फल दूसरे फलों की अपेक्षा

---

१. एक बर्तन में पानी भरकर बोतलें उसमें टेढ़ी करके रख दो और पानी को ऐसा गरम करो कि तापमान १७० फा० आधे घंटे तक बना रहे।

कुछ अधिक दिनों तक टिकते हैं। मधु-बिंदु (Honey dew) नाम की एक जाति होती है जिसके धड़ छोटे-छोटे होते हैं और एक साल में फलने लग जाते हैं। फल बड़े स्वादिष्ट होते हैं। पपीते में नर और मादा पेड़ अलग-अलग होते हैं। नर-पेड़ से सिर्फ फूल ही मिलते हैं। कोई-कोई ऐसा भी निकल आता है, जिसमें नर-फूल के साथ-साथ मादा-फूल भी निकल आते हैं। ऐसे फूल के फल छोटे-छोटे रह जाते हैं और विशेष स्वादिष्ट नहीं होते। अच्छे फल प्राप्त करने के लिए प्रति पचास मादा पेड़ों के साथ एक नर-पेड़ भी अवश्य होना चाहिए। नर-पेड़ के अभाव में फल छोटे और बीजरहित हो जाते हैं। पपीते के पौधे बीज से तैयार किये जाते हैं। वर्षा के प्रारंभ में बीज नर्सरी में गिरा देने चाहिए। करीब २०-२५ दिन में बीज अंकुर फेंकते हैं। जब पौधे डेढ़-दो फुट ऊंचे हो जायं तब खेत में लगाये जा सकते है।

जमीन की तैयारी और खाद—गढ़े दस-दस फुट की दूरी पर डेढ़-दो फुट व्यास के उतने ही गहरे बनाकर प्रत्येक गढ़े पीछे हड्डी-मिश्रित आठ-दस सेर खाद मिलाना चाहिए। भूमि ऐसी होनी चाहिए, जिसमें जल का निकास अच्छा हो। इसका पेड़ कमजोर होता है, इसलिए जिस जमीन में पानी लगता है उसमें पेड़ मर जाता है।

पौधे लगाना—जब सर्दी[1] कम हो जाय तब पौधे लगाने चाहिए। नर-मादा पेड़ बाल्यावस्था में नहीं पहचाने जा सकते और खेत में लगाने से बहुत-से नर निकल आते है। उनकी जगह भरने के लिए कुछ पेड़ बड़े-बड़े गमलों में भी तैयार रखने चाहिए। कुछ लोगों की सम्मति है कि

---

१. जो पौधे सर्दी के दिनों में लगाये जाते हैं, वे कम ऊंचाई पर ही फल देते हैं। एस. आर. गांधी महोदय Indian Horticultural Journal (1947) में लिखते हैं कि वाशिंगटन जाति के जो पौधे अगस्त में लगाये थे, वे अधिक ऊंचाई पर फलने लगे और जो दिसंबर में लगाये थे, वे ४ फुट २ इंच की ऊंचाई पर ही फल देने लग गए।

नर-पेड़ का सिर काट दिया जाय तो वह मादा हो जाता है। इसमें मुझे तो सफलता नहीं मिली, परन्तु प्रयत्न करना उचित है। नर-पेड़ मादा-पेड़ से फलते-फूलते हैं तो उन्हें तुरन्त हटा देने चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई साधारण करते रहना चाहिए। जब पेड़ में कोई शाखा निकल आवे तो उसे काट देना चाहिए, ताकि बड़े-बड़े फल प्राप्त हों। शाखा फूटने देने से फल संख्या में तो बढ़ जाते है परंतु वजन के विचार से प्रति पेड़ विशेष अंतर नहीं होता। यदि पेड़ बहुत ऊंचा हो जाय और हवा से उसके टूटने का भय हो अथवा फल तोड़ने में कठिनाई हो या जहांपर पाले का भय हो वहां पेड़ की ऊंचाई कम रखने के लिए शाखाएं फूटने देना लाभप्रद ही होगा। दो-तीन शाखाएं फूटने देकर बीच का धड़ काटकर ऊपर कलमी मिट्टी लगा देनी चाहिए। जब फल बहुत घने हों तो छोटे-छोटे फलों को तोड़ देना चाहिए, ताकि फलों की बाढ़ अच्छी हो। चौथे साल की फसल के बाद पेड़ों को काट-कर भूमि बदल देना बहुत जरूरी है। यदि ऐसा न किया जाय तो फल बहुत छोटे-छोटे आने लग जाते हैं और दो-एक साल बाद पेड़ मर जाते हैं। पपीते में कभी-कभी धड़ सड़ने लगता है। उसे छीलकर उस स्थान पर ५ प्रतिशत लाईसाल (lysol) का घोल लगाना चाहिए। इसके लिए कार्बोलिक एसिड का घोल भी अच्छा होता है। जल और कार्बोलिक एसिड बराबर भाग में मिलाना चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—अच्छी जमीन में लगाने के समय से एक साल में फल आने प्रारंभ हो जाते हैं। दूसरे और तीसरे साल में फल अच्छे आते हैं। चौथे साल बाद पेड़ों को काट देना ही ठीक है। फल बराबर मिलते रहें, इसलिए तीसरे साल की फसल के समय ही जमीन में पौधे लगा देने चाहिए। पपीते में फल करीब-करीब साल-भर आते रहते हैं, परंतु जाड़े में कम आते हैं और जल्दी पकते भी नहीं; लेकिन जो पकते हैं-वे मीठे होते हैं। अधिक ठण्डे स्थानों में फाल्गुन (फरवरी) से जेष्ठ (मई) तक पकते हैं। प्रत्येक पेड़ से प्रति वर्ष डेढ़-दो दर्जन उम्दा फल

प्राप्त करने का अनुमान आसानी से किया जा सकता है। एक ही पेड़ पर आधा किलो से लेकर तीन किलो तक के आ जाते है। वजन में जाति का भी असर होता है। वैसे छोटे-बड़े लगाकर किसी-किसी पेड़ में चार-पांच दर्जन फल भी मिल जाते हैं। पपीते के फल को पेड़ पर पूरा नहीं पकने देना चाहिए। जब नीचे का भाग पीला पड़ता नजर आये तब तोड़ लेना चाहिए। फलों का चालान बांस की टोकरियों में घास के साथ किया जा सकता है। यदि पेड़ पर पकने दें तो पक्षी खराब कर देते है। तोड़ने पर पुआल में रखकर पका लेना चाहिए। विशेष सावधानी के लिए देवदार के बक्स में, जिनमें एक-एक फल रखने के खाने बने हों भेजना, और भी उत्तम होगा। ऐसा करने से फल एक दूसरे से रगड़ खाकर बिगड़ेंगे नहीं।

उपयोग और गुण—कच्चे फलों की तरकारी बनाई जाती है और उनका दूध औषधि के काम में लाया जाता है। कच्चे फल का प्रचार भी बना सकते हैं। पके हुए फल वैसे ही खाये जाते हैं। फल पाचक, दस्तावर और बलवर्धक होता है। बढ़ी हुई तिल्ली या पेट की व्याधि के लिए इसका सेवन लाभप्रद होता है।

पेपेन चूर्ण बनाना—अच्छे बड़े कच्चे फलों पर बांस की पतली चिपट से या दाग नहीं लगनेवाली छुरी से फलों पर चीरा लगाकर दूध निकाला जाता है और उसे कांच या चीनी के बर्तन में इकट्ठा किया जाता है। बरसात में दूध अधिक मिलता है और यह कार्य सुबह किया जाता है। प्रत्येक फल में तीन-चार चीरे एक साथ लगाये जाते हैं और चार-पांच दिन के अंतर पर उसी फल पर तीन-चार चीरे और लगाते हैं। चीरे ऊपर से नीचे की ओर लगाना चाहिए, ताकि रस सरलता से इकट्ठा किया जा सके। चीरे आधे इंच से अधिक गहरे न हों। दोपहर तक इकट्ठा किया हुआ दूध दोपहर के बाद धूप में सुखाया जाता है। संध्या तक वह काफी गाढ़ा हो जाता है। यदि छिछले बर्तनों में सुखाया जाय, तो दूसरे दिन वह चूर्ण

बनाने जैसा हो जाता है। ऐसे दूध का चूर्ण सफेद या कुछ पीलापन लिये हुए होता है।

दूध के अभाव में अंगीठी पर लोहे की चद्दर पर दो इंच तह बालू को बिछाकर उसपर दूध सुखाने के बर्तन रखे जायं तो भी सूख जाता है। इतना ध्यान रहे कि तापमान १००^0 फा० से अधिक न हो।

प्रति वर्ष प्रति पेड़ पहले साल में एक-दो छटांक चूर्ण मिल जाता है। चूर्ण की मात्रा पपीते की जाति पर भी निर्भर है। किसी पेड़ से सात-आठ छटांक तक भी प्राप्त हो जाता है।

ऐसे चूर्ण की फिर सफाई करके पाचक भोज्य पदार्थ और औषधियां बनाई जाती हैं।

दूध निकाले हुए पपीते पक जाते है और खाने के काम आते हैं। चूंकि चीरों की वजह से उनका रूप बदल जाता है, इन्हें सस्ता बेचना पड़ता है।

जहां पपीते की बिक्री अधिक हो वहां चूर्ण बनाना विशेष लाभप्रद नहीं होगा।

फालसा—Phalsa—*Grewia asiatica*

इसके पेड़ की ऊंचाई करीब पांच-छः फुट तक होने देनी चाहिए। फल जंगली करौंदे इतना बड़ा बैंगनी रंग का खटमीठा होता है। पौधा बरसात में बीज बोकर तैयार किया जाता है। कहीं-कहीं पके फल तोड़कर दो-एक रोज के लिए पानी के घड़े में छोड़ देते हैं और बाद में नर्सरी में लगा देते हैं। तीन साल तक नर्सरी में रखने के बाद खेत में लगाते हैं।

जमीन और खाद—यह बलुवा को छोड़कर सब प्रकार की मिट्टी में हो जाता है। गढ़े आठ-आठ फुट की दूरी पर डेढ़-दो फुट व्यास के उतने ही गहरे बनवाने चाहिए और जब फिर से उनमें मिट्टी भरी जाय तो उसमें आठ-दस सेर हड्डी-मिश्रित गोबर का खाद मिलाना चाहिए। काट-छांट के बाद भी खाद देना चाहिए।

पौधे लगाना—पौधा जाड़े के अन्त में लगाना ठीक होता है। करीब तीन साल की आयु के पौधे लगाये जाते हैं। पौधों में ८ फुट का अन्तर रहना चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट--पौधे लगाने के साथ ही पानी देना चाहिए। बाद में आवश्यकतानुसार दिया जा सकता है। काट-छांट मध्य जाड़े में होनी चाहिए और छोटी-छोटी टहनियां इस तरह से काटनी चाहिए जिसमें पौधे की ऊंचाई तीन फुट की रह जाय। कहीं-कहीं काट-छांट ऐसी करते हैं कि जमीन के बराबर काट देते हैं तो कहीं दो फुट की ऊंचाई से काटते हैं। पंजाब में काट-छांट की जांच की गई तो पता लगा तीन फुट ऊंची जो टहनियां रखाई गईं उनमें फल अधिक आये। काट-छांट के समय आठ-दस रोज़ के लिए जड़ें खोलकर खाद दे दिया जाय तो फल अधिक आते हैं।

फसल की तैयारी और चालान—तीन-चार साल की आयु के होने पर पेड़ फलते हैं। प्रतिवर्ष जाड़े में फूलकर चैत्र-बैसाख में फल देते हैं। फल चालान के योग्य नहीं होते। निकटवर्ती बाजार में टोकरियों में भेजे जा सकते हैं। पैदावार दस-बारह सेर प्रति पेड़ के लगभग हो जाती है।

उपयोग और गुण— पके फल वैसे ही खाए जाते हैं। गर्मी में कुछ लोग इनका शरबत बनाकर भी पीते है। इनके सेवन से रक्त-विकार ज्वर और वादी का नाश होता है। ये पुष्टिकारक और पेट के दर्द को मिटानेवाले होते हैं। पत्तों से पत्तल और मिठाई के दोने भी बनाए जाते हैं।

बीही—Quince—*Cydonia oblanga (vulgaris)*

इसका पौधा सेब के पौधे जैसा लेकिन उससे कुछ छोटा होता है। इसलिए जब सेब और नासपाती के पौधों को छोटा करना होता है तो बीही के पौधे पर कलम बांधते हैं। इसके पौधे कलम (डाली) लगाकर तैयार करते हैं। यह बहुत जल्दी लग जाती है। कलमें जाड़े के अंत में लगानी चाहिए।

यह सीमाप्रांत और अफगानिस्तान की तरफ होती हैं। पहाड़ों पर

भी अच्छी हो जाती है। खेती ठीक सेव की खेती के समान करनी होती है। इसके फलों की मांग बहुत कम होती है। सेव और नासपाती की कलमें वांधने के लिए इसके पौधे विशेष उपयोगी हैं, क्योंकि ये जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं। बीही का पका हुआ फल खाया भी जाता है। यह मीठा और रसदार होता है। इसका मुरब्बा भी बनाया जाता है।

बेर—Ber—*Zizyphus Var*

बेर की कई जातियां हैं। परन्तु सब बेर तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं। (१) पैबंदी बेर, (२) जंगली बेर, (३) झाड़ियां बेर। पैबंदी बेर इंच-डेढ़ इंच लंबे, अण्डाकृति या नोकीले होते हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में बनारसी और मध्य प्रदेश में नागपुरी बेर अच्छे माने गये हैं। पंजाब में उमरान, कैथली, दंदान चोंचल की गिनती अच्छे बेरों में है। इनका छिलका पतला होता है। गूदा भी अच्छा मोटा और मीठा होता है। जंगली बेर गोल, कुछ मोटे छिलकेवाले बहुधा खट्टे होते हैं। गूदा भी पतला ही होता है। आकार में ये छोटी सुपारी के बराबर होते हैं। झाड़िया बेर लाल रंग के, गोल, बहुत कम गूदेवाले होते हैं। स्वाद में ये जंगली बेर से कुछ मीठे और आकार में फूले हुए चने से कुछ बड़े होते हैं। पहली दो जातियों के पेड़ बीस-पचीस फुट ऊंचे हो जाते हैं। तीसरी जाति के पेड़ नहीं, बल्कि झाड़ी होती हैं। इनकी ऊंचाई अधिक-से-अधिक तीन फुट की होती है। पहली जाति के बेर पंजाब, नागपुर, बनारस, फर्रुखाबाद आदि स्थानों में अच्छे होते हैं। दूसरी जाति के सभी जगह जंगलों में पाये जाते हैं। तीसरी जाति के राजपूताना और दिल्ली में अधिक मिलते हैं। बगीचों में पहली जाति के बेर ही लगाने चाहिए। बेर पहाड़ों पर तीन हजार फुट से अधिक ऊंचाई पर नहीं होते।

बेर के पौधे बीज या चश्मे से तैयार किये जाते हैं। बीज लगाना हो तो ताजे ही बोने चाहिए। जब पौधे एक साल की आयु के हो जाते हैं तब उनपर चश्मा रिंग ग्राफ्टिंग की रीति से चढ़ाया जाता है। जंगली

वेर घड़ का लगभग चार फुट की ऊंचाई पर आषाढ़ (जून) में काट देने से जुलाई में उसमें नए कोंपल निकल आते है, जिनपर कलम चढ़ाई जा सकती है। जिस डाली से चश्मा लिया जाता जाता है, उसे पानी में कुछ देर के लिए छोड़ दिया जाय तो छाल जल्दी छूट जाती है। बरसात में जब कोंपल निकलते हैं तब चढ़ाना चाहिए। वैसे जाड़े के प्रारम्भ तक चश्मा चढ़ाया जा सकता है।

जमीन और खाद—वेर बलुआ को छोड़कर सब प्रकार की मिट्टी में हो जाते हैं। झाड़िया वेर बलुआ में ही अच्छे होते हे। पहली जाति के वेर के पेड़ बीस-बीस फुट की दूरी पर होने चाहिए। इसलिए अच्छी जुताई के पश्चात् गढ़े उतनी ही दूरी पर बनवाने चाहिए। गढ़े दो-अढ़ाई फुट गहरे और उतने ही व्यास के गरमी में तैयार हो जाने चाहिए। भरते समय उनकी मिट्टी में सेर-सवा सेर हड्डी का चूर्ण, कुछ राख और करीब आधा मन के गोबर-पत्ते का खाद मिला देना चाहिए। प्रतिवर्ष फल आने के वाद जड़ें खोलकर कुछ खाद दे देना भी जरूरी है। यदि सिंचाई न हो सके तो ज्येष्ठ के अन्त में खाद देना ठीक होगा।

पौधे लगाना—वरसात या जाड़े के प्रारंभ में पौधे लगाने चाहिए। कलमी पौधे एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाने से अच्छे नहीं पनपते, इसलिए स्थायी स्थान पर बीजू पौधे को तैयार करके उसपर कलम चढ़ाना चाहिए।

वेर के वीज का ऊपरी भाग वड़ा कठोर होता है। उसे घिस देना चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई साधारण होनी चाहिए। फूलने के समय से फलों की वाढ़ तक पानी कुछ विशेष देना पड़ता है। फल मिलने के वाद काट-छांट करनी चाहिए। करीब-करीब सब टहनियां शाखाओं के निकट से काट देने से शाखाएं बहुत जल्दी नये कोंपल फेंक देती हैं।

फसल की तैयारी और चालान—वेर के कलमी पेड़ छः-सात साल की आयु के और बीजू दस-वारह साल के होने पर अच्छे फल देते हैं।

जाड़े के प्रारंभ में फूल आते हैं, जिसे कहीं-कहीं खिचड़ी कहते हैं। फल माघ से चैत्र (जनवरी से मार्च) तक मिलते रहते हैं। मध्य प्रदेश में कुछ जल्दी आते हैं। फलों की पैदावार प्रति पेड़ छः मन कूती जा सकती है। फलों का चालान बहुधा बोरों में किया जाता है, परंतु इससे बहुत-से बेर बिगड़ जाते हैं। टोकरियों में भेजना अच्छा होता है। चालान के बेर उस वक्त तोड़ने चाहिए जब फलों की हरियाली मिटने लगे और हल्का-सा पीलापन आ जाय।

उपयोग और गुण—फल वैसे ही खाये जाते हैं। जंगली बेर का अचार भी बनाया जाता है। बेर शीतल, दस्तावर और पुष्टिकारक होते हैं। इनसे रक्त साफ होता है और दाह तथा प्यास शांत होती है। कच्चे बेर पित्तकारी और कफवर्धक हैं। बेर की लकड़ी मजबूत होती है। खेती के औज़ार बनाने के काम आती है। झरिया बेर से घेरा लगाया जाता है, और राजस्थान में पत्ते पशुओं को खिलाये जाते हैं। बेर के पेड़ों पर लाख के कीट लगाकर लाख भी लेते हैं।

बेरी गूज, मकोय, टिपारी—Gooseberry or Cape Gooseberry
physalis Peruviana

इसका फल जंगली बेर के आकार का पीले रंग का होता है और सूखे पत्ते जैसे बाह्य दल (calyx) में ढंका रहता है। इसकी खेती जहां पाला नहीं पड़ता वहां हो जाती है। प्रतिवर्ष नये पौधे लगाने पड़ते हैं। पौधे तैयार करने के लिए बरसात में बीज नर्सरी या लकड़ी के गमलों में लगाये जाते हैं। जब बरसात समाप्त हो जाती है और पौधे चार-पांच इंच ऊंचे हो जाते हैं तब निर्धारित स्थान में लगाये जाते हैं।

जमीन और खाद—अच्छी उपजाऊ दुमट जमीन इसके लिए ठीक होती है। करीब तीनसौ मन खाद और तीन मन हड्डी का चूर्ण प्रति एकड़ डालकर गरमी और बरसात में अच्छी जुताई करनी चाहिए।

पौधे लगाना—उपर्युक्त रीति से नर्सरी में तैयारी किये हुए पौधे

खेत में बरसात के अंत में अर्थात् आश्विन में दो-दो फुट की दूरी पर पंक्तियों में लगाने चाहिए। पंक्तियों में तीन-तीन फुट का अंतर होना चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—जब पौधे एक फुट ऊंचे हो जायं तो बीच की फुनगी तोड़ देनी चाहिए। ऐसा करने से नई शाखाएं अधिक संख्या में निकल आती हैं और फल अधिक प्राप्त होते हैं। सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

फल की तैयारी और चालान—इसके फल जाड़े में तैयार हो जाते हैं और फाल्गुन (मध्य मार्च) तक मिलते रहते हैं। जब फल पीले हो जायं तब तोड़ने चाहिए। फल निकटवर्ती बाजार में टोकरियों में भरकर भेजे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—फल वैसे ही खाये जाते हैं। ये बड़े मीठे और स्वादिष्ट होते हैं। इनका मुरब्बा भी बनाया जाता है। विशेषतः इसीके लिए इनकी खेती होती है।

बेरी ब्लैक Blackberry—*Rubus fructicosus*

इसके पौधे बीज या टोंटे (offset) से पैदा करते हैं।

जमीन और खाद—दुमट मिट्टी में यह लगाई जाय तो अच्छी होती है। इसके लिए एक फुट गहरे गढ़े बनवाकर उनमें दो-ढाई सेर खाद दे देना चाहिए। गढ़ों में तीन फुट का और पंक्तियों में चार फुट का अंतर ठीक होता है।

पौधे लगाना—बरसात में छोटे टोंटे लगा देना चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। फल ले लेने के पश्चात् या जाड़े के प्रारंभ में जिन डंठलों से फल प्राप्त हो जायं उन्हें काट देना चाहिए, क्योंकि फल हर साल नये-नये कोंपलों पर आते हैं।

फसल की तैयारी—पौधे लगाने के समय से दो साल में फल आना प्रारंभ होते हैं और चैत्र-वैसाख (अप्रैल-मई) में मिलते हैं।

उपयोग और गुण—फल वैसे ही खाये जाते हैं, परंतु विशेषतः मुरब्बे

के लिए काम में लाये जाते हैं।

वेरी और भी कई प्रकार की होती है जैसे रास्प वेरी, ड्यूवेरी इत्यादि इन सबकी खेती करीव-करीव ब्लेकवेरी के समान की जा सकती है।

बेरी-स्ट्रा Strawberry *Fragaria vesca*

इसका पौधा वहुत छोटा होता है और लताएं इधर-उधर पड़ी रहती हैं। यह मैदानों में भी हो जाता है, परंतु पहाड़ों पर अच्छा होता है। फल लाल रंग के छोटी लीची-जैसे होते हैं।

जमीन और खाद—इसके लिए दुमट जमीन उत्तम होती है। गर्मी में तीन सौ से चार सौ मन खाद प्रति एकड़ देकर बरसात के अंत में इसे लगा सकते हैं। खेत की अच्छी जुताई के पश्चात् इसके लिए खेत में ढालानुसार क्यारियां बनाकर उनमें लगानी चाहिए। इसे पारियों पर भी लगा सकते हैं। उस स्थिति में नालियां दो-दो फुट के अंतर पर होनी चाहिए।

पौधे लगाना—पहाड़ों पर आश्विन-कार्तिक (सितंबर-अक्तूवर) या फाल्गुन-चैत्र यानी जाड़े के अंत में लगानी चाहिए। मैदानों में जाड़े के प्रारंभ में लगाना ठीक होता है। इसकी लता, जो ज़मीन पर पड़ी रहती है, जगह-जगह जड़ें फेंक देती है, सो उसके टुकड़े (Runners) जड़सहित लाकर लगाये जाते हैं। पंक्तियां पंद्रह से अठारह इंच की दूरी पर और पौधे एक-एक फुट की दूरी पर लगाने चाहिए। यदि पारियों पर लगाना हो तो उपर्युक्त रीति से लगाई हुई पारियों पर बीच पारी में एक-एक फुट की दूरी पर लगा देना चाहिए।

बरसात में इसके पौधे खेत में छोड़ दिये जायं तो मर जाते हैं, इसलिए वहां से उठाकर छाया में लगा देने चाहिए, जिसमें बरसात से बच जायं।

सोहनी और सिंचाई—खेत में घास-पात साफ करते रहना चाहिए, सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। फल पकने लगे, उस वक्त बहुत कम पानी देना चाहिए। फलों की वाढ़ के दिनों में करीव सवा मन पोटाश का खाद दिया जाय तो फल मोटे भी होते है और मीठे भी अच्छे हो जाते हैं। उपर्युक्त खाद के अभाव में आठ-दस मन राख डाल देनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—मैदानों में चैत्र-वैसाख में और पहाड़ों पर माघ-फाल्गुन में फल मिलते हैं।

उपयोग—फल वैसे भी खाये जाते हैं, परंतु बहुधा मुरब्बा बनाने के काम में लाये जाते हैं। मलाई और चीनी के साथ खाने से स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

बेल Bel—*Aegle marmelos*

यह भारतवर्ष में प्रायः सब स्थानों में पाया जाता है। फल छोटी गेंद के आकार से लेकर नारियल इतने बड़े होते हैं। पौधा बीज से तैयार किया जाता है। पौधों का चालान टोकरियों में हो सकता है।

जमीन और खाद—इसके खेत-के-खेत नहीं लगाये जाते। चूंकि फल में अच्छा गुण है, अच्छे बड़े फलवाली जाति के एक या दो पेड़ साधारण फलों के लगाने की रीति-अनुसार बरसात में लगा देने चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई साधारण और काट-छांट श्रावण में, जब भगवान शंकर को चढ़ाने के लिए बेलपत्र तोड़े जाते हैं, उस वक्त करा देनी चाहिए ताकि दोनों काम एक साथ हो जायं और पत्तों से कुछ आमदनी भी हो जाय।

फसल की तैयारी और चालान—पौधा लगाने के समय से सात-आठ साल बाद पेड़ से फल मिलने प्रारंभ होते हैं। पके फल वैशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल-मई) में मिलते हैं। फल चूंकि बड़े सस्ते बिकते हैं, अतः निकटवर्ती बाजार में ही गाड़ी भरकर भेजे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—पत्ते पूजन के काम में लाये जाते हैं। पके हुए फल का गूदा बहुत लोग वैसे ही खा जाते हैं। कुछ लोग दूध और चीनी के साथ शरबत बनाकर गरमी में पीते हैं। कच्चा फल पाचक होता है। भूंजकर चीनी के साथ खाया जाय तो दस्त और पेचिश को रोकनेवाला तथा पेट के दर्द को मिटानेवाला होता है। पका फल ठण्डा और हल्का दस्तावर होता है।

ब्रेड फ्रूट—Bread fruit—*Artocorpus altilis*

यह कटहल की जाति का फल है। भारत में पश्चिमीय तट पर इसकी खेती होती है और फल सब्जी बनाने के काम आता है। इसका पेड़ चालीस-पचास फुट ऊंचा होता है। कटहल की भांति नर मादिन फूल अलग-अलग होते हैं। इसके फल अंडाकृति आकार के पांच-छः इंच व्यास के और छोटे कटहल जैसे दिखते हैं। पकने पर फल पीला हो जाता है। अंदर का गूदा रेशेदार सफेद होता है। इसकी दो जातियां हैं; एक के फलों में बीज होते हैं, दूसरी में बीज नहीं होते। बीजरहित जाति की ही खेती विशेष रूप से होती हैं। इसे सकर्स से उपजाया जाता है। पौधे चालीस-चालीस फुट की दूरी पर लगाते हैं। खेती कटहल की खेती के समान ही होती है। सब्जी के लिए कच्चे फल काम में लाये जाते हैं। एक पेड़ से आधा-आधा किलो वजनवाले पचास से सौ फल तक मिल जाते है। आठ-दस साल की आयु के पेड़ फलने लग जाते हैं।

मूंडला सीताफल—Sour Sop, *Annona musicato*

यह भी सीताफल की जाति का फल है. जो मद्रास की तरफ होता है और तेलिंघाना में इसे मूंडला सीताफल कहते हैं। असम में भी कहीं-कहीं यह होता है। इसका गूदा सफेद होता है, जिसमें आम की सुगंध होती है, परन्तु यह सीताफल जैसा मीठा नहीं होता। कुछ खट्टा होता है।

इसके फल दो-ढ़ाई किलो वजन के कांटेदार होते हैं और प्रत्येक पेड़ पर पन्द्रह-बीस फल ही आते हैं। जब बाजार में रामफल की आमद बंद हो जाती है तो इसके फल आने लग जाते हैं और इसके बाद सीताफल पकने लग जाते हैं।

मेंगोस्टीन—Mangosteen—*Garcinia mangostana*

मलाया से इसका आगमन भारतवर्ष में हुआ और खेती दक्षिण भारत में होती है, फल बड़ा स्वादिष्ट होता है। इसके फल का छिलका कठोर होता है, जिसमें पांच-सात फांकें होती हैं। प्रत्येक फांक का गूदा सफेद

गुलाबी झाड़ी बराबर होता है, जिसके भीतर एक-एक बीज होता है। पौधे बीज से तैयार किये जाते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से वैशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल-मई) की फसल के बीज अच्छे होते हैं, बनिस्वत उस फसल के जो आश्विन-कार्तिक (अक्तूबर-नवम्बर) में होती है। दो-तीन साल की आयु के पौधों को स्थायी स्थान पर बरसात के अन्त में लगा देना चाहिए। पेडों में तीस-फुट का अंतर रहना चाहिए। नीलगिरी में फलों की उपज प्रति पेड़ तीनसौ से चारसौ तक आ जाती है।

रामफल, नोना[1]—Bullock's heart—*Annona reticulata*

इसे कहीं-कहीं सीताफल भी कहते है, परंतु इस पुस्तक का सीताफल (शरीफा) दूसरा ही है, जिसकी खेती का वर्णन आगे दिया गया है। गूदे के रंग और बीज के आकार से देखा जाय तो इसमें और सीताफल में बहुत कम अंतर है। स्वाद में सीताफल से यह कम मीठा होता है। ऊपरी आकार में दोनों में बड़ा अंतर है। सीताफल की कलियां खुली हुई मालूम होती हैं और रामफल ऊपर से साफ होता है। सीताफल का रंग हरा होता है और रामफल पकने पर हल्का बैंगनी हो जाता है। इसकी खेती ठीक सीताफल (शरीफा) की खेती के समान होनी चाहिए। इसका फल गरमी में मिलता है, जब सीताफल नहीं मिलते। यही इसकी खेती से मुख्य लाभ है

रेंता, रेती ककड़ी—Cucumber-*Cucumis Var Utilitimus*

यह गर्मी के दिनों में मिलनेवाली ककड़ी है, जो पहले हरे और फिर अंगूरी रंग की हो जाती है। छोटे फलों पर कुछ रोएं भी होते हैं। फल

---

१. दक्षिण भारत की तरफ नीलगिरी पर तीन हजार से सात हजार फुट की ऊंचाई के स्थानों में ऐसा ही एक फल और होता है, जिसे लक्ष्मण फल कहते हैं (Anona cherimola)। इसकी खेती सीताफल की खेती जैसे होती है। प्रत्येक पेड़ से लगभग एक सौ फल मिल जाते हैं और फलों का वजन लगभग आधा किलो होता है।

फुट-डेढ़ फुट लंबे, दो इंच मोटे होते हैं। लखनऊ की विख्यात ककड़ियां १ इंच से कुछ ही मोटी और एक फुट के करीब लंबी होती है।

जमीन और खाद—खरबूजे की भांति यह नदी-नाले की बालू में ही होती है। प्रति एकड़ सवा सौ मन के करीब खाद नालियों की बालू में मिला देना चाहिए। नालियां दो फुट चौड़ी और आठ-दस इंच गहरी तीन-तीन फुट की दूरी पर होनी चाहिए।

बोना—माघ-फाल्गुन (जनवरी-फरवरी) में ऊपर्युक्त रीति से की हुई नालियों में तीन-तीन फुट की दूरी पर दो-दो बीज लगा देने चाहिए। एक एकड़ के लिए करीब एक सेर बीज की आवश्यकता होती है।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई साधारण होनी चाहिए। सोहनी के समय दो-दो पौधों में से एक-एक सबल को रखकर दूसरे निर्बल को उखाड़ देना चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—वैसाख-ज्येष्ठ में इसके फल मिलते हैं। ककड़ियों का चालान छिछली टोकरियों में या बक्सों में अच्छा होता है। कहीं-कहीं गूणों (सुतली की जाली) में भरकर भैंसों पर लादकर भी ले जाते हैं, परंतु इस रीति से ले जाने में कुछ फल बिगड़ जाते हैं।

उपयोग और गुण—हरी ककड़ियां कच्ची ही खाई जाती हैं और इनकी तरकारी भी बनती है। ये शीतल, हल्की और रुचिकारक होती हैं। दूसरी फसल के लिए बीज पकी हुई ककड़ियों के रखने चाहिए।

लक्ष्मण फल—Cherimoyer—*Annona cherimola*

यह सीताफल की जाति का फल है, जो पहाड़ों पर अच्छा पनपता है। वैसे मैदानों में भी हो जाता है। इसकी खेती सीताफल की खेती जैसी होती है। इसके पौधे बीज या चश्मा चढ़ाकर तैयार करते हैं। इसकी चार-पांच जातियां हैं। किसीका फल ऊपर से सीताफल जैसा, किसीका चिकना, किसीका लम्बा। इनमें मई (जेष्ठ) से भाद्रपद तक फूल आते हैं और फल तब आते हैं जब सीताफल की बहार खत्म हो जाती है। इसमें बीज बहुत कम होते है। जहां सीताफल में सत्तर-अस्सी बीज होते हैं वहां

इसमें दस-पन्द्रह ही होते हैं, इससे तथा इसके स्वाद से कुछ लोग सीताफल से इसे अधिक पसन्द करते हैं।

लीची—Lichi[1]—*Litchi chinensis (Nephelium litchi)*

इसकी खेती चीन में बहुतायत से होती है। भारतवर्ष में उत्तर विहार में दरभंगा और मुजफ्फरपुर के आस-पास ही इसकी खेती विशेष रूप से की जाती है। उत्तर प्रदेश में हिमालय की तलहटी में सहारनपुर और देहरादून के जिलों में, बंगाल में हुगली के निकट तथा आसाम में भी कुछ हद तक होती है। इसका पेड़ पचीस-तीस फुट ऊंचा होता है और घेरा करीब बीस फुट का होता है। पेड़ जब फलता है तो फलों के लाल रंग के गुच्छे बड़े मनोहर दिखाई देते हैं। इसका पौधा दाब-कलम या गूटी से तैयार किया जाता है। उत्तर प्रदेश में दाब-कलम वैशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल-मई) में लगाई जाती है। गूटी एक साल की आयु की स्वस्थ टहनी बरसात के अंत में यानी मध्य अगस्त में बांधनी चाहिए। गूटी बांधने की टहनी को छीलकर करीब तीन सप्ताह तक वैसी ही खुली छोड़ देनी चाहिए और जब कटी हुई छाल के निकट कुछ फूली हुई बाढ़-सी नजर आये तब मिट्टी बांधनी चाहिए। यदि तीन सप्ताह में फूली हुई नजर नहीं आये तो उस टहनी पर मिट्टी न बांधकर उसे छोड़ ही देना चाहिए। करीब दो-ढाई महीने में गूटी पेड़ से पृथक् करने योग्य हो जाती है। बांधी हुई मिट्टी के बाहर जड़ें दिखलाई दें तो उसके दो सप्ताह बाद गूटीवाली टहनी को काटकर नर्सरी में लगा देना चाहिए। पौधों का चालान टोकरियों में आसानी से किया जा सकता है।

जमीन और खाद—कछार दुमट जमीन, जिसमें चूने की मात्रा

---

१. विशेष जानकारी के लिए लेखक का यू० पी० फ्रूट सिरीज बुलेटीन नंबर १२, १९३५ देखिए। यह बुलेटीन अंग्रेजी, हिन्दी तथा उर्दू तीनों भाषाओं में छपा है।

अधिक हो, इसके लिए अच्छी होती है। गढ़े तीन फुट व्यास के और उतने ही गहरे पचीस फुट की दूरी पर बनवाने चाहिए और प्रत्येक गढ़े की मिट्टी में पचीस-तीस सेर गोबर का खाद और दो-ढाई सेर हड्डी का चूर्ण डालना चाहिए। फल प्राप्त होने लगे उस वक्त से माघ (जनवरी) में या सिंचाई का प्रबंध न हो तो फल लेने के पश्चात् आषाढ़ (जून) में खाद दे देनी चाहिए। गोबर के खाद के साथ दो-तीन सेर नीम या एरंडी की खली, दो सेर हड्डी का चूर्ण तथा तीन-चार सेर राख प्रतिवर्ष दे देना ठीक होगा। लीची के लिए मछली का खाद भी उत्तम माना गया है, सो मिल सके तो प्रति पेड़ तीन-चार सेर के लगभग दे देना चाहिए।

पौधे लगाना—पौधे बरसात में लगाना ठीक होता है। वैसे जाड़े के अंत तक लगाये जा सकते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई पहले दो-तीन साल तक की जाती है। बाद में बिहार राज्य में नहीं की जाती, परंतु जहां भूमि में तरी कम हो, गरमी में सिंचाई अवश्य होनी चाहिए। काट-छांट जब फल तोड़े जाते है उस वक्त हो जाती है। क्योंकि फलों के गुच्छे-के-गुच्छे तोड़े जाते हैं और साथ में कुछ टहनियां भी टूट ही जाती हैं। फल दूसरे साल नई बाढ़ पर ही आते हैं। व्यावसायिक दृष्टि से तीस-चालीस साल तक पेड़ अच्छी उपज देते हैं। इसलिए ऐसा करने से पेड़ को हानि नहीं पहुंचती। अधिक आयु के हो जाने पर जब पेड़ नहीं फलते या फल फटे हुए मिलते हैं तो छोटी-छोटी सब शाखाएं काट दी जाती हैं। ऐसा करने से जो नई शाखाएं निकलती हैं, उनसे दो-एक साल के लिए अच्छे फल मिल जाते हैं। फलों के पकने के समय यदि गरम हवा चल जाय तो फल फटकर गिर जाते हैं और यदि उस समय एक अच्छी वर्षा हो जाय तो फल बड़े और स्वादिष्ट हो जाते हैं। गरम हवा से बचाने के लिए हवा की रोक का प्रबंध करना चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—पौधा लगाने के समय से पेड़ पांच-छः साल की आयु के होने पर फल देना प्रारंभ करते हैं और जेष्ठ-आषाढ

(मई-जून)में फल पकते हैं ।लगभग पचास-साल की आयु तक फल मिलते रहते हैं । फल पहले हरे-पीले और पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं । फलों का चालान उनके डण्ठलसहित लीची या शीशम के पत्तों के साथ छोठी-छोटी टोकरियों में होना चाहिए । प्रत्येक टोकरी में पांच-छः सौ लीची भरी जायं तो उत्तम होगा । अधिक सावधानी से भेजना हो तो छोटी-छोटी टोकरियों में, जिनमें करीब एक सौ लीची समायें, ऐसी वनवा-कर, उनकी दो तह एक वक्स या क्रेट में भेजना चाहिए ।

उपयोग—लीची का गूदा खाया जाता है, जो वड़ा मीठा और रसदार होता है । चीन में लीचियां सुखाई जाती हैं । सूखने पर वे काली हो जाती हैं । वहां से सूखे फलों का चालान विलायत और अमरीका को किया जाता है ।

लोकाट-Loquat—*Eriobotrya japonica*

इसकी खेती चीन और जापान में वहुत होती है । वहीं से इसका आगमन भारतवर्ष में हुआ है । व्यापारी स्तर पर इसकी खेती उत्तर प्रदेश और पंजाव में की जाती हैं । इसके पेड़ सदावहार वाले हैं और बीस-पचीस फुट ऊंचे होते हैं । पौधा बीज, चश्मा, गूटी या भेंट-कलम से तैयार किया जाता है । बीज ताज़े ही वोने चाहिए । कलम या गूटी आषाढ़-श्रावण में और चश्मा चैत्र मास में चढ़ाया जाता है । पौधे कुछ कमजोर होते हैं, इसलिए क्रेट में भेजे जाने चाहिए ।

जमीन और खाद—यह सब प्रकार की मिट्टी में हो जाता है । गढ़े वीस-वीस फुट की दूरी पर दो-ढाई फुट व्यास के दो फुट गहरे गरमी में वनवाने चाहिए । प्रत्येक गढ़े की मिट्टी में दो सेर हड्डी का चूर्ण, कुछ राख और आधा मन गोवर का खाद देना चाहिए । जाड़े के प्रारंभ में जड़ें खोल-कर दो-एक सप्ताह वाद हड्डी-मिश्रित खाद दे करके उन्हें वंद कर देना चाहिए । प्रत्येक पौधे पीछे पाव-भर नाइट्रोजन पहुंचे इतना खली का खाद या आधा पाव नाइट्रोजन कृत्रिम खाद के रूप में दी जा सके तो अच्छा ही है । एक सेर के करीब हड्डी का चूर्ण भी देना चाहिए ।

पौधे लगाना—जाड़े के अंत में पौधे लगाने चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। काट-छांट सूखी टहनियों की जाती है। जड़ें कार्तिक (अक्तूबर) में खोलनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—पांच-छः साल की आयु के होने पर पेड़ फलने लगते हैं। इनमें फूल श्रावण-भाद्रपद (अगस्त-सितम्बर) से पौष-माघ (दिसम्बर-जनवरी) तक आते रहते हैं, परन्तु फल आश्विन कार्तिक के फूलों से ही आते हैं। मार्च में फूल झड़ जाते हैं और प्रतिवर्ष फाल्गुन-चैत्र (मार्च-अप्रैल) में फल मिलते हैं। पकने पर फल पीले रंग के हो जाते हैं। ये छिदरे गुच्छों में लगते हैं और आकार में गोल या अंडाकृति के होते हैं। उपज पन्द्रह-वीस किलो प्रति पेड़ हो जाती है। फलों का चालान निकटवर्ती बाजार में टोकरियों में हो सकता है। दूर भेजना हो तो लीची की भांति भेजने चाहिए।

उपयोग और गुण—फल का गूदा खाया जाता है, जो खटमीठा होता है। यह शीतल और तृप्तिदायक होता है।

शफतालू—Nectarine—*Amygdalus persica Var Loeuis*

यह एक प्रकार का आड़ू ही है, जो पहाड़ों पर होता है। आड़ू का छिलका रोएंदार हलके मखमल जैसा मालूम होता है और शफतालू का साफ होता है। इसकी खेती आड़ू की खेती के समान की जाती है। पौधे लगाने के समय से आड़ू तीन साल में और यह पांच साल में फलता है। इसके पौधे आड़ू या आलूबुखारा पर कलम कर तैयार किये जाते हैं।

शरीफा, सीताफल—Custard apple—*Annona squamosa*

भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रांतों में पाया जाता है, परन्तु सबसे अधिक मध्य प्रदेश में होता है। लगभग एक लाख एकड़ जमीन सीताफल के लिए जोती जाती है और जंगलों में बिना देख-भाल के हो जाता है। जहां वर्षा बहुत कम होती है, वहां और जहां सर्दी बहुत ज्यादा पड़ती है वहां यह नहीं होता। पौधे बीज से तैयार किये जाते हैं। ताजे बीज ही नर्सरी

में लगाकर पानी देते रहने से पौधे तैयार हो जाते हैं।

जमीन और खाद—यह दुमट और बलुवा-दुमट मिट्टी में अच्छा होता है। गरमी में पंद्रह फुट की दूरी पर दो-तीन फुट व्यास के और दो फुट गहरे गढ़े बनाकर उनकी मिट्टी में दस-पंद्रह सेर हड्डी-मिश्रित खाद दे देना चाहिए। फल आने लगे, उस समय से प्रति वर्ष शरद ऋतु में जड़ें खोलकर या बरसात के पहले कुछ खाद दिया जा सके तो अच्छा होगा।

पौधे लगाना—पौधे बरसात में लगाये जाते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। काट-छांट सूखी टहनियों की की जाती है। पत्ते माघ-फाल्गुन में झड़ते हैं, और चैत्र-मास में नये पत्ते और फूल आने लग जाते हैं।

फसल की तैयारी और चालान—पौधे लगाने के समय से चार-पांच साल में पेड़ फल देने योग्य हो जाते हैं और पंद्रह-बीस साल तक फल देते रहते हैं। प्रति श्रावण-भाद्रपद (जून-जुलाई) से कार्तिक-अगहन (अक्तूबर-नवंबर) तक फल मिलते रहते हैं। जब फल की कलियों के जोड़ बाहर से सफेद होने लगें तब फल तोड़ने चाहिए। ऐसे फल घास में रख देने से तीन-चार दिन में पक जाते हैं। फलों का चालान घास की टोकरियों में किया जा सकता है। कहीं-कहीं मिट्टी के बर्तनों में भी ये भेजे जाते हैं।

उपयोग और गुण—फल मीठे होते हैं और वैसे ही खाये जाते हैं। ये शीतल, बलवर्द्धक, हृदय को हितकारी और कफकारक होते हैं।

शहतूत या तूत Mulberry { सफेद *Morus alba*
काला ,, *Nigra* }

शहतूत सफेद और काले ऐसे दो प्रकार के होते हैं। पहले के फल बहुधा इंच-डेढ़ इंच लंबे या गोल होते हैं। दूसरे के विशेषतः लंबे ही होते हैं। पौधे बीज या कलम (डाली) लगाकर तैयार किये जाते हैं। विशेषतः डाली से ही तैयार करते हैं। कलमें अगहन-पौष (नवंबर-दिसंबर) में

लगानी चाहिए। कलमों का चालान यदि कुछ दूर करना हो तो कोयले के चूर्ण में करना उत्तम होगा।

जमीन और खाद—रेशम के कीड़े पालने के लिए जब यह लगाया जाता है तब खेत-के-खेत लगाये जाते हैं, अन्यथा निजी वगीचों में एक-दो पेड़ लगा देने चाहिए, जो साधारण पेड़ों के लगाने की रीति से लगाये जा सकते हैं।

पौधे लगाना—नर्सरी में तैयार किये हुए पौधे मिलें तों उन्हें बरसात में लगा सकते हैं। पौधों में बीस फुट का अन्तर होना चाहिए। रेशम के कीट के लिए जो तूत लगाई जाय उसमें पौधों का अन्तर चार-चार फुट का काफी होगा।

सिंचाई और काट-छांट—साधारण सिंचाई होनी चाहिए। जब फल आने लगें तब से जब तक फल समाप्त न हो जायं, पानी पूरा देना चाहिए। काट-छांट पत्ते झड़ जायं उस समय साधारण करनी चाहिए। जो शहतूत रेशम के कीड़े के लिए लगाया जाता है, उसकी काट-छांट बहुत करनी पड़ती है, जिससे पत्ते अधिक आवें।

फसल की तैयारी अर चालान—कलमी पौधे तीन साल की आयु के होने पर फल देते हैं और प्रति वर्ष चैत्र-वैशाख (अप्रैल-मई) में फल मिलते हैं। फल निकटवर्ती बाजार में छिछली टोकरियों में भेजे जा सकते हैं।

उपयोग और गुण—पत्ते रेशम के कीट को खिलाये जाते हैं। फल वैसे ही चूसकर खाये जाते हैं। इनका रस भी निकाला जा सकता है, जिससे शरबत बनाकर पीते हैं। यह भारी, शीतल और पित्त-नाशक होता है।

संतरा, माल्टा, मौसम्बी—Orange

खट्टा संतरा—Sour orange—*Citrus reticulata*
मीठा संतरा—Sweet orange—*Citrus sinensis*
माल्टा (पंजाब), मौसम्बी (बम्बई) सयगुड़ी (मद्रास)
Malta—*Citrus aurantium*

भारतवर्ष में नागपुरी और सिलहटी संतरे विख्यात हैं। नागपुरी की अपेक्षा सिलहटी संतरे छोटे लेकिन बीजवाले और अधिक मीठे होते हैं। उपर्युक्त स्थानों के सिवा संतरे दिल्ली, लाहौर, मुल्तान, पूना, मद्रास, लंका, नेपाल, भूटान आदि स्थानों में भी होते हैं और नित्य प्रति इनकी खेती का विस्तार बढ़ता ही चला जाता है।

साधारणतः संतरे तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं :

१. मोटे और ढीले छिलकेवाले पीले या नारंगी रंग के।

२. पतले और चिपके हुए छिलकेवाले पीले रंग के।

उपर्युक्त दोनों संतरे आसानी से छीले जा सकते हैं और छीलने पर अंदर की फांके सहूलियत से अलग-अलग की जा सकती हैं।

३. **माल्टा और मौसम्बी**—पंजाब की तरफ इस जाति के संतरे को माल्टा कहते हैं, गुजरात की तरफ मौसम्बी कहते हैं और मद्रास की तरफ़ सायगुढ़ी। दोनों में थोड़ा-सा ही अन्तर होता है। मौसम्बी में जिस जगह फल डंठल से लगा रहता है वहां छोटा-सा गोल चक्कर-सा होता है। लाल रंग के गूदेवाला माल्टा अच्छा होता है। संतरे का पेड़ सीधा, लेकिन माल्टा का फैला हुआ होता है। फल हरे-पीले रंग के, चिपके हुए खुरखुरे धारीदार छिलकेवाले होते हैं। इनका छिलका जल्दी नहीं छूटता और रस भी आसानी से नहीं निकलता। पहले दो प्रकार के संतरों की अपेक्षा इसका रस मीठा और एक निराले स्वाद का होता है। स्वास्थ्य के लिए संतरों की अपेक्षा इनका मान्य अधिक है।

संतरे के पौधे चश्मा चढ़ाकर तैयार किये जाते हैं। चश्मा कार्तिक

से पौष (अक्तूबर से दिसंबर) तक चढ़ाया जाता है। चश्मे[1] के लिए बीजू पौधे मीठे या जमेरी नीबू के बीज से तैयार किये जाते है। जमेरी या मीठे नीबू की जड़ें मजबूत होती हैं। इससे यह लाभ होता है कि इन चढ़ाये हुए संतरे के पौधे कम मरते हैं। नीबू के बीज की उपज-शक्ति बहुत जल्दी नष्ट हो जाती है। इसलिए ताजे बीज भी नर्सरी या गमलों में लगा देने चाहिए। पानी बराबर मिलता रहे तो यह पौधे बरसात के आरंभ तक तीन-चार इंच ऊंचे हो जाते हैं। उस वक्त इन्हें नर्सरी में चार-पांच इंच की दूरी पर लगाकर कार्तिक में वहां से हटाकर एक फुट से डेढ़ फुट की दूरी पर लगा देना चाहिए। दूसरे कार्तिक तक ये पौधे चश्मा चढ़ाने योग्य हो जाते हैं। चश्मे[2] के लिए ऐसे पौधे चुनना चाहिए, जिनके तने का घेरा लगभग ३.४ या ३.६ सम हो या उसकी मोटाई हाथ की छोटी अंगुली के समान हो। जब चश्मा जमेरी नीबू के पौधे पर चढ़ाया जाता है तो फल ढीले छिलकेवाले कुछ कम मीठे होते हैं, लेकिन पैदावार विशेष होती हैं। मीठे नीबू के पौधे पर चढ़ाया जाय तो फल मीठे और चिपके हुए छिलकेवाले होते हैं। माल्टा (मौसम्बी) का चश्मा मीठे नीबू पर ही ठीक होता है, इससे पेड़ छोटे होकर बहुत मीठे फल देते हैं, लेकिन पैदावार कुछ कम होती है।

चश्मा चढ़ानेवाली डाली पार्सल द्वारा कोयले के चूर्ण में बाहर से भी मंगवाई जा सकती है। पेड़ से पृथक् होने पर भी दो-तीन सप्ताह तक इसके चश्मों में उपज-शक्ति बनी रहती है।

संतरों के पौधे पौष-माघ में बीज लगाकर भी तैयार किये जाते हैं परंतु ऐसा करने से पेड़ देरी में फलते हैं और अधिक कांटेवाले हो जाते हैं, जिनसे कभी-कभी फलों में छेद हो जाते हैं। ऐसे पेड़ करीब दस-

---

१. हैदराबाद रियासत के अदीलाबाद जिले में संतरे का चश्मा कैथ के पौधे पर भी चढ़ाया जाता है।

२. Stevenson. S. A. 1948, Agri, Col. Mag. Vol.XXII p.186

बारह साल की आयु के होने पर फलते हैं । बीज से लगाने में विशेष लाभ यह होता है कि पेड़ की आयु अच्छी होती है। जहां कलमी पौधे की आयु वीस साल की होती है, वीजू की पचास-साठ साल की होती है, इसीसे असम, ब्रह्म-प्रदेश वगैरह में बीजू पेड़ ही ज्यादा लगाये जाते हैं। पौधों का चालान क्रेट में होना चाहिए । नजदीक होने से टोकरियों में भेजे जा सकते हैं।

जमीन और खाद—संतरे के लिए ऐसी दुमट मिट्टी, जिसमें नीचे की भूमि में चूने के कंकड़ हों और जिसमें पानी नहीं लगता हो, उत्तम होती है। गरमी में संतरे के लिए पंद्रह फुट और मौसम्बी के लिए लगभग वीस फुट की दूरी पर गढ़े वनवाने चाहिए। असम में संतरे दस फुट और दक्षिण भारत मे बीस फुट की दूरी पर लगाये जाते हैं। नागपुर में पंद्रह से अठारह फुट का अन्तर ठीक माना गया है । गढ़े दो-ढ़ाई फुट व्यास के तीन फुट गहरे होने चाहिए और प्रत्येक गढ़े की मिट्टी में दो सेर हड्डी का चूर्ण[1] पांच सेर राख और पचीस-तीस सेर गोवर का खाद मिलाना चाहिए। दो-तीन सप्ताह तक धूप खिलाने के वाद मिट्टी में खाद मिलाकर गढ़े भर देना चाहिए, फिर एक बारिश के वाद आवश्यकतानुसार खोदकर उन गढ़ों में पौधे लगाये जा सकते हैं । फल आने लगें उस वक्त से फसल ले लेने के बाद ही ज्येष्ठ (मई) के अन्त में जड़ें खोलकर एक-दो सप्ताह वाद उसमें खाद दे देना चाहिए। गोवर के खाद के साथ हड्डी का चूर्ण और राख भी दी जा सके तो उत्तम होगा । यदि खली मिल सके तो प्रत्येक पौधे पीछे दो सेर खली, उतनी ही राख और एक सेर हड्डी का चूर्ण देना चाहिए । कृत्रिम खादों

---

१. Plank and Turner (1936) Farming in South Africa में लिखते हैं कि फासफोरस के खाद से और खासकर हड्डी के चूरे से संतरों का मिठास बढ़ गया। लगभग २० सेर चूरा प्रति पेड़ डाला गया था।

में पाव-भर एमोनियम सलफेट या सोडियम नाइट्रेट, आधा सेर सुपर-फास्फेट और उतना ही पोटेशियम सलफेट भी देना चाहिए। कृत्रिम खाद या खली दी जाय तो जाड़े और गरमी की दोनों फसलें ली जा सकती हैं, परंतु पौधे के स्वास्थ्य के विचार से एक ही फसल लेना उत्तम होता है और वह भी गर्मी की फसल लेना ही विशेष लाभप्रद होगा। जब दोनों फसलें लेनी हों तो जड़ों को अधिक दिनों तक नहीं खोलना चाहिए और दोनों फसलों के फल तोड़ने के बाद ही मिट्टी में कृत्रिम खाद मिलाकर जड़े ढंक देनी चाहिए। गरमी की फसल प्राप्त करने के लिए वैशाख-ज्येष्ठ (अप्रैल-मई) में सिंचाई बंद करके बरसात के पहले खाद दे देना चाहिए। ऐसा करने से जून में फूल आयंगे, जिनसे नौ-दस महीने बाद मार्च-अप्रैल में फल मिलेंगे। यदि जाड़े की फसल लेनी हो तो पौष (दिसम्बर) में जड़े खोलकर खाद देने के पश्चात् सिंचाई शुरू कर देनी चाहिए। इससे माघ-फाल्गुन में फूल आकर जाड़े में फल मिलेंगे। जाड़े की फसल लेने के लिए गरमी में बराबर सिंचाई करनी पड़ती है। बरसात में संतरों को एक प्रकार का पतंग बहुत हानि पहुंचाता है। वह फलों में छेद कर देता है, जिससे फल पेड़ से गिर जाते हैं। इससे बचाने के विचार से गर्मी की फसल लेना ही उचित है।

पौधे लगाना—जहांतक हो बरसात में लगाना ठीक है, वैसे जाड़े में भी लगाये जा सकते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई साधारण होनी चाहिए। जाड़े की फसल के लिए फूल माघ (जनवरी) में और गरमी की फसल के लिए आषाढ़ (जून) में आते हैं। सिंचाई जाड़े और गरमी दोनों में नहीं तो गरमी में तो अवश्य करनी पड़ती है। गरमी की सिंचाई से, जैसाकि ऊपर बतलाया गया है, उसी हालत में छुटकारा हो सकता है जबकि सर्दी की फसल न ली जाय। छोटे पेड़ों की काट-छांट आकार के लिए की जाती है। बड़े पेड़ों में सूखी या व्याधिग्रस्त टहनियां काटनी चाहिए। पेड़ के धड़ पर या डालियों पर से कभी-कभी गोंद-सा पदार्थ निकलता है और पेड़ या

डाली मर जाती है। जब ऐसा होता हुआ दिखाई दे तो उस भाग को छील-कर वहां पर कार्बोलिक एसिड और पानी बराबर मिलाकर लगा देना चाहिए। इसके बाद ऊपर से मोम या अलकतरा लगा देना चाहिए। बोर्डो पेस्ट भी लगाना अच्छा होता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नींबू और संतरे के पेड़ों में बढ़ती हुई कोंपल और पत्ते तथा बनते हुए फल सूखने लगते हैं। ऐसी स्थिति में प्रति पेड़ दो छटांक तूतिये को पानी में घोलकर उस पानी से पेड़ के पास की मिट्टी को सींच देना चाहिए। बोर्डो पेस्ट भी इसके लिए अच्छा होता है।

फसल की तैयारी और चालान—पौधे लगाने के समय से चार-पांच साल में फल आना प्रारंभ करते हैं और साल में दो बार फलते हैं। पहली फसल के फल जाड़े में और दूसरी के गरमी (मार्च-अप्रैल) में मिलते हैं। प्रत्येक पेड़ से पांच सौ से हजार फल की प्राप्ति का अनुमान किया जा सकता है। फलों का चालान अधिकतर पुआल (Rice straw) या घास के साथ एक फुट व्यास की करीब डेढ़ फुट ऊंची टोकरियों में किया जाता है। यदि अधिक माल भेजना हो तो उपर्युक्त युक्ति ठीक है, वरना इस फल की चोरी बहुत होती है। इसलिए प्लाईवुड या देवदारू के बक्स में पुआल के साथ रखना चाहिए। चिकने कागज में लपेटा हुआ फल, नहीं लपेटे हुए फल की अपेक्षा, अधिक दिनों तक अच्छा बना रहता है। इसलिए अच्छे फलों को कागज में लपेटकर रखना चाहिए। फलों को तोड़ते ही यदि उन्हें सुहागे के घोल में (१०० भाग पानी और ८ भाग सुहागा) डुबोकर साफ पानी से धो लिया जाय और फिर भेजा जाय तो वे व्याधिकर्त्ता जन्तुओं के आक्रमण से बच जाते हैं। दूकान पर रखे जाने-वाले संतरों को उस कपड़े से, जिसमें थोड़ा मोम लगा लिया गया हो, घिस लिया जाय तो फलों पर चमक अच्छी आ जाती है। विदेशों में ऐसी क्रिया यन्त्रों द्वारा ब्रशों से की जाती है।

उपयोग और गुण—संतरे चूसकर खाये जाते हैं और माल्टा का

रस निकालकर पिया जाता है। छिलकों से खुशबूदार सत प्राप्त कर उसका मार्मलेड (एक प्रकार का मुरब्बा) बना सकते हैं। संतरा मीठा, ठंडा, पाचक और साफ पेशाब लानेवाला होता है। स्कर्वी आदि व्याधि का नाश करता है। सफर में सेवन करने से तबीयत अच्छी रहती है। व्याधि से उठे हुए लोगों के लिए माल्टा का उपयोग अच्छा होता है।

सपाटू, चीकू—Sapatoo—*Achras zapota*

सपाटू को बम्बई की तरफ चीकू कहते हैं। इसके पेड़ करीब पचीस फुट ऊंचे होते हैं। फल भूरे रंग का खुरदरा, एक इंच से डेढ़ इंच लम्बा और एक इंच व्यास का होता है। पके हुए फल के अंदर का गूदा भी भूरे रंग का होता है। प्रत्येक फल में तीन-चार काले-काले चमकीले बीज होते हैं। कच्चे फलों में चिकना दूध होता है। पौधे भेंट-कलम से या दाब-कलम से तैयार किये जाते हैं। कलम सपाटू, महुवा या खिरनी के पेड़ के साथ भाद्रपद (अगस्त) में बांध देनी चाहिए।

जमीन और खाद—दुमट और बलुआ-दुमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है, वैसे जिस जमीन में अधिक पानी न लगे उसमें ये हो जाते हैं। गढ़े बीस-पचीस फुट की दूरी पर आम के गढ़ों की भांति तैयार करने चाहिए।

पौधे लगाना—पौधा बरसात या जाड़े में लगाया जा सकता है।

सिचाई और काट-छांट—छोटे पौधों की सिंचाई ठीक से करनी चाहिए, बड़ों की नहीं करने से भी काम चल जाता है। काट-छांट साधारण सूखी टहनियों की होनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—पौधे लगाने के समय से पेड़ पांच-छः साल की आयु के होने पर फलते हैं और छः-सात साल तक कम ही फलते हैं। ये लगभग पचीस-तीस साल की आयु तक अच्छे फल देते रहते हैं और बाद में कम पड़ जाते हैं। प्रति वर्ष चैत्र-वैसाख (मार्च-अप्रैल) और श्रावण-भाद्रपद (जुलाई-अगस्त) में फल मिलते हैं, कहीं-कहीं और भी अधिक समय तक फल आते रहते हैं। एक पेड़ से एक

हजार फल के करीब प्राप्त हो जाते हैं। फलों का चालान घास-पात में रख-कर किया जा सकता है। जब फल के छिलकों पर से भूरा पदार्थ गिरने लगे तब इन्हें तोड़ना चाहिए। यदि फलों के छिलकों को खरोंचा जाय और वह हरा दिखे तो कच्चा होगा, अगर पीला दिखे तो समझना चाहिए ऐसे फल जल्दी और अच्छे पकेंगे। ऐसे फल घास में रख देने से तीन दिन में पक जाते हैं। पके फल एक दिन से अधिक नहीं टिक सकते। यदि शीत-भंडार में रक्खा जाय तो आयु कुछ बढ़ जाती है।

उपयोग और गुण—फल बड़े मीठे होते हैं। छिलका निकालकर खाये जाते हैं। इसकी लकड़ी भी मजबूत मानी गई है। फल पित्तनाशक तथा बुखार को मिटानेवाले होते हैं।

सिंघाड़ा Water-nut—*Trapa bispinosa*

बरसात के प्रारम्भ में इसके फल पोखरे या तालाब की मिट्टी में पांव से दबाकर गाड़ दिये जाते हैं। कुछ दिनों बाद पौधे निकल आते हैं, जिनके पत्ते पानी की सतह पर तैरते रहते हैं। सिंघाड़े में आश्विन में फूल आकर कार्तिक में फल आ जाते हैं। मार्गशीर्ष तक सब फल चुन लिये जाते हैं। एक लकड़ी के दोनों छोर पर दो उलटे घड़े बांधकर बीच लकड़ी पर चुननेवाला बैठ जाता है और एक हडिया अपने हाथ में लेकर पानी में अपने घड़ों का घोड़ा चलाता हुआ फल चुनता रहता है। कभी-कभी छोटी नौका भी उसके लिए काम में लाई जाती है।

उपयोग और गुण—हरे फल कच्चे या उबालकर खाये जाते हैं। सूखे हुए सिंघाड़े का आटा फलाहार के काम में लाया जाता है। सिंघाड़ा शीतल, भारी, वीर्यवर्धक, कफकारक, पित्त और रुधिर-विकार को मिटानेवाला होता है।

सेब—Apple—*Malus sylvestris*—*(pyrus malus)*

इसकी खेती ठंडे स्थानों में ही हो सकती है। भारत में कश्मीर, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के पहाड़ी भागों में होती है। दो-एक जातियां

ऐसी हैं जो कहीं-कहीं मैदानों में फल दे देती हैं। पौधे वीही, नासपाती, या इसी बीजू पौधे पर चैत्र-बैसाख (मार्च-अप्रैल) में चश्मा (रिंग ग्राफ्टिंग) चढ़ाकर तैयार किये जाते हैं। पौधों का चालान वक्सों में होना चाहिए। सेब के पौधे पर सेव की कलम चढ़ाने से पेड़ बहुत ऊंचे हो जाते हैं, इसलिए बहुधा वीही पर चढ़ाते हैं, ताकि पेड़ छोटे हों।

जमीन और खाद—दुमट और मटियार-दुमट जमीन इसके लिए अच्छी होती है। गढ़े पंद्रह-पंद्रह फुट की दूरी पर तीन फुट गहरे और तीन-चार फुट व्यास के तैयार किये जाते हैं। प्रत्येक गढ़े की मिट्टी में पत्ते और गोवर का सड़ा हुआ खाद करीब एक मन और दो-ढाई सेर हड्डी का चूर्ण मिला देना चाहिए। जो पौधे बीही पर तैयार न किये गए हों, उनके गढ़ों में बीस फुट का अन्तर ठीक होगा। फल आने लगें उस वक्त से प्रतिवर्ष पौष-माघ (दिसंबर-जनवरी) में खाद देना चाहिए। कृत्रिम खाद देना हो तो बीस-पचीस सेर नाइट्रोजन, तीस-पैंतीस सेर फा० पे० और करीब पचास सेर पो० आ० प्रति एकड़ पहुंचे इतना खाद देना चाहिए।

पौधे लगाना—इसके पौधे कार्तिक (अक्तूबर) से माघ (जनवरी) तक लगाये जाते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—आवश्यकतानुसार सिंचाई होनी चाहिए। फूल और फल आने लगे तव से विशेष पानी की आवश्यकता होती है।

फलों का स्वाद अच्छा बना रहे, इसलिए फल पकने लगे तब पानी कम देना चाहिए। काट-छांट, सूखी, घनी तथा अधिक लंबी टहनियों की पौष-माघ (दिसंबर-जनवरी) में होनी चाहिए और जड़ें भी उसी समय खोलनी चाहिए। टहनियों पर यदि फल आवश्यकता से अधिक हों तो कुछ फलों को जब वे आंवले इतने बड़े हो जाय उसी वक्त तोड़ देना चाहिए, ताकि बचे हुए फलों का आकार अच्छा हो।

आवश्यकता से अधिक फल तोड़ देने से फलों की बनावट ही अच्छी नहीं होती, बल्कि रंग भी अच्छा आता है। साधारणतः एक फल से दूसरे फल में लगभग छः इंच का अंतर उत्तम होता है।

फसल की तैयारी और चालान—पौधे लगने के समय से छः-सात साल में पेड़ फल देने योग्य हो जाते हैं और प्रति वर्ष गरमी के अंत से जाड़े के प्रारंभ तक फल मिलते रहते हैं। फलों का चालान पतले प्लाई वुड के वक्सों में होना चाहिए। प्रत्येक फल को रंगीन या सादे चिकने कागज में लपेटकर वक्सों में रखना ठीक होता है। सेव में भूरे-भूरे दाग लग जाते हैं और उसी स्थान से वे बिगड़ने लगते हैं, इसलिए प्रत्येक फल को कागज में लपेटना बहुत जरूरी है। वक्स में पहले कागज बिछाकर उसपर एक तह फलों की होनी चाहिए और फलों के बीच की खाली जगह लकड़ी के पतले-पतले छीलन से भर देनी चाहिए, जिसमें फल रगड़ खाकर बिगड़ने न पावें। इस तह के ऊपर एक दूसरा कागज रखकर फिर दूसरी तह रखनी चाहिए। एक वक्स में तीन तहों से अधिक नहीं होनी चाहिए।

उपयोग और गुण—सेव वैसे ही छीलकर खाये जाते हैं। इनका मुरब्बा भी बनाया जाता है। सेव पाचक, रुचिकारक, बलवर्धक और खून को बढ़ानेवाले होते हैं।

सूखे फल

अखरोट—Walnuts—*Fuglans regia*

इसकी खेती अफगानिस्तान में और फारस में बहुत होती है। भारतवर्ष में सीमा प्रांत, कश्मीर और उत्तर प्रदेश में हिमालय पर्वत पर कहीं-कहीं होती है। मैदानों में इसकी खेती नहीं हो सकती है।

जमीन और खाद—बलुआ दुमट जमीन इसके लिए अच्छी मानी गई है। गढ़े पचीस-पचीस फुट के अंतर पर तीन-चार फुट व्यास के तीन फुट गहरे बनाकर उनकी मिट्टी में एक मन के लगभग हड्डी-मिश्रित गोबर और पत्तों का खाद दे देना चाहिए। पौधे बीज से आसानी से तैयार हो जाते हैं।

बीज पहले वालू में लगाकर उन्हें ठंडे स्थान में रख देना चाहिए। जब वे निकल जायं (पांच-छः महीने में निकलते हैं) तबतक एक फुट की दूरी पर नर्सरी में लगाकर हर दूसरे साल स्थानांतरित करके चार-पांच साल की आयु के होने पर गढ़ों में लगाने चाहिए।

पौधे लगाना—बरसात या जाड़े में लगा सकते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—साधारण सिंचाई और पत्ते झड़ने लगें तब घनी और सूखी टहनियों की काट-छांट की जाती है।

फसल की तैयारी और चालान—इसके फल श्रावण से आश्विन तक मिलते रहते हैं। ज्यों-ज्यों फल गिरते जाते हैं, सुखाकर रख लिये जाते हैं। फलों का चालान बोरों में किया जाता है। अखरोट का गूदा या मींगी बक्सों में भेजना चाहिए।

उपयोग और गुण—हरे फलों का अचार बनाया जाता है। सूखे फल की मींगी जाड़ों के दिनों में खाई जाती है। खली पशुओं को खिलाई जाती है। पहाड़ी लोग तेल को खाने और जलाने के काम में लाते हैं। इसकी मींगी में पचास शतांश तेल रहता है। अखरोट वीर्यवर्धक, भारी, गरम और कफकारक होते हैं।

अंजीर—Figs—*Ficus carica*

इसकी खेती अफ्रीका के उत्तर में यूरोप के दक्षिण और एशिया के पश्चिमीय देशों में बहुत होती है। वहीं से हजारों रुपये के सूखे अंजीर भारतवर्ष में आते हैं। हिंदुस्तान में पंजाब, उत्तर प्रदेश, दक्षिण बंबई, बंगलौर आदि स्थानों में भी अंजीर हो जाते हैं। सूखे वातावरण में इसकी खेती अच्छी होती है। फलों के पकने के समय यदि बरसात आ जाय तो फल बिगड़ जाते हैं। पौधे डाली लगाकर या दाब-कलम से तैयार किये जाते हैं। कलमों का चालान छोटे बक्सों में कोयले के चूर्ण में किया जा सकता है। कलमे नर्सरी मे लगाकर पौधे तैयार करने चाहिए।

जमीन और खाद—बलुआ दुमट जमीन, जिसमें चूने की मात्रा अच्छी हो और पानी नहीं लगता हो, उसमें अंजीर अच्छे होते हैं। गर्मी में

पंद्रह-पंद्रह फुट की दूरी पर गढ़े बनवाने चाहिए, जो दो-ढाई फुट गहरे और उतने ही व्यास के हों। प्रत्येक गढ़े की मिट्टी में हड्डी-मिश्रित गोबर और पत्ते का खाद आधे मन के लगभग होना चाहिए। फल आने लगे उस समय से प्रति वर्ष माघ (जनवरी) महीने में भी कुछ खाद देना जरूरी है। यदि इस वक्त न दिया जाय तो बरसात में दे देना चाहिए।

पौधे लगाना—दो साल की आयु के पौधे बरसात में या जाड़े के अंत में लगाने चाहिए।

सिंचाई और कांट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। छोटे पौधे की काट-छांट ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें डेढ़-दो फुट का धड़ और उतनी ही लंबी शाखाएं हों। उपशाखाएं इतनी ऊंची हों कि पूरा पेड़ छः-सात फुट ऊंचा हो जाय।

फसल की तैयारी और चालान—रोपने के समय से दो-तीन साल बाद फल मिलना आरंभ होते हैं और प्रतिवर्ष चैत्र से ज्येष्ठ तक मिलते रहते हैं। कहीं-कहीं हलकी-सी बहार बरसात में भी आ जाती है, पर फल खट्टे होते हैं। फलों का चालान छोटी टोकरियों में किया जा सकता है।

अंजीर सुखाना—सीमाप्रांत की राह से अथवा बाहर से जो अंजीर आते हैं, वे सूखे हुए होते हैं। भारतवर्ष में सुखाने में अच्छी सफलता नहीं हुई है। ज्यों-ज्यों फल पकते जाते हैं, चटाइयों पर सुखाकर दबा दिये जाते हैं, जिससे वे चपटे होकर एक रस्सी में पिरोये जा सकें। सूखने पर फलों का वजन एक चतुर्थांश रह जाता है। ऐसे सुखाये हुए फल तीन-शतांश नमक के उबलते हुए पानी में धोये जाते हैं। ऐसा करने से वे जंतुरहित हो जाते हैं और उनकी ठहरने की शक्ति बढ़ जाती है।

उपयोग और गुण—ताजे फल वैसे ही खाये जाते हैं। सूखे फलों का सेवन दूध के साथ जाड़े में किया जाता है। अंजीर का शरबत बच्चों के लिए विशेष गुणकारी होता है। अंजीर हल्के दस्तावर होते हैं। इनसे खांसी की शिकायत मिट जाती है और स्वास्थ्य भी अच्छा हो जाता है।

काजू—Cashew-nut—*Anacardinm occidendtale*

इसकी जन्मभूमि दक्षिण अमरीका मानी गई है और वहीं से इसका आगमन भारतवर्ष में पुर्तगालियों द्वारा चार सौ वर्ष पूर्व हुआ है, ऐसा अनुमान है। इसकी खेती दक्षिण भारत में गोआ, मलावार, कोचीन, बंबई तक तथा मद्रास के कुछ हिस्सों में होती है। कहीं-कहीं बंगाल और उड़ीसा में भी इसके पेड़ जंगलों में पाये जाते हैं। ब्रह्मप्रदेश, लंका तथा अफ्रीका में भी इसकी खेती होने लगी है।

वर्तमान समय में उत्पादन के विचार से भारतवर्प का पहला स्थान है। लगभग छः लाख क्विन्टल काजू प्रतिवर्ष उपजती है।

इसके पेड़ तीस-चालीस फुट ऊंचे, चिकने पत्तेवाले होते हैं। जो काजू बाजार में बिकती है वह फल के अंदर की भूंजी हुई मींगी होती है। फलों की डंडी फूली हुई होती है। यह स्वाद में खट्टी होती है, फलों का रंग पीला, लाल, बोदे या सेन्दूरिया होता है।

काजू के पेड़ बलुआ कंकरीली जमीन में, जहां के पानी में खारापन हो और जहां समुद्र की हवा लगती हो, वहां अच्छे हो जाते हैं। इसके पौधे बीज से तैयार किये जाते हैं और बीज बरसात में बोये जाते हैं। पेड़ों में २० फुट का अंतर ठीक होता है।

मध्यप्रदेश के[२] होशंगाबाद जिले में काजू की खेती का प्रयत्न एक सज्जन ने किया। चार बार लगातार असफल रहे, परंतु धैर्य से काम लिया और अन्त में सफल हुए। सन् १९२४ में उन्होंने बीज से पौधे तैयार करके लगाये थे, जिनसे १९३२ में फल प्राप्त हुए। इस प्रयत्न से मालूम होता है कि काजू की खेती, प्रयत्न करने से जहां समुद्र की हवा नहीं लग सकती, वहां भी हो सकती है।

बीज लगाने के समय से तीसरे-चौथे साल में पेड़ फल देना प्रारंभ

---

२. The Nagpur Agricultural College Magazine, Vol. XIV, p., 63

कर देते हैं। दस वर्ष की आयु से अधिक फल मिलते हैं। प्रतिवर्ष गर्मी में फल मिलते रहते हैं और बरसात के पहले समाप्त हो जाते हैं।

जो फल गिर जाते हैं और जिन्हें लोग चुनकर बाजार में ले आते हैं, वे फल तो समूचे होते हैं अन्यथा उनका तेल निकालने के बाद निकटवर्ती बाजार में भेजे जाते हैं। भुंजी हुई छिलकारहित काजू की मींगी का चालान दूर-दूर तक होता है। फलों से लगभग एक-चौथाई से कुछ कम मींगी निकलती है। मींगी निकालने में टूटती भी है, लगभग सत्तर शतांश पूरी, बीस शतांश टूटी निकलती है। शेष हलके दर्जे की या खराब निकलती है।

उपयोग और गुण—भुंजी हुई मींगी खाई जाती है। डंठल का अचार बनाया जाता है। अफ्रीका में इससे शराब बनाते हैं। पेड़ से एक प्रकार का गोंद निकलता है, जो जिल्दसाजी के लिए अच्छा माना गया है, क्योंकि इससे पुस्तकों को कीट हानि नहीं पहुंचाते। छिलकों के तेल में लकड़ी को दीमक से बचाने का भी गुण है। काजू के तेल में बादाम के तेल के समान गुण हैं।

खुबानी जरदालू—Apricot—*Prunus armeniaca*

इसकी खेती सीमाप्रांत, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के ठंडे स्थानों में होती है। पेड़ आड़ू या आलूबुखारे के पौधों पर चश्मा चढ़ाकर (Ring-grafting) तैयार किया जाता है। यह क्रिया चैत्र-बैशाख में होनी चाहिए।

जमीन और खाद—बलुआ और मटियार को छोड़कर खुबानी के पेड़ सब प्रकार की मिट्टी में हो जाते हैं। गढ़े सेब के लिए जिस तरह तैयार किये जाते हैं, इसके लिए भी उसी तरह से तैयार करने चाहिए। बड़े पेड़ों की जड़ों में खोलकर खाद दे देना ठीक होगा।

पौधे लगाना—शरद् ऋतु में पौधे लगाये जाते हैं।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई गर्मी में होनी चाहिए। काट-छांट पौष-माघ (दिसम्बर-जनवरी) में आड़ू की भांति की जाती है।

फसल की तैयारी और चालान—आठ-दस साल की आयु के होने पर पेड़ फल देना प्रारम्भ करते हैं और प्रतिवर्ष ज्येष्ठ से भाद्रपद तक फल पकते रहते हैं। फल ज्यों-ज्यों पकते जाते हैं, तोड़कर मकानों की छतों पर सुखाये जाते हैं। ताजे फलों का चालान छोटे वक्सों में या टोकरियों में किया जाता है। इसका व्यवसाय सूखे फलों का विशेष होता है। जाड़े के दिनों में इसके फल का सेवन किया जाता है। फलों का चालान वोरों में किया जा सकता है।

उपयोग और गुण—फल का ऊपरी सूखा हुआ भाग मीठा होता है वही खाया जाता है। इस भाग के नीचे छोटी वादाम जैसी गुठली होती है, जिसके अन्दर की मींगी का स्वाद ठीक वादाम के स्वाद जैसा होता है। ताजे फल भी खाये जाते हैं। इनका मुरब्बा भी वनता है। खुवानी के फल बलवर्धक और दस्तावर होते हैं।

चिलगोजा—Chilgoza—*Pinus geradiana*

इसकी खेती भारतवर्ष में नहीं होती। अफगानिस्तान की तरफ होती है। फल अक्तूवर में पकते हैं। यदि फल भूंज दिये जायं तो छिलका जल्दी छूट जाता है और स्वाद भी अच्छा हो जाता है। इसमें भी तेल बहुत होता है। चिलगोजे बड़े ताकतवर होते हैं।

चिरौंजी (चारोली)—Chiraunji—*Buchanania latifolia*

चिरौंजी के पेड़ पचीस-तीस फुट ऊंचे होते हैं। कारो-मंडल मलावार, मैंसूरी और विंध्याचल पर्वत पर जंगलों में इसके पेड़ पाये जाते हैं। फलों का छिलका काफी कठोर होता है। मींगी तूवर के बीज जैसी होती है। भील या जंगल में बसनेवाले लोग जंगलों से लाकर अनाज, कपड़ा, नमक वगैरह के वदले में दे जाते हैं।

उपयोग और गुण—मींगी वैसे ही खाई जाती हे। इसे मिठाइयों में भी डालते हैं। दूध में डालकर भी खाई जाती है। मींगी दस्तावर होती है। जव शरीर पर वहुत जलन होती है तो इसका लेप लगाने से बड़ा फायदा होता है। दूध के साथ सेवन करने से बलवृद्धि होती है।

नारियल—Cocoanut—*Cocos nucifera*

इसकी खेती बंगाल, मद्रास, मलावार और कोनकन में बहुतायत से होती है। पौधे फलों से तैयार किये जाते हैं। पूर्ण वाढ़ पाये हुए नारियल जो कोंपल फेंक देते हैं वे ही लगाये जाते हैं। यदि कोंपल फेंकें हुए न हों तो अच्छे दूध से भरे हुए नारियल पानी में डाल दिये जाते हैं तो वे कोंपल फेंक देते हैं। कोंपल फेंके हुए नारियल को पहले नर्सरी में लगाते हैं और एक साल बाद निर्धारित स्थान पर लगा देते हैं।

जमीन और खाद—नारियल तरीदार वातावरण और दुमट या बलुवा-दुमट जमीन में अच्छे होते हैं। गढ़े बीस-बीस फुट के अन्तर पर तीन फुट गहरे और उतने ही व्यास के बनवाकर उनकी मिट्टी में एक सेर हड्डी का चूर्ण, आधा मन राख और एक मन गोवर का खाद मिलवा देना चाहिए। जब फल आने लगें उस वक्त से प्रतिवर्ष बरसात में आठ-दस सेर नारियल की खली अथवा चार-पांच सेर एरंडी की खली के साथ एक सेर हड्डी का चूर्ण या मछली का खाद और कुछ राख दी जाया करे तो अच्छे फल प्राप्त होते हैं।

पौधे लगाना—नारियल के पौधे बरसात के प्रारम्भ में लगा देने चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—काट-छांट तो कुछ नहीं करनी पड़ती, परन्तु जहां आवश्यकता हो वहां पानी पूरा देना पड़ता है।

फसल की तैयारी और चालान—नारियल के पेड़ लगाने के समय से पांच-छः साल की आयु के होने पर फल देते हैं और नौ-दस महीने तक फल देते रहते हैं। कहीं-कहीं इससे भी अधिक समय लगता है। नारियल पचहत्तर-अस्सी वर्ष की आयु तक अच्छे फल देते रहते हैं। बाद में फल कुछ कम हो जाते हैं। इसकी आयु सवासौ से डेढ़सौ वर्ष की मानी गई है। एक-एक पेड़ से पचहत्तर-अस्सी फल से लेकर सौ-सवासौ फल प्रति वर्ष मिल जाते है। फलों का चालान बोरों में किया जाता है।

उपयोग और गुण—हरे नारियल का रस पिया जाता है, जो मीठा

और ठंडा होता है। जव दूध सूख जाता है तो गूदा कुछ कठोर हो जाता है, जिसे गिरी या खोपरा कहते हैं। इसे वैसे ही खाते हैं या इससे चटनी, मिठाई वगैरह बनाकर काम में लाते हैं। गिरी से तेल निकाला जाता है, जो खाने, जलाने तथा साबुन बनाने के काम में लाया जाता है। छिलकों से हुक्का, चूड़ियां बनाई जाती है। फलों के ऊपर के सन से रस्सियां बनाते हैं। पूजन तथा अन्य कार्यों में नारियल का उपयोग बहुत होता है। नारियल का गूदा बलवर्धक, भारी, पित्तनाशक और दाह को मिटानेवाला होता है।

पिश्ता[1] Pistachionut—*Pistacia vera*

इसकी खेती अफगानिस्तान, फ़ारस, मेसोपोटोमिया और सीरिया की तरफ अधिक होती है। भारतवर्ष में अफगानिस्तान की तरफ से जाड़े में बहुत पिश्ते आते हैं। फारस में इसके जंगल-के-जंगल होते हैं। सीमा-प्रांत और बिलोचिस्तान में कहीं-कहीं जंगल में इसके पेड़ पाये जाते हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इसकी खेती भारतवर्ष में पहाड़ों पर हो सकती है। पिश्ते के फल दो प्रकार के होते हैं, एक जल्दी फूट जानेवाले और दूसरे कठिनाई से टूटनेवाले। बाजार में जो पिश्ता मिलता है, वह कठोर छिलके के अंदर की मींगी होती है। वह बादाम से भी अधिक महंगी बिकती है। पिश्ते ऐसे ही खाये जाते हैं, परंतु विशेषतः इनका उपयोग मिठाइयों में होता है। पिश्ते में करीब ५० शतांश तक तेल रहता है।

पिश्ते रक्त शुद्ध करनेवाले, बलवर्धक और कफनाशक होते हैं।

बादाम—Almonds—*Amygdalus communis*

इसकी खेती भूमध्य सागर के आस-पास के यूरोप तथा अफ्रीका के देशों में और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में विशेष रूप से होती है। अफगानिस्तान में भी काफी बादाम होते हैं और भारतवर्ष में बहुधा इधर से

---

१. Agriculture and Livestock in India, vol. VIII, Part I 1933, पृष्ठ ५९-६१ में इसकी खेती करने की विस्तृत युक्ति बताई गई है।

ही आते हैं। भारतवर्ष में काश्मीर में पहाड़ों पर भी इनकी खेती होने लगी है। कुछ अमरीकी जातियों की भी जांच हो रही है। केलीफोर्निया में श्रेष्ठ मानी गई 'नान परेल' नाम की जाति यदि काश्मीर में जम पायी तो बढ़िया कागज़ी बादाम होंगी।

साधारणत: हम बादाम को दो भागों में बांट सकते हैं—कठोर छिलकेवाली और कागजी। कागजी बादाम फूली हुई और ऐसे पतले छिलके-वाली होती है कि हाथ ने दवाकर उसे तोड़कर के गिरी निकाल लेते हैं। इनकी गिरी मोटी और अच्छी होती है। कठोर छिलकेवाली में कोई कड़वे भी होते हैं।

बादाम के पौधे अधिकतर बीज से तैयार किये जाते हैं। बीज़ नर्सरी में पौष (दिसम्बर) में बोते हैं। कहीं-कहीं बीज को विशेष प्रकार की क्रिया से बालू में अंकुरित करके भी नर्सरी में लगाते हैं। नर्सरी में जब पौधे एक साल के हो जाते हैं तो स्थायी स्थान पर लगाते हैं।

आड़ू या कड़वी बादाम के पौधों पर चश्मा चढ़ाकर भी पौधे तैयार किये जा सकते हैं, परंतु बीज से उगाने की युक्ति सरल है।

पौधे लगाना—इसके पौधे तीन फुट व्यास तैयार किये हुए गढ़ों में बीस-पच्चीस फुट की दूरी पर लगाना चाहिए।

बादामों में परागण शंकर-क्रिया द्वारा होता है, इसलिए कम-से-कम मुख्य जाति के बादाम के साथ दूसरी जाति के बादाम के पेड़ भी लगाने होते हैं।

सिंचाई—काश्मीर में बिना सिंचाई के ही उपजाये जाते हैं। काट-छांट विशेष नहीं करनी होती। कुछ घनी डालियों को निकाल देते हैं।

फसल का तैयारी—तीन-चार साल की आयु के पेड़ फल देना शुरू कर देते हैं। पर अच्छी उपज आठ-दस साल के पेड़ों से होती है। कश्मीर में औसत दर्जे अभी तीन किलो बादाम प्रति पेड़ मिल जाते हैं। बादाम से जाति-अनुसार तीस-पैंतीस से चालीस-पैंतालीस शतांश तक गिरी निकल जाती है।

भोटिया बादाम—Hazel-nut—*Corylus avellana*

इसके पेड़ कश्मीर से कुमायूं की पहाड़ियों तक जंगल में पाये जाते हैं। पेड़ दस-पन्द्रह फुट की ऊंचाई से लेकर तीस-चालीस फुट ऊंचे होते हैं।

इसके फल छोटे-छोटे होते हैं, जिनमें साठ शतांश तक स्नेह रहता है। तेल निकाला जाय तो पचास शतांश तक निकाला जा सकता है। तेल का उपयोग खाने तथा ओषधि के लिए किया जाता है। खांसी तथा पेट की शिकायतों में काम आता है।

इसमें नर और मादा फूल एक ही पेड़ पर होते हैं। इसे घेरे के लिए भी लगाते हैं। उस स्थिति में आठ-आठ फुट की दूरी पर लगाते हैं। जब बागीचों में लगाना हो तो पौधों का आकार बीस फुट का होना उत्तम होगा।

पेड़ पांच साल के होने पर फलने लगते हैं। आठ-दस साल के पेड़ों से प्रति पेड़ ढाई किलो फल मिल जाते हैं, जिन्हें मूंगफली की भांति भून-कर या तलकर खाते हैं।

चटनी, मुरब्बा आदि के लिए काम में लाये जानेवाले फल

आलूचा Plum—*Prunus domestica*
आलूबुखारा Plum—*Prunus Bokharensis*

इसकी भी खेती अफगानिस्तान की तरफ अच्छी होती है। उधर ही से सूखे फलों की आमद भारतवर्ष में होती है। भारतवर्ष में भी यह सब जगह हो जाता है और पेड़ आड़ू के पेड़ से कुछ छोटे होते हैं। इसके फल पीले, लाल और बैंगनी रंग के होते हैं। पौधे बीज, कलम या चश्मा (रिंग-ग्राफ्टिंग) चढ़ाकर तैयार किये जाते हैं। बीज बरसात में बो देने चाहिए। ये चार-पांच महीने में अंकुर फेंकते हैं। कलम जाड़े में और

चश्मा चैत्र-वैशाख में चढ़ाना चाहिए। चश्मा इसीके पेड़ पर या आड़ू के पेड़ पर चढ़ाया जाता है।

जमीन और खाद—वलुआ-दुमट या दुमट जमीन में ये हो जाते हैं। गढ़े आड़ू के लिए जिस रीति से तैयार किये जाते हैं, उसी रीति से इसके लिए भी करने चाहिए। इसके पेड़ आड़ू के पेड़ की अपेक्षा कुछ छोटे होते हैं, इसीलिए गढ़ों में पन्द्रह-पन्द्रह फुट का अंतर ठीक होगा। प्रतिवर्ष जब पत्ते झड़ने लगें उस समय जड़ें खोलकर खाद दे देना चाहिए।

पौधे लगाना—वरसात में या जाड़े के अंत में पौधे खेतों में लगाने चाहिए। वागीचों की सड़कों के किनारों पर लगा दिये जायं तो भी उत्तम होगा।

सिंचाई और काट-छांट—सिंचाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। फल वैठने लगें उस समय से जवतक पक न जायं खूव पानी देना चाहिए। काट छांट पौष-माघ में, जव पत्ते झड़ने लगें तव, करनी चाहिए। उस समय नई टहनियों का तीन-चौथाई भाग काट देना चाहिए, क्योंकि फल नई टहनियों पर नहीं पुरानी टहनियों पर ही आते हैं।

फसल की तैयारी और चालान—चार-पांच साल की आयु के होने पर पेड़ फल देते हैं और प्रतिवर्ष वैशाख-ज्येष्ठ में फल मिलते हैं। ताजे फलों का चालान छोटी-छोटी टोकरियों में और सूखे फलों का वोरों में किया जाता है।

उपयोग और गुण—ताजे फल वैसे ही खाये जा सकते हैं, परंतु विशेषत: इनका उपयोग चटनी, मुरब्बा इत्यादि वनाने के लिए किया जाता है। आलूवुखारा के फल ठंडे, पाचक, हल्के, दस्तावर और पित्त-नाशक होते हैं।

आंवला—Anvala—*Phyllanthus emblica*

आंवले दो प्रकार के होते हैं, एक छोटे और दूसरे वड़े। वड़े आंवले सुन्दरवन की तरफ वहुत होते हैं। ऐसे आंवलों को वनारसी आंवले भी कहते हैं। छोटे सभी जगह जंगलों में पाये जाते हैं। कहीं-कहीं वागीचों

में बड़े आंवले भी मिलते हैं। रंग के विचार से देखे जायं तो चमकदार, पीलापन लिये हुए, हरे कुछ लाली लिये हुए ऐसे तीन प्रकार के होते हैं। इनपर धारियां भी होती है। पौधे बीज से चश्मा चढ़ाकर या भेंट-कलम से तैयार किये जाते हैं। गरमी के प्रारंभ में ताजे बीज ही बोकर पानी देते रहना चाहिए। चश्मा जून में चढ़ाना चाहिए।

जमीन और खाद—इसके भी खेत-के-खेत नहीं लगाये जाते हैं। एक-दो पेड़ बड़े आंवले के साधारण पेड़ लगाने की रीति से लगा सकते है।

पौधे लगाना—दो-तीन साल का तैयार पौधा बरसात में लगाना चाहिए।

सिचाई और काट-छांट—पहले कुछ साल तक सिंचाई करनी पड़ती है। काट-छांट सूखी टहनियों की होनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—इसके पेड़ की बाढ़ बहुत जल्दी होती है। चार-पांच साल की आयु के होने पर पेड़ फलने लग जाते हैं। प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष से माघ-फाल्गुन (नवंबर से जनवरी-फरवरी) तक फल मिलते हैं। दक्षिण भारत में कहीं-कहीं साल-भर मिलते रहते हैं। फलों का चालान बहुधा बोरों में किया जाता है, परंतु टोकरियों में भेजना उत्तम होगा। काफी बाढ़ पाये हुए पेड़ से छः मन के लगभग फलों की पैदावार हो जाती है।

उपयोग और गुण—आंवले से चटनी, अचार-मुरब्बा बनाया जाता है। इनका उपयोग कई प्रकार की औषधि के लिए भी किया जाता है। आंवले का रस संतरा, नीबू या टमाटर से दस गुणा अधिक गुणदायक होता है। गरमी में इसके मुरब्बे का सेवन बड़ा लाभप्रद होता है। आंवले बलवर्धक, ठंडे, पित्त-नाशक, दस्तावर, अधिक पेशाव लानेवाले और वायुजनित रोगों को शांत करनेवाले होते हैं।

इमली—Tamarind—*Tamarindus Indica*

इसके पेड़ चालीस-पचास फुट से लेकर सत्तर-अस्सी फुट ऊंचे होते हैं। पेड़ बीज से तैयार किये जाते हैं। यदि कोई अच्छी मीठी इमली हो तो

इसका पौधा गूटी से तैयार किया जा सकता है। इसके भी खेत-के-खेत नहीं लगाये जाते। आवश्यकता होने से वगीचों के किनारे पर एक-दो पेड़ लगा दिये जा सकते हैं। इसकी विशेष देखभाल नहीं करनी पड़ती। लगाने के समय से दस-बारह साल में इमली का पेड़ फलता है। प्रतिवर्ष फरवरी-मार्च में फल मिलते हैं। एक पेड़ से पांच-छः मन इमली मिल जाती है। फलों का चालान वोरों में किया जाता है।

उपयोग और गुण—इमली का प्रयोग मद्रास में बहुत होता है। यह प्रायः प्रतिदिन काम में लाई जाती है। इमली से तरकारियां और दाल स्वादिष्ट की जाती है। इसकी खट-मीठी चटनी भी बनाई जाती है। कहीं-कहीं शरबत बनाकर भी पीते हैं। इसके फल बीजरहित करके नमक मिला-कर रख देने से कई महीने तक रह जाते हैं।

इमली रूखी, पाचक, अग्निदीपक, कृमिनाशक और दस्तावर होती है।

करौंदा—Karaunda—*Cariss carandas.*

इसके कहीं-कहीं जंगल-के-जंगल पाये जाते हैं। करौंदे दो प्रकार के होते है—एक बड़े और दूसरे छोटे। बड़े करौंदे कहीं-कहीं वगीचों में पाये जाते हैं, छोटे जंगलों में बहुत होते हैं। बड़े की अपेक्षा छोटे के फल अधिक मीठे होते हैं। पौधे बीज से तैयार किये जाते हैं। बीज आषाढ़-श्रावण में लगाये जाते हैं।

जमीन और खाद—करौंदे सब प्रकार की मिट्टी में हो जाते हैं। इनके भी खेत-के-खेत नहीं लगाये जाते। इच्छा होने से बस एक-दो पेड़, पेड़ लगाने की साधारण रीति से, लगा देने चाहिए।

पौधे लगाना—बीज बरसात में बोये जाते हैं। बीज बोकर या पौधे मिलने से पौधे लगा देने चाहिए।

सिंचाई और काट-छांट—पहले दो साल गरमी के दिनों में कुछ पानी देना चाहिए। बाद में नहीं देने से भी कुछ हानि नहीं है। काट-छांट पेड़ को अधिक नहीं फैलने देने के लिए होनी चाहिए।

फसल की तैयारी और चालान—लगाने के समय से तीन-चार साल

बाद फल लगना शुरू होते हैं और प्रति वर्ष वैशाख से आषाढ़ तक फल मिलते हैं। चालान निकटवर्ती बाजार में टोकरियों में किया जा सकता है।

उपयोग और गुण—पके हुए फल वैसे ही खाये जाते हैं। कच्चे का अचार, लूंजी (मीठी तरकारी) वगैरह बनाई जाती है। कच्चे फल खट्टे, भारी और कफ-कारक होते हैं। पके हुए फल मीठे, हलके और वातनाशक होते हैं।

कैथ कबीट—Wood-apple—*Limonia acidissma* *(Feronia elephantium)*

इसके पेड़ पचीस-तीस फुट से लेकर चालीस फुट ऊंचे होते हैं। फल बेल के फल जैसा होता है, लेकिन छिलका बेल के छिलके से कुछ कठोर, खुरदरा और सफेद रंग का होता है। पौधा बीज से तैयार किया जाता है। कैथ सब प्रकार की जमीन में हो जाता है। प्रत्येक फल के बागीचे में एक-दो पेड़ साधारण रीति से बरसात में लगा देने चाहिए। आठ-दस साल में पेड़ फल देने योग्य हो जाते हैं और आश्विन-कार्तिक में फल मिलते हैं।

उपयोग और गुण—पक्के फलों के गूदे की चटनी बनाई जाती है। कुछ लोग इन्हें वैसे ही खा जाते हैं। पेचिश और दस्त की शिकायत में बेल की भांति कच्चे फल का सेवन लाभप्रद होता है। पक्के फल पाचक होते हैं।

बाम्पी—Ampeech—*Cookia punetata*

इसका फल लीची के फल के आकार का होता है और स्वाद में खट्टा होता है। प्रत्येक फल में तीन बीज होते हैं। इसके पौधे बीज से तैयार किये जाते हैं। बीज ताजे ही आषाढ़-श्रावण में लगा देने चाहिए। साधारण सिंचाई करते रहने से चार-पांच साल में पेड़ फल देने योग्य हो जाते हैं और प्रति वर्ष आषाढ़-श्रावण में फल मिलते रहते हैं।

उपयोग—फलों का अचार बनाया जाता है। इससे तरकारियां खट्टी और स्वादिष्ट की जाती हैं।

परिशिष्ट—१

वनस्पति-शास्त्रानुसार फलों के वृक्षों का वर्ग-निर्माण

Anacardiaceæ	आम, काजू, चिरौंजी, पिस्ता
Annonaceæ	रामफल, शरीफा
Apocynaceæ	करौंदा
Bromeliaceæ	अनानास
Caricaceæ	पपीता
Cucurbitaceæ	ककड़ी, खरबूजा, तरबूज, दिलपसंद, रैंता
Ebenaceæ	तेंदू
Euphorbiaceæ	आंवला
Oxalidaceæ	कमरख
Juglandaceæ	अखरोट
Leguminosæ	इमली
Lythraceæ	अनार
Moraceæ	केला
Myrtaceæ	अंजीर, शहतूत
Musaceæ	अमरूद, गुलाबजामुन, जामुन
Onagraceæ	सिंघाड़ा
Palmæ	खजूर, नारियल
Rhamnaceæ	बेर
Rosaceæ	आड़ू, आलूबुखारा, जरदालू नासपाती, बदाम, बीही, ब्लेकबेरी, लोकाट, शफतालू, स्ट्राबेरी, सेब
Rutaceæ	कैथ, चकोतरा, तुरंज, नीबू, बेल, वाम्पी, संतरा
Sapindaceæ	लीची
Sapotaceæ	गूजबेरी
Solonnaceæ	खिरनी, चीकू, सपाट्ट
Tiliaceæ	फालसा
Urticaceæ	कटहल
Vitaceæ	अंगूर

परिशिष्ट—२

मुख्य-मुख्य फलों की

नाम फल	पृष्ठ	पौधे लगाने का समय	पौधा कैसे तैयार किया जाता है	पौधों का अन्तर
				फुट
अंगूर	११६	बरसात में या जाड़े के आरम्भ में	डाली, दाब-कलम या गूटी	८×८
अंजीर	१६०	बरसात में	डाली या दाब-कलम	१५×१५
अमरूद	१२३	बरसात में या जाड़े के अन्त में	बीज या भेंट-कलम	१८×१८
अनानास	१२६	भाद्रपद	सकर्स	२×२
अनार	१२८	बरसात में	बीज, डाली या दाब-कलम	१५×१५
आड़ू	१२९	बरसात या जाड़े में अन्त में	चश्मा चढ़ाकर (Ring grafting)	२०×२०
आम	१३०	बरसात में या जाड़े के अन्त में	भेंट-कलम	बीजू ४०×४० कलम ३५×३५
आलूबुखारा	१६८	बरसात में या जाड़े के अन्त में	चश्मा चढ़ाकर (Ring-grafting)	१५×१५

खेती का नक्शा

फल-प्राप्ति का समय	पौधे लगाने के समय से फलने का समय	व्यावसायिक दृष्टि से पौधों के फलने की अवधि	कैफियत
	वर्ष	वर्ष	
गर्मी में	२—३	४०—५०	सीमा प्रांत में भाद्रपद और आश्विन में फलता है
चैत्र से जेष्ठ	२—३	—	
श्रावण-भाद्रपद और पौष-माघ	बीजू ५—६ कलमी ३—४	३०—३५ २०—२५	
श्रावण से आश्विन	१।	३—४	
श्रावण से कार्तिक	४—५	४०—५०	
वैशाख-ज्येष्ठ	—४	७—८	
ज्येष्ठ से श्रावण-भाद्रपद	बीजू १०—१२ कलमी ५—६	बीजू १००-१२५ कलमी ५०-६०	सीमा प्रांत में भाद्रपद से कार्तिक तक फल मिलते हैं। दक्षिण भारत में चैत्र-वैशाख में फल मिलते हैं।
वैशाख-ज्येष्ठ	४—५	७—८	

नाम फल	पृष्ठ	पौधे लगाने का समय	पौधा कैसे तैयार किया जाता है	पौधों का अंतर
				फुट
आंवला	१६६	वरसात में	बीज या भेंट-कलम	(एक-दो पेड़)
कटहल	१४०	,, ,,	बीज	(एक-दो पेड़)
केला	१४२	,, ,,	सकर्स	१०×१०
काजू	१६२	,, ,,	बीज	२०×२०
खजूर	१४५	,, ,,	सकर्स	२०×२०
खिरनी	१४६	,, ,,	बीज	(एक-दो पेड़)
खुवानी	१६३	जाड़े में	चश्मा चढ़ाकर	१५×१५
गुलावजामुन	१५०	वरसात में	बीज या दाव-कलम	१५×१५
चकोतरा (ग्रेप फ्रूट)	१५१	,,	चश्मा चढ़ाकर	२०×२०
जामुन	१५२	,,	बीज	(एक-दो पेड़)
नारियल	१६५	,,	फल से	२०×२०
नासपाती	१५६	पौष-माघ	चश्मा (Ring-grafting)	२०×२०

फल-प्राप्ति का समय	पौधे लगाने के समय से फलने का समय	व्यावसायिक दृष्टि से पौधों के फलने की अवधि	कैफियत
	वर्ष	वर्ष	
मार्गशीर्ष से माघ-फाल्गुन	४—५		
वैशाख-ज्येष्ठ से श्रावण-भाद्रपद	७—८		
करीब साल-भर	१—२	५—६	एक पेड़ एक ही बार फलता है परन्तु पास में जो नये पौधे निकलते रहते हैं, वे फल जाते हैं।
चैत्र से ज्येष्ठ	४—५	३०—४०	
ज्येष्ठ-आषाढ़ से आश्विन	१५—२०	७०—८०	कहीं-कहीं फाल्गुन-चैत्र में भी फल मिल जाते हैं।
ज्येष्ठ	१०—१२		
ज्येष्ठ से भाद्रपद	८—१०		
ज्येष्ठ-आषाढ़ भाद्रपद से कार्तिक	१४—१५ कलमी ५—६		
आषाढ़	१०—१२		
जाड़े में	५—६	७५—८०	
आषाढ़ से भाद्रपद	६—७		

नाम फल	पृष्ठ	पौधे लगाने का समय	पौधा कैसे तैयार किया जाता है	पौधे का अंतर
				फुट
नींबू	१५७	बरसात में या जाड़े के अंत में	बीज या गूटी	१५×१५
पपीता	१६०	बरसात में या जाड़े के अंत में	बीज	१०×१०
फालसा	१६४	जाड़े के अंत में	बीज	८×८
बेर	१६६	बरसात में या जाड़े के आरंभ में	बीज या चश्मा (Ring-grafting)	२०×२०
बेरी-गूज	१६८	बरसात के अंत में	बीज से	२×३
बेरी-स्ट्रा	१७०	जाड़े के आरंभ में	जड़वाली लता (Runners) बीज	१। से १॥
बेल	१७१	बरसात में	बीज	(एक-दो पेड़)
रामफल	१७३	बरसात में	गूटी या दाव-कलम	१५×१५
लीची	१७५	बरसात में	बीज गूटी या भेंट-कलम	२५×२५
लोकाट	१७७	जाड़े के अंत में	बीज	२०×२०
शरीफा	१७८	बरसात में	डाली से, बीज से	१५×१५
शहतूत	१७९	बरसात में	चश्मा चढ़ाकर	(एक-दो पेड़)
संतरा(माल्टा मौसम्बी)	१८१	बरसात में	या बीज से	१८×१८
सपाटू(चीकू)	१८६	बरसात या जाड़े में	भेंट-कलम	१५×२५
सेव	१८७	जाड़े में	चश्मा चढ़ाकर	१५×१५

फल-प्राप्ति का समय	पौधे लगाने के समय से फलने का समय	व्यावसायिक दृष्टि से पौधों के फलने की अवधि	कैफियत
	वर्ष	वर्ष	
श्रावण-भाद्रपद	बीजू ६—७	३०—४०	
पौष-माघ	कलमी ३—४	१५—२०	
जाड़े के अन्त में	१—१॥	३—४	
चैत्र-वैशाख	३—४	४—५	
माघ से चैत्र	बीजू १०—१२ कलमी ६—७		
पौष से फाल्गुन	३—४ महीने में	१	पहाड़ों पर पौधे आश्विन-कार्तिक में लगाये जाते हैं
चैत्र-वैशाख (मैदान) माघ-फा० (पहाड़)	(चार-पांच महीने में)	१	
वैशाख-जेष्ठ	७—८	—	
फाल्गुन-चैत्र	५—६	१५—२०	
जेष्ठ-अषाढ़	५—६	५०—६०	
फाल्गुन-चैत्र	५—६	३०—४०	
श्रावण भाद्रपद से कार्तिक-अगहन	५—६	१५—२०	
चैत्र-वैशाख	३—४	—	
कार्तिक से पौष	बीजू १०—१२	४०—५०	
चैत्र-वैशाख	कलमी ४—५	१५—२०	
चैत्र-वैशाख	५—६	२०—२५	
कार्तिक से माघ	६—७		

परिशिष्ट—३

फलों के पोषक द्रव्य

शरीर की वनावट, वाढ़ तथा जीर्णोद्धार के लिए मनुष्यों को भोजन करना पड़ता है, जिसके द्वारा निम्नलिखित द्रव्य पहुंचाये जाते हैं।

जल, आमिषजातीय (Proteids), सर्कराजातीय (Carbohydrates), स्नेह (Fats), तंतुयुक्त (Fibre), कुछ लवण (Salts) और खाद्योज, (Vitamins) इत्यादि।

जल—इसमें खाद्य पदार्थ घुलते हैं और घुले हुए पदार्थों का शोषण शरीर के अवयव करते हैं। जल से ही रक्त का दौरा वना रहता है और इसीसे पसीने द्वारा अनावश्यक पदार्थ शरीर से वाहर निकलते हैं। मल-मूत्र द्वारा जो अनावश्यक पदार्थ फेंके जाते हैं उसमें भी जल की आवश्यकता होती है।

आमिषजातीय पदार्थ—इनका दूसरा नाम मांसोत्पादक पदार्थ है। शरीर की वाढ़ के लिए तथा परिश्रम करने से पुट्ठों तथा अन्य अंगों का जो ह्रास होता है उसकी पूर्ति इन्हीं पदार्थों से होती हैं।

सर्करा जातीय और स्नेह—इनसे शरीर में उष्णता वनी रहती है और ये काम करने की शक्ति पैदा करते हैं। स्नेह में निरे सर्कराजातीय पदार्थों से सवा गुनी शक्ति विशेष होती है।

तंतुयुक्त—इनमें पोषण शक्ति तो नहीं होती, परंतु मल त्यागने में ये सहायक होते हैं।

लवण—ये अम्ल तथा धातु या क्षार के मेल से वने हुए होते हैं। ये कई होते हैं, परंतु इनके मुख्य तत्व तीन हैं—अम्लों में फासफोरस और धातुओं में खटिक (चूना) और (लोहा)। खाद्य पदार्थों में ये तीन विशेष तत्व रहते हैं। इनके सिवा जो नमक खाया जाता है उसके द्वारा सोडियम (Sodium) और क्लोरीन (Chlorine) की पूर्ति होती है जिसकी

आवश्यकता भी शरीर को अत्यंत होती है। फासफोरस की आवश्यकता दिमाग की बनावट में होती है। चूने के साथ इसके मेल से हड्डियां बनती हैं। लोहे का संबंध रक्ताणु की बनावट से है। तांबे के अभाव में लोहे का उपयोग नहीं हो सकता, इसलिए पदार्थों में कुछ तांबा भी रहता है परंतु बहुत थोड़ी मात्रा में इसकी आवश्यकता होती है।

खाद्योजों का वर्णन परिशिष्ट ४ में दिया हुआ है।

मुख्य-मुख्य फलों के पोषक द्रव्यों की मात्रा अगले पृष्ठ में दी गई है।

मुख्य-मुख्य फलों के पोषक द्रव्यों की मात्रा:

ये अंक फलों का जो अंग उपयोग के योग्य होता है, उसके हैं। (स्मरण रहे कि ये मात्राएं फलों की जाति आयु, जल-वायु, तथा भूमि की जाति-अनुसार न्यूनाधिक हो सकती हैं। तुलनात्मक दृष्टि से अंक उपयोगी होंगे।)

नाम फल	जल	आमिष-जातीय	सर्करा जातीय	स्नेह	तन्तु-युक्त	खनिज द्रव्य		
						फासफोरस (P)	चूना (Ca)	लोहा (Fe)
	%	%	%	%	%	%	%	%
अखरोट	४.५	१५·६	११·०	६४.५	२.६	०.३८	०.१०	.००४८
अंगूर नीले	८५.५	०.८	१०.२	०.१	३.०	०.०२	०.०३	.०००४
अंजीर ताजे	८०.८	१.३	१७.१	०.२	—	०.०३	०.०६	.००१२
अनानास	८६.५	०.६	१२.०	०.१	—	०.०१	०.०२	.०००९
अमरूद	७६.१	१.५	१४.५	०.२	६.९	०.०४	०.०१	.००१०
अनार	७८.०	१.६	१४.६	०.१	५.१	०.०७	०.०१	.०००३
आड़ू	९०.१	१.५	७.६	०.२	—	०.०३	०.०१	.००१७
आम	८६.१	०.६	११.८	०.१	१.१	०.०२	०.०१	.०००३
आलूबुखारा	८९.८	०.७	८.९	०.२	—	०.०२	०.०२	.०००५
आंवला	८१.२	०.५	१४.१	०.१	३.४	०.०२	०.०५	.००१२
इमली	२०·९	३.१	६७.४	०.१	५.६	०.११	०.१७	.०१०९
कटहल	७७.२	९.८	१८.९	०.१	१.१	०.०३	०.०२	.०००५
कमरख (बिलिम्बी)	९३.३	०.५	४.९	०.२	०.४	०.०१	०.०१	.०००६

काजू	५.९	२१.२	२२.३	४६.९	१.३	०.४५	०.०५	.००५०
केला	७३.४	१.१	२४.७	०.१	—	०.०३	०.०१	.०००५
खजूर	२६.१	३.०	६७.३	०.२	२.१	०.०८	०.०७	.०१०६
चकोतरा	८८.०	०.६	१०.२	०.१	०.६	०.०३	०.०३	.०००१
जामुन	७८.२	०.७	१९.७	०.१	०.९	०.०१	०.०२	.०००१
तेंदु	७९.६	०.८	१९.०	०.२	—	१.०१	०.०१	.०००३
दाख	१८.५	२.०	७७.३	०.२	—	०.०८	०.१०	.००४०
नारियल (गड़ी)	३६.३	४.५	१३.०	४१.६	३.६	०.२४	०.०१	.००१७
नासपाती	८६.९	०.२	११.५	०.१	१.०	०.०१	०.०१	.०००७
नीबू कागजी	८४.६	१.५	१०.९	१.०	१.३	०.०२	०.०९	.०००३
नीबू जमेरी	८५.०	१.०	११.१	०.९	१.७	०.०१	०.०७	.००२३
पपीता	८९.६	०.५	९.५	०.१	—	०.०१	०.०१	.०००४
पिश्ता	५.६	१९.८	१६.२	५३.५	२.१	०.४३	०.१४	.०१३७
वादाम	५.२	२०.८	१०.५	५८.९	१.७	०.४९	०.२३	.००३५
वेर	८५.९	०.८	१२.८	०.१	—	०.०३	०.०३	.०००८
मकोय	८२.७	१.८	११.५	०.२	३.२	०.०६	०.०१	.००१८
रामफल	७६.८	१.४	२०.९	०.२	—	०.०१	०.०१	.०००६
लोकाट	८७.४	०.७	१०.२	०.३	०.९	०.०२	०.०३	.०००७
संतरा	८७.८	०.९	१०.६	०.३	—	०.०२	०.०५	.०००१
सीताफल	७३.५	१.६	२३.९	०.३	—	०.०४	०.०२	.००१०
सेव	८५.५	०.३	१३.४	०.१	—	०.०२	०.०१	.००१७
स्ट्रावरी	८७.८	०.७	९.८	०.२	१.१	०.०३	०.०३	.००१८

१. ये अंक एकरायड महोदय के हेल्थ बुलेटिन नं० २३, १९४१ से लिये गए हैं।

परिशिष्ट—४

फल और खाद्योज (विटामिंस)

उत्तम स्वास्थ्य के लिए प्राणियों के आहार में एक प्रकार के वे पदार्थ रहते हैं जिन्हें 'खाद्योज या विटामिंस' कहते हैं। ये होते तो हैं बहुत सूक्ष्म मात्रा में, परंतु इनका भोजन में होना अत्यंत ही आवश्यक है। इसके अभाव में न तो शरीर की बाढ़ ही अच्छी होती है और न बनावट। व्याधियों से बचने की शक्ति घट जाती है और सूखा, बेरी-बेरी, स्कर्वी पेलेग्रा और कई प्रकार के चर्म-रोग इत्यादि व्याधियां आक्रमण कर बैठती हैं।

खाद्य वस्तुएं अनेक हैं और हमारा भोजन भी विशेष नहीं तो पांच-सात वस्तुओं के मिश्रण का अवश्य होता है, जैसे आटा, दाल, चावल, दूध, घी, मट्ठा, फल, सब्जी, मांस-मछली इत्यादि।

खाद्योज के गुण की जांच से यह ज्ञात हुआ कि भोज्य वस्तुओं को पकाने से खाद्योज का कुछ अंश नष्ट हो जाता है। उपर्युक्त वस्तुओं में फल ही ऐसे हैं, जो बिना पकाये काम में लाये जाते हैं। इनके खाद्योज पूर्ण मात्रा में शरीर को मिल जाते हैं। यही कारण है कि जो लोग भोजनो-परांत फलों का सेवन करते रहते हैं, उनका स्वास्थ्य उत्तम बना रहता है।

खाद्योज कई प्रकार के हैं और उनका नामकरण अधिकतर अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षरों से किया हुआ है, जैसे खाद्योज 'ए', 'बी,' 'सी', इत्यादि।

यहांपर हमारा प्रयोजन फलों के खाद्योज से है और उन्हींपर हमें विचार करना है, परंतु इसके पहले कि हम भांति-भांति के फलों में उनकी न्यूनाधिकता का विचार करें, संक्षेप में प्रत्येक के गुणों को जान लेना चाहिए, ताकि पाठकों को उनका महत्व ज्ञात हो जाय।

खाद्योज 'ए'—इनका संबंध आंख की रोशनी से बहुत है। इसके अभाव में आंखें कमजोर हो जाती हैं और किसी-किसीको तो रतौंधी आने लग जाती है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो रंग नहीं पहचान सकते। उसका भी मुख्य कारण इस खाद्योज का अभाव या कमी है। इनके सिवा निम्नलिखित लक्षण पाये जायं तो समझना होगा कि हमारे शरीर में खाद्योज 'ए' की कमी है।

आंखों का फूलना, सिर में दर्द रहना, बालों की चमक का कम पड़ना अथवा उनका गिरना, त्वचा में रूखापन, थोड़े परिश्रम से थक जाना, बार-बार सर्दी लग जाना, खांसी आना, दांतों का खराब हो जाना और गिर जाना, बच्चों की बाढ़ का रुकना और वजन नहीं बढ़ना, उनके फेफड़े या अंतड़ियों का बिगड़ना, फोड़े-फुंसी इत्यादि।

ऐसे लक्षण दिखाई दें तो उन पदार्थों का सेवन विशेष करना चाहिए जिनमें खाद्योज 'ए' अधिक हो।

यथार्थ में देखा जाय तो फलों में खाद्योज 'ए' तो नहीं होते, परंतु उनका अग्रगामी केरोटीन (Carotene) नाम का पदार्थ होता है, जिससे यकृत (कलेजा) खाद्योज 'ए' बना लेता है।

खाद्योज 'ए' निम्नलिखित फलों में पाये जाते हैं। यह सूची खाद्योज के परिमाणानुसार दी है अर्थात् सबसे पहले फल में अधिक तथा आखिरी फल में कम खाद्योज होंगे। अन्य खाद्योज की सूची में भी यही क्रम रहेगा।

खुबानी, आम, पपीता, तेंदु, पीला आड़ू, स्ट्राबेरी, कटहल, संतरा, लाल केला, अंजीर, पिश्ता, कमरख, आलूबुखारा, चकोतरा, कच्चा आम, केला, तरबूज, काजू, इमली, बेर, आनानास, कागजी नीबू, अंगूर, नासपाती, अखरोट इत्यादि।

खाद्योज 'बी'—इनके अभाव से बेरी-बेरी नाम की व्याधि आक्रमण कर बैठती है। जब शरीर निर्बल होता नजर आये, स्मरण-शक्ति कम हो जाय, सिर में और अन्य अंगों में दर्द हो, हाथ-पैर में जलन अथवा बार-बार झिन-झिनी आये, पैर और मुंह फूल जाय, कब्जियत रहे, शररी

का वजन घटने लगे, भूख की कमी, श्वास जल्दी-जल्दी चलने लगे, दिल की धड़कन वढ़ जाय या कम हो जाय, स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाय तो समझना चाहिए कि हमारे शरीर को खाद्योज 'वी' की आवश्यकता है।

खाद्योज 'वी' निम्नलिखित फलों में पाये जाते हैं—अखरोट, वादाम, आम, संतरा, अनानास, खुवानी, खजूर, पपीता, अंजीर, खरवूजा, तरवूज, आलूवुखारा, अंगूर, केला, सेव, नीवू, पीला आड़ू, नासपाती, स्ट्रावेरी।

खाद्योज 'सी'—इनके अभाव में 'स्कर्वी' नाम की व्याधि हो जाती है। दांतों की पेढ़ियों का फूलना, उनमें घाव का होना अथवा दांतों का जल्दी गिरना, दांतों से खून का वहना, श्वास में वदवू आना, जीभ का फूल जाना, मुंह पर छोटी फुंसियों का होना, त्वचा का रूखापन, आंखों में दर्द, भूख की कमी, कब्जियत रहना, तिल्ली का वढ़ जाना, जोड़ों में दर्द होना, स्त्रियों में मासिक स्राव की अधिकता और कमजोरी इत्यादि लक्षण खाद्योज 'सी' की कमी या अभाव दर्शाते हैं।

निम्नलिखित फलों में खाद्योज 'सी' पाये जाते हैं।

आंवला, अमरूद, संतरा, कागजी नीवू, अनानास, स्ट्रावेरी, मकोय, पपीता, जमेरी नीवू, चकोतरा, अनार, आम पक्का, केला, नासपाती, कच्चा आम, नीले अंगूर, सेव, अंजीर, तरवूज, आड़ू, आलूवुखारा।

खाद्योज 'डी'—हड्डियों की वनावट में इनका वहुत हाथ है। वच्चों को जो सूखा रोग हो जाता है वह खाद्योज 'डी' के अभाव से ही होता है। हड्डियां कमजोर हो जाती हैं। दांत ठीक से नहीं वन पाते, सिर वड़ा हो जाता है, पसलियां दव जाती हैं, पेट निकल आता है और स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। खाद्योज 'डी' फलों में नहीं के वरावर ही होते हैं। परंतु चूंकि ये एक मुख्य खाद्योज में से है, इसका वर्णन यहां दिया गया है।

खाद्योज 'जी'—इन्हें खाद्योज 'वी'₂ भी कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'व्यूटी विटामिन्स' (अर्थात् सुन्दरता लानेवाले खाद्योज) भी हैं। इसके

अभाव से पाचन-शक्ति विगड़ जाती है, कमजोरी मालूम पड़ती है, वजन घट जाता है, मुंह और नाक के पास की चमड़ी फट जाती है और मोतियावीन या आंख में फूले की व्याधि हो जाती है।

खाद्योज 'जी' निम्नलिखित फलों में पाये जाते हैं—पपीता, खुवानी केला, नासपाती, अंजीर, सेव, आम, पीले आड़ू, ताजे जरदालू, खजूर, ताजे अंजीर, आलूवुखारा, अनानास, तरवूज, संतरा।

परिशिष्ट—५

भिन्न-भिन्न राज्यों के प्रख्यात फल

नाम राज्य	नाम फल
असम	अनानास, केला, संतरा
काश्मीर	अलूचा, खूबानी, नासपाती, सेव
पंजाब	माल्टा, सेव
बंगाल	केला, नारियल, तरबूज, संतरा
बंबई	अंगूर, अंजीर, अनार, आम, काजू, केला, मौसंबी, सपाटू
बिहार	आम, लीची
मध्य प्रदेश	बेर, संतरा
मद्रास	अंगूर, अनानास, आम, केला, नारियल, नासपाती संतरा, स्ट्रबेरी
उत्तर प्रदेश	अनानास, अमरूद, आम, खरबूजा, खुबानी, नासपाती, लीची, लोकाट, सेव, स्ट्राबेरी
हैदराबाद	अंगूर, संतरा

परिशिष्ट—६

विभिन्न राज्यों में मुख्य-मुख्य फलों की विख्यात जातियां[1]

अंगूर देशी (बीजवाले)

वम्बई : भोकड़ी या हरा नासिक—फल गोल, रंग हरा, छिलका मोटा, वीज वड़ा, स्वाद खटमीठा ।

पाचा द्राक्ष—भोकड़ी जैसा

फाकड़ी—फल अंडाकृति, रंग हरा, छिलका पतला स्वाद मीठा ।

पांढरे साहेवी—फल वड़ा, रंग सफेद, स्वाद मीठा, काली साहेवी—फल लम्वा, रंग वैंगनी, स्वाद मीठा ।

कंधारी—फल अंडाकृति, रंग वैंगनी, छिलका मोटा, स्वाद मीठा।

मैसूर : वंगलोर वैंगनी—गोल, रंग बैंगनी, छिलका मोटा, स्वाद मीठा ।

हैदरावाद : अनावेशाही—गोल, रंग सफेद, छिलका पतला, स्वाद मीठा,

पंजाव : खवीली—फल लम्वा, रंग पीला, मीठा,

दाख—गोल, रंग वैंगनी, छिलका मोटा, स्वाद खटमीठा ।

---

१. Fruit culture in India 1963. और Horticultutre in Central India 1963 के दोनों I.C.A.R. Publications से सहायता ली गई है ।

अंगूर विदेशी

किसमिस बेदाना—फल बीजरहित, रंग मोतिया स्वाद मीठा।

ग्रासकोलमेन—गोल बड़ा, रंग काला, मीठा,

मसकतहेमवर्ग, ब्लेकहेमवर्ग, ब्लेकप्रिंस, फोस्टर्स सीडलिंग।

अमरूद

उत्तर प्रदेश : सफेदा—गोल, पीली झांई वाला, सफेद, मीठा,
चित्तिदार, सफेद, लाल विंदकीवाला, मीठा।
करेला—सफेद करेले के आकार का मीठा।

वम्बई : लखनऊ ४९—सफेद गोल, मीठा।
नासिक—नोकीला, नाक के आकार का गूदा सफेद या गुलावी,
धारवार—अंडाकृति आकार, गूदा कठोर सफेद या गुलावी,

अनानास

असम : जाईन्ट क्यू—फल बड़ा, कम गहरी आंखवाला, पीले रंग का, गूदा हल्का पीला, तन्तु-रहित, औसत वजन चार किलो। आसाम में अच्छा होता है।

क्वीन : फल जाईन्ट क्यू से छोटा, वहुत जल्दी आनेवाला रंग पीला, आंखें गहरी, गूदा पीला, बहुत मीठा, फलों का औसत वजन डेढ़ से अढ़ाई किलो।

मॉरीशस : उपर्युक्त दोने के वीच के गुणवाला। पकता है क्वीन जाति से बाद और जाईन्ट क्यू से पहले। गूदा हलके गुलावी रंग का रेशेवाला। इसकी दो जातियां हैं। एक का फल लाल रंग का, दूसरी का पीला।
जलधूप—क्वीन जाति के फल से छोटा और उससे कम मीठा।
लाखत—जलघूप जैसा, कुछ खट्टा।

अनार

सौराष्ट्र : धोलका—फल बड़े, हलके रंग के, वीज हलके, गुलावी, मीठे।

अलांडी—फल छोटे, वीज गुलावी कठोर, मीठे।

आन्ध्रप्रदेश : पेपरशेल—मध्यम आकार का, मोटे छिलके वाला, वीज गुलावी मीठे।

स्पेनिश रूवी—पेपर शेल जैसा, छोटे आकार का, पतले छिलकेवाला।

मसकट लाल और वेकेड्ड—फल ऊपर दो से हलकी श्रेणी के। मिठास भी उनसे कम।

आड़ू

एलेक्जान्डर—गोल, सफेद हरा और लाल छिलकेवाला, गूदा सफ़ेद मीठा।

ड्यूक-ऑव यार्क—फ़ल छोटा वैंगनी रंग का, गूदा, स्वादिष्ट-मीठा।

अर्ली विराट्रिस—फल छोटा, गूदा रसभरा मीठा सवसे पहले पकने वाली जाति।

अर्लीरिवर्स—फल वड़ा, हलके पीले रंग का, गूदा रसदार, स्वादिष्ट।

एलवर्टा—फल वड़ा, स्वाद कड़वा।

लेटडेवोनियम—फल वहुत वड़ा, स्वादिष्ट रसीला

नोवलेसी—फल वड़ा, अच्छे स्वादवाला।

पेरेग्रीन—फल वड़ा, मीठे स्वादवाला।

ट्रायम्फ—फल पीला, वहुत अच्छे स्वाद वाला।

आम

वीजू आम तो कई जातियों में हैं और पेड़-पेड़ के अलग-अलग नाम रख लिये जाते हैं। ऐसे हजारों नाम होंगे,

इसलिये यहांपर कलमी ग्रामों की जातियां दी जाती है।

उत्तरप्रदेश : दशेरी, लंगड़ा, सफेदा, चौंसा। इन चारों में दशेरी छोटा लम्वा, पतली गुठलीवाला वड़ा स्वादिष्ट माना गया है। इससे दूसरे नम्वर का लंगड़ा जो पकने पर हरा ही रहता है और बहुत मीठा होता है। सफेदा और चौंसा पकने पर हलके पीले हो जाते हैं और लंगड़े से वड़े होते हैं। इनके सिवाय फजली और हाथीभूल नाम की दो जातियां वड़े-वड़े फलवाली है।

विहार : मिठुआ, बम्वई, कृष्णभोग (गोपाल भोग), माल्दा (लंगड़ा) सिपिया, शुकुल, सेन्दूरिया, और भदैया क्रमानुसार पकते हैं और ज्येष्ठ (मई) से प्रारम्भ होकर भाद्रपद (सितम्वर) तक मिलते रहते हैं। इनमें सवसे अच्छा माल्दा (लंगड़ा) हैं। उससे उतरते हुए सिपिया, शुकुल और सेन्दूरिया है। इनके सिवाय गुलाव खास और जर्दालू की गिनती भी अच्छे ग्रामों में है। भदैया वहुत अच्छा तो नहीं, परन्तु मौसम के अंत में होने से इसकी मांग भी काफी रहती है।

वम्वई : हाफूज (ग्रालफ़ेंज़ो) और पायरी दो विख्यात फल हैं। हाफूज दिखने में सुन्दर और लाल झांई लिये हुए पीला होता है। पश्चिमीय तट पर रत्नगिरी और वलसार में वहुत होता है। इसमें कुछ दिनों तक टिकने की शक्ति भी है। पायरी दक्षिण वम्वई में अच्छा होता है। इनके सिवाय सेन्दूरिया फरनेनडिन (गोग्रा का) वोरसा और कावसजी पटेल भी विख्यात हैं। कावसजी पटेल का फल वहुत वड़ा होता है। वहुधा मुरव्वा-ग्राचार ग्रादि के काम ग्राता है।

सौराष्ट्र : जमादार, केसरी, (गूदे का रंग केसर जैसा)

सालेभाई आमड़ी और राजपुरी (रसवाला आम)। इनमें से पहले तीन अच्छे माने गये हैं।

दक्षिण भारत (मद्रास, हैदराबाद, आन्ध्र-प्रदेश) : हिमायुद्दिन, आलमपुर, वेनिशा, मूलगोआ, तोतापरी, वंगलोरा, नीलम, रूमानी, स्वर्णरेखा, जहांगीर, आदि नाम के फल पाये जाते है। तोतापरी पीला, लाल झाईवाला लम्बा फल होता है, जो वम्वई और उत्तर भारत में भी विकने के लिए आ जाता है। यह अधिक मीठा नहीं होता। नीलम तोतापरी से छोटा और मीठा होता है। स्वर्णरेखा भी अच्छा फल है।

केला मद्रास, वम्वई, वंगाल और असम में केले की खेती विशेष रूप से होती है। एक ही जाति के केले के अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग नाम हैं, जैसे वरसाई ड्वार्फ को बम्वई में वामनकेली, मद्रास में मोरिशस और वंगाल और उड़ीसा में कावुली कहते हैं। इसलिए पहले नाम को कोष्ठक से बाहर देकर सामने आगे कोष्ठक में प्रान्तीय नाम प्रान्तों के साथ दिये जाते हैं।

पूवन (मद्रास), (लालवेलची, वम्वई) (चम्पा, वंगाल)।

वरसाई ड्वार्फ (वामन केली, बम्वई) (मोरिशस, मद्रास), (कावुली, वंगाल)।

रसथाली (मैसूर), (मूठैली, वम्वई), (मर्तवान, बंगाल)।

सफेद वेलची (वम्वई) (ने पूवन, मद्रास)।

लाल केला या लाल वनाना (वम्वई) (चेन केदाली, मद्रास)

तेला चक्रकेली आन्ध्र-प्रदेश

हरी छाल या वम्बई ग्रीन (वम्वई)

सीसमलाई और वीरुपाक्षी नीलगिरि के ढलानों पर होते हैं।

सब्ज़ीवाले केले—वनकेल बम्बई, (काच केला वंगाल)

नाक, नासपाती

इनकी दस-बारह जातियां हैं और दो-एक को छोड़कर सबके अंग्रेजी नाम हैं, जो नीचे दिये जाते हैं।

नासपाती

गोल और नाक से कठोर होती है।

नाक

वीट की तरफ नोकीली, मीठी, नरम और नासपाती से अधिक रसदार होती है।

बग्गूगोशा

इस जाति की नाक काश्मीर में होती है। फल का रंग हरा और मिठास कुछ कम होता है।

कानफरेन्स क्लिप्स फेवरिट, डोपने-ड्यू-कामिस, ईस्टर ब्यूरे एसिक-डे-हेस, मेरी लुई-डे-अक्कल थॉम्पसन, वार्टहलेट, विन्टर नेलिस आदि नाम नाक की जाति के है।

पपैया (पपीता)

वाशिंगटन, पत्ते की डंडी वैंगनी रंग की, हनीड्यू (मधु विन्दु) रांची, सिगापुरी ऐसी चार जातियां अच्छी मानी गई हैं।

बेर

पंजाव उमरान गोल, बड़े, मीठे और टिकांऊ कैथली (दंदान) पैंदी नौकदार

चोंचल लम्वे नौकीले, मीठे

उत्तरप्रदेश, वनारसी, कड़ाला, नरमा, वेकाटा, वनारसी पैवन्दी जोगिया, अलीगंज आदि।

आन्ध्रप्रदेश : दोधिया, वनारसी।

दोधिया पर मक्खी का आक्रमण नहीं होता।

वंगाल : नारिकेली, घुंघुडांग्रा, वनारसी, प्रालिफिक, वरुइपुर,

मध्य-प्रदेश : नागपुरी ।

लीची

विहार : देशी, पूर्वी, बेदाना, गुलावी, चीनी, मुजफ्फरपुर

उत्तरप्रदेश : गुलावी, कलकतिया लाल (जल्दी आनेवाली) और कलकतिया लाल (देरी से आनेवाली)

लुकाट[1]

गोल्डन यलो, इम्प्रूव्ड गोल्डन यलो और टेम्सप्राइड और पेलयलो (जल्दी आनेवाले) मध्य मार्च में आ जाते हैं ।

लार्ज पेल यलो, लार्ज आगरा मार्च के अन्त में आते हैं ।

केलिफोर्निया एडवान्स और टनाका मध्य अप्रैल में पकते हैं ।

सपाट् (चीकू)

वम्वई काली पत्ती (गहरे हरे रंग की पत्तीवाले)

छतरी—पेड़ का फैलाव छतरीनुमा पहले की अपेक्षा दूसरे के फल कुछ लम्वे होते हैं, स्वाद भी अपेक्षाकृत कम मीठा होता है ।

वंगाल : क्रिकेट वॉल

वंगलौर : अंडाकृतिवाले

आन्ध्रप्रदेश : ववीवालसा, जोनवालसा, कीर्यबर्यी टिकाऊ, मीठा खुरदरे छिलकेवाला ।

पाका—फल गोल, गुच्छे के रूप में आते हैं ।

---

१. भारतीय अनुसंधान परिषद की कृषि-माला के २४वें पुष्प से ।

सेव

सेव मीठे और खटमीठे दो प्रकार के होते हैं। कश्मीर, पंजाब की कुलूघाटी, कोटघर (शिमला की पहाड़ियां) उत्तर प्रदेश के कुमायू की घाटी में तथा नीलगिरि में होते हैं। अधिकांश जातियां खटमीठी होती है।

काश्मीर में होनेवाली जातियां :

अम्वरी काश्मीरी वाइटडीटेड लाल व्लडरेड वाल्डविन और रेडडिलीशियस

कुलू घाटी में होनेवाली : रेड रास्ट्रेशन; किंग आफ पिपिन्स, यलोन्यूटन, वेनडेविस, रेडडिलिशियस, काक्स आरेंज पिपिन, वाल्डविन गोल्डन डिलिशियस और ग्रेनी स्मिथ,

कुमायूं की घाटी में होनेवाली : व्लेनहेम, आरेंज पिपिन, डिलीशियस, अर्ली शेन वरी, जेम्स ग्रीव जोनाथन, रोमव्यूटी, गोल्डनपिपिन, किंग आव पिपिन्स, रेमर, विन्टर वनाना।

नीलगिरी—रोमव्यूटी, ग्वेनारलि रेड

अम्वरी काश्मीरी—चमकदार हरे-पीले छिलकेवाला कुछ लाली लिये होता है, ऐसे सेव का गूदा सफेद रस भरा और मीठा होता है।

वाल्ड्वन—लाल रंग की, हलके पीले गूदे की खटमीठी होती है।

व्लडरेड—सेन्दूरी रंग की, सुगंधित रसदार खटमीठी।

रेड डिलिशियस—रंग गहरा लाल, गूदा सफेद दानेदार मीठा।

रोम व्यूटी—फल वड़ा गोल, रंग पीला, लाल धारियों सहित खटमीठा।

कॉक्स ऑरेंज पिपिन—छिलका नारंगी रंग का, गूदा पीला, रसीला, सुगंधित खटमीठा।
किंग ग्राफ पिपिन्स—नारंगी रंग का, चमकीला छिलका, गूदा हलका पीला रसभरा बहुत मीठा।

संतरा

माल्टा पंजाव, (मोसम्वी वम्वई) (सचगुडी मद्रास)।
सन्तरे : मोटे ग्रौर ढीले छिलके वाले।
सन्तरे : पतले ग्रौर चिपटे हुए छिलकेवाले।

सूखे फल

ग्रंजीर—जंगली, स्पर्ना, बाईट-सेन-पेडरो ग्रौर एड्रियाटिक ऐसे चार जाति के हैं। पहला खाने के काम नहीं ग्राता। परन्तु वागीचे में उसका होना जरूरी है, क्योंकि उसके फलों में 'व्लास्टोफेगा' नाम का वर्रे की जाति का एक कीट होता है, वह उनमें से पराग-कण ले जाकर दूसरी जातियों में पहुंचाता है। यदि यह न हो तो स्मर्ना जाति के ग्रंजीर बढ़ें ही नहीं। दूसरी जाति के ग्रंजीर वढ़ तो जाते हैं, परन्तु परागण न होने से बीज खोखले ग्रौर वंध्या रह जाते हैं। ग्रंजीर के काबुल, बंगलौर, लखनऊ इत्यादि नाम भी हैं। इनकी खेती सहारनपुर के ग्रास-पास ग्रच्छी होती हैं।
खुवानी—शिपले ग्रर्ली, (जल्दी ग्रानेवाली) कैशा, न्यूकेसल, सेंट एम्ब्रोईज रायल। इनमें कैशा ग्रौर रायल ग्रच्छी जातियां हैं। रायल के फल सुखाये भी जाते हैं।

बादाम

काश्मीर : विदेशी ग्रौर काबुली-पहली बड़ी ग्रौर चपटी होती है दूसरी छोटी गोल-सी होती हैं। कुछ बहुत छोटी होती हैं, जिन्हें 'रालाची' कहते हैं। कुछ विदेशी जातियों की काश्मीर में जांच हो रही है।

परिशिष्ट—७

विभिन्न फलों की खेती का अनुमानित क्षेत्रफल[1]

नाम फल	क्षेत्रफल एकड़
अनानास	२१,३२४
अनार	१,९५४
अमरूद	६८,५४७
आम	१,४५,९३९४
अंगूर	१,६३४
अंजीर	७४६
कटहल	१,६४,३७५
काजू	१५,७३,५३
केला	३,७०,७५७
खजूर	८४९
नीबू बगीचे	२,२३,५७
पपीता, पपैया, (एरंड ककड़ी)	२१,६१९
फालसा	२५०
बेर	२४,४७५
लीची	२३,९५३
सपाटू	७५८
सीताफल	१,१०,१६४
सेव आदि (समशीतोष्ण वातावरण में होनेवाले)	४०,०८०
अन्य	१,१२,१३५
कुल	२८,०३७२४

१ ये [illegible] भारतीय अनुसंधान संस्था ने १९५५ में इकट्ठे किये थे, अब तो क्षेत्रफल और भी बढ़ गया होगा। Fruit culture in India, 1963 p. 7।
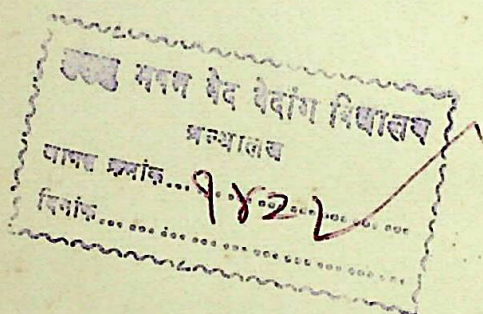
'मंडल' का कृषि-साहित्य

१. कृषि ज्ञान-कोष
२. साग-भाजी की खेती
३. फलों की खेती
४. अन्नों की खेती
५. दलहन की खेती
६. तिलहन की खेती
७. रोक-फसलों की खेती
८. खेती के साधन
९. खाद और उसके उपयोग
१०. धान की खेती
११. पुष्पोद्यान